A MOSLEM SEEKER AFTER GOD

S.M. Zwemer

अल-ग़ज़ाली

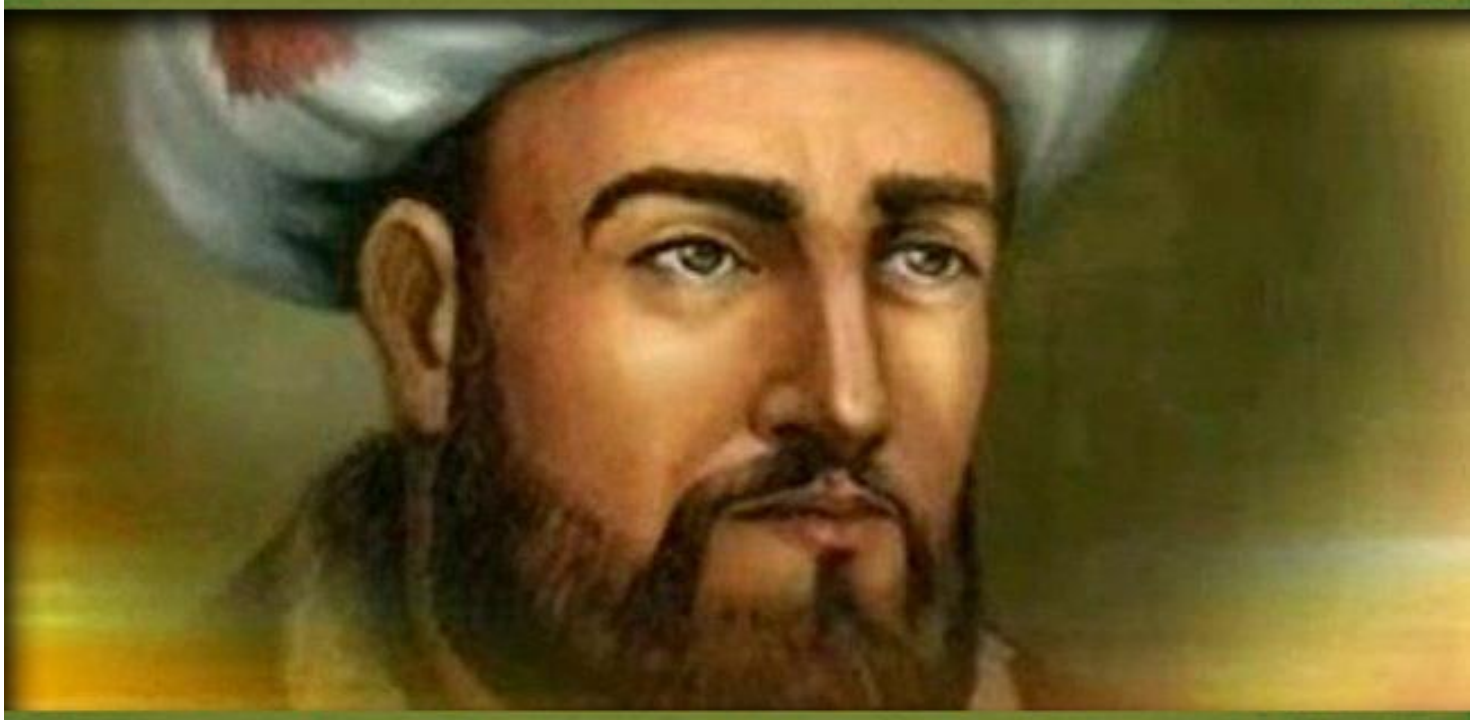

पादरी ऐस॰ ऐम॰ ज़्वेमर साहब डी॰ डी॰

1924

Zwemer, Samuel Marinus

(1867-1952)

APOSTLE TO ISLAM. *ZWEMER* ONE OF THE MOST CELEBRATED PROTESTANT MISSIONARIES OF THE TWENTIETH CENTURY

A MUSLIM SEEKER AFTER GOD

SAMUEL M.ZWEMER

Showing Islam at its Best in the Life and Teaching of Al-Ghazali
Mystic and Theologian of the Eleventh Century

अल-ग़ज़ाली

मुसन्निफ़

पादरी ऐस॰ ऐम॰ ज़्वेमर साहब डी॰ डी॰

Approved by the C.L.M.C.

पंजाब रिलीजियस बुक सोसाइटी

अनारकली लाहौर

1924 ई॰

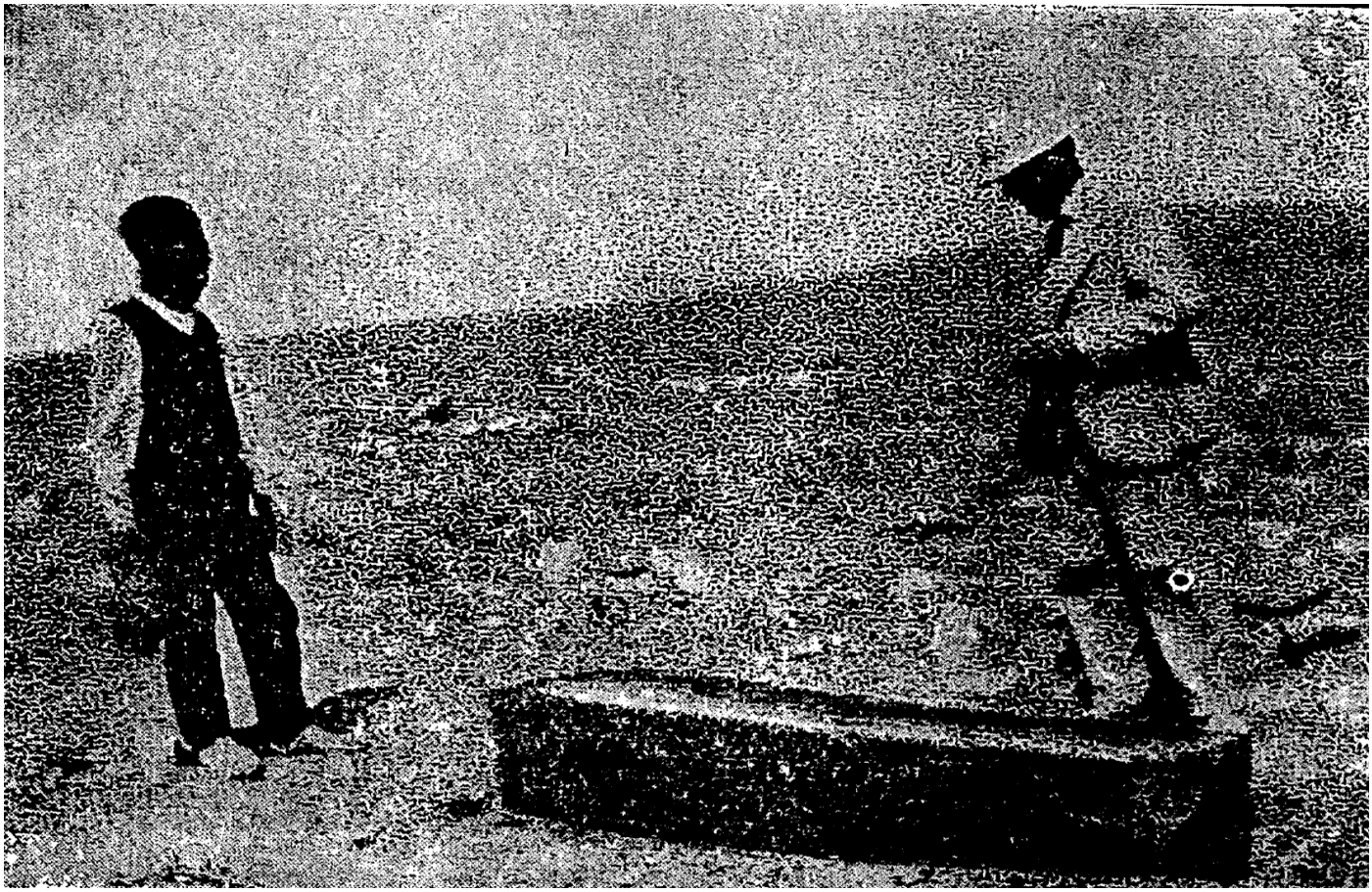

जामेअ तूस अल-ख़रब व लअलह बनी फ़ील-क़ुरआन अलराबेअ लाहजरह

جامع طوس الخرب و لعله بنى فى القرآن الرابع لاهجرة

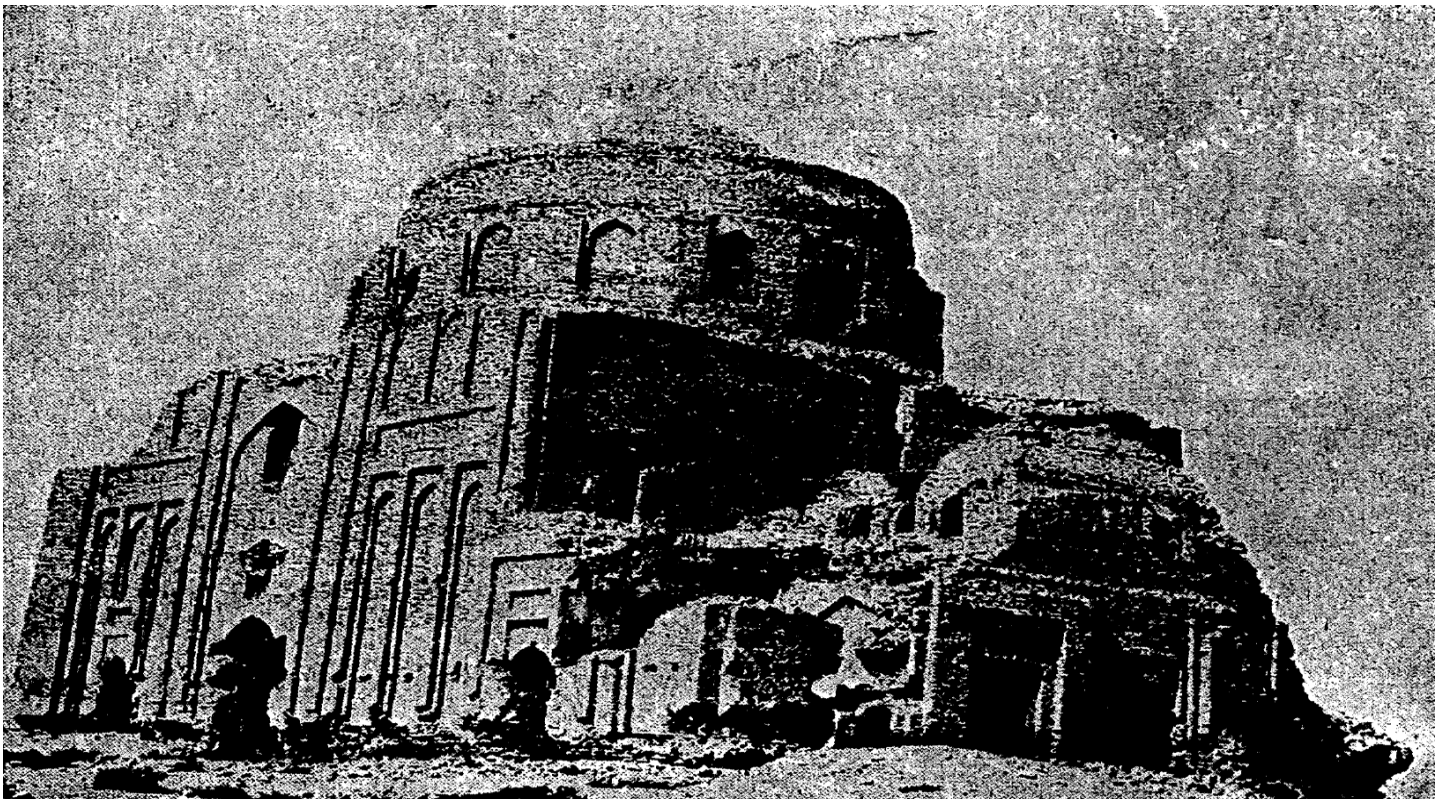

क़ब्र अल-ग़ज़ाली अल-मज़अरम

قبر الغزالى المزعرم

बाब अव़्वल 7

ग्यारहवीं सदी 7

बाब दोम 30

पैदाइश और तालीम 30

बाब सोम 49

तालीम, तब्दीली दिल और तर्क दुनिया 49

बाब चहारुम 72

सियाहत, माबाअ्द अय्याम और वफ़ात 72

बाब पन्जुम 96

उस की तस्नीफ़ात 96

बाब शश्म 114

उस की अख़्लाक़ी तालीम 114

बाब हफ़्तुम 129

अल-ग़ज़ाली बहैसीयत सूफ़ी 129

बाब हश्तम 153

अल-ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात में यसूअ मसीह 154

अल-ग़ज़ाली

बाब अव्वल

ग्यारहवीं सदी

तारीख़ के सरकर्दा अश्ख़ास को पहाड़ों की चोटियों से तश्बीह दे सकते हैं। ये मैदानों से और ज़ेरीन पहाड़ीयों से बहुत बुलंद होती है और चूँकि वहां से दूर तक ज़मीन का नज़ारा आता है, इसलिए ये भी बहुत दूर से दिखाई देती है। इस्लाम का तारीख़ी मुतालआ करते वक़्त चार नाम खासतौर पर नुमायां होते हैं। इनमें से एक तो ख़ुद मुहम्मद साहब हैं। दूसरे बुख़ारी साहब जिन्हों ने अहादीस के जमा करने में शौहरत हासिल की। तीसरे आल अशरी साहब जो मन्क़ूल थियालोजी के आलिम और माक़ूल थियालोजी के मुख़ालिफ़ थे और चौथे इमाम ग़ज़ाली साहब जो मुस्लेह (सुधारक) और सूफ़ी थे। मुहम्मद साहब के बाद इस्लाम की तारीख़ पर जिसने बड़ा नक़्शा जमाया वो ग़ज़ाली साहब ही हैं। सियूती साहब का क़ौल है कि :-

> "मुहम्मद साहब के बाद अगर कोई नबी होता तो अल-ग़ज़ाली होता।"

इस्लाम की अगर कोई ख़ूबी देखनी हो तो ग़ज़ाली साहब की ज़िंदगी और ख़ासकर उनकी तस्नीफ़ात में देख सकते हैं। अहादीस के बोझ और रस्मियात के तक़ाज़े से बचने की मुसलमानों के लिए अगर कोई राह है तो वो तसव्वुफ है। जिन्हों ने क़ुरआन की तालीम और रस्मियात के तौर-मार में कई गहरे रुहानी मअनी निकाले इनमें से कोई इमाम ग़ज़ाली पर सबक़त नहीं ले गया। जमाल उद्दीन साहब का क़ौल है कि :-

> "वो ज़िंदगी के क़ुतुब और सभों के लिए ताज़ा पानियों के मुशतर्का चश्मा थे। अहले ईमान के पाकीज़ा गिरोह की जान और

> रहीम ख़ुदा से मिलाप हासिल करने की राह। मुसलमान उलमाओं में से वो अपने ज़माने और सारे ज़मानों के लिए लासानी और बेनज़ीर गुज़रे हैं।"

एक दूसरे मुसन्निफ़ का ये क़ौल है, जो तक़रीबन उनका हम-अस्र (हम-अहद, हम ज़माना, एक वक़्त) का था।

> "ये वो इमाम हैं, जिनके नाम से सिना पिघलता और रूहें ताज़ा-दम होती हैं। जिनकी तस्नीफ़ात पर दवात को फ़ख़्र है और काग़ज़ ख़ुशी से थर्राता है और जिसका पैग़ाम सुनते वक़्त आलम में ख़ामोशी छा जाती और सरख़म हो जाते हैं।"

एक मशहूर फ़ाज़िल अहमद अलसीद अल-यमनी अल-ज़बदी नामी ने जो इमाम ग़ज़ाली के हम-अस्र थे ये फ़रमाया :-

> "मैं एक रोज़ बैठा हुआ था कि यकलख्त मुझे ये दिखाई दिया कि आस्मान के दरवाज़े खुल गए और मुक़द्दस फ़रिश्तों की एक गिरोह उतरी। उनके साथ एक सब्ज़ लिबादा और क़ीमती घोड़ा था। वो आन कर एक ख़ास क़ब्र के पास खड़े हो गए और मदफ़ून को क़ब्र से निकाला। वो सब्ज़ लिबादा उसे पहनाया और घोड़े पर उसे सवार किया और आसमानों से गुज़रते गए, हत्ता कि सातों आसमानों से उबूर कर गए और साठ हिजाब फाड़ कर निकल गए और मुझे मालूम नहीं कि आख़िरकार वो कहाँ जा पहुंचे। फिर मैंने उस की बाबत दर्याफ़्त किया। तो ये जवाब मिला, ये इमाम ग़ज़ाली है। ये उस की वफ़ात के बाद हुआ। ख़ुदा तआला उस पर रहम करे।"

इस के बारह (मुआमला, ताल्लुक़, नौबत, दफ़ाअ) में एक ये क़िस्सा भी आया है,

> "हमारे ज़माने में एक शख़्स मिस्र में था वो इमाम ग़ज़ाली को नापसंद करता उसे बुरा-भला कहता और उस की हजू किया करता था। उसने नबी को ख़्वाब में देखा (ख़ुदा उसे बरकत दे

> और उसे सलामती अता करे) अबू बक्र और उमर (रज़ी अल्लाह अनहा) उसके पास थे और इमाम ग़ज़ाली उनके सामने बैठे थे और ये कह रहे थे, ऐ रसूल-ए-ख़ूदा ये शख़्स मेरे ख़िलाफ़ बकता है। इस पर हज़रत ने हुक्म दिया कि चाबुक लाओ। सो इमाम ग़ज़ाली की ख़ातिर उस शख़्स को चाबुकों की मार पड़ी। जब ये शख़्स ख्व़ाब से बेदार हुआ तो चाबुकों के निशान उस की पीठ पर मौजूद थे। वो शख़्स रो-रो कर ये क़िस्सा बयान किया करता था।"

अगर किसी को ऐसी तारीफ़ मश्रीकाना ना लफ्फ़ाज़ी और मुबालग़ा आमेज़ मालूम हो तो एक मग़रिबी आलिम प्रोफ़ैसर डंकन, बी, मैक्डानल्ड साहब के अल्फ़ाज़ सुन लीजिए। साहब मौसूफ़ ने ग़ज़ाली साहब की ज़िंदगी और तस्नीफ़ात का मुतालआ जिस क़द्र किया इस्लाम के किसी दूसरे मग़रिबी आलिम ने नहीं किया। ये कहना तो मुश्किल है कि अगर इमाम ग़ज़ाली की तासीर इस्लाम पर ना होती तो इस्लाम किस क़द्र ज़्यादा जोर व तअद्दी (ज़ुल्म, सितम) का मुर्तक़िब होता। लेकिन इतना तो कह सकते हैं कि उन्होंने इस्लाम को सरफी (इल्म सर्फ जानने वाला शख़्स) नहवी (इल्म नहू का माहिर) झमेलों (झगड़ा, बखेड़ा, फ़साद) से छुड़ाया और पक्के मुसलमानों के आगे ऐसी ज़िंदगी का इम्कान पैदा कर दिया जो ख़ुदा में छिपी हो। उनको ऐसी ईज़ा पहुंचाई जैसे किसी बिद्अती को पहुंचाते हैं और अब वो मुसलमान जमाअत के फ़ाज़िल अजल माने जाते हैं।

अगर हम इमाम ग़ज़ाली और उनकी तालीम की वक़अत समझना चाहें तो एक लहज़े के लिए अपने आपको उस ज़माने में ले जाएं, जिसमें वो ज़िंदा थे। हम किसी आदमी का हाल बख़ूबी समझ नहीं सकते जब तक कि उस के इर्दगिर्द का हाल मालूम ना हो। तारीख़ के वसीअ जाल की एक तार सवानिह उम्री होती है। इस में ज़माना फ़राख़ और तवील है। इन तारीक ज़मानों में इमाम ग़ज़ाली का ताल्लुक़ मशअल बर्दारों की छोटी गिरोह से था।

तूस (इलाक़ा खुरासान, मुल्क फ़ारस) में 1058 ई॰ में वो पैदा हुए और 1111 ई॰ में रहलत कर गए। जब ये पैदा हुए उस वक़्त के क़रीब तुग़रल बेग ने बग़दाद को फ़त्ह किया। हैनरी चहारुम शहनशाह थे। नकोलस दोम पोप था। मग़रिब में नॉर्मन फ़ुतूहात का

आग़ाज़ था और मशरिक़ क़रीबा में तुर्कों ने एशिया कोचक को पामाल किया था। मग़रिब में इमाम ग़ज़ाली के दीगर हम-अस्र ये थे, पोप हल्डर ब्रांडाबी लार्ड, बर्नार्ड, इन सीलम और पटीर फ़क़ीर (Hermit) जिस वक़्त के क़रीब इमाम ग़ज़ाली ने अपनी मशहूर किताब तस्नीफ़ की उस वक़्त गॉडफिरे बूईलान यरूशलम का बादशाह था। ग़ज़ाली साहब उस वक़्त इस मसअले के हल करने की जद्दो जहद कर रहे थे कि जिन लोगों का दिल ख़ुदा की प्यास में तड़प रहा है उनके लिए इस्लाम क्या कर सकता है। उनसे तक़रीबन दो सौ बरस पहले अल-किंदी ने मसीह दीन की हिमायत के लिए हारून रशीद के दरबार में माअज़िरत नामा लिखा था और उनसे दो सौ बरस बाद एमंडलल साहब शुमाली अफ़्रीक़ा में शहीद हुए।

जिन दिनों में बस्रा और उस का हरीफ़ शहर कूफ़ा उमर ख़लीफ़ा के ज़फ़रयाब अरबों के ज़ेर हुकूमत आए। उस वक़्त से इस्लामी दुनिया की हालत बिल्कुल बदल गई थी। ग्यारहवीं सदी के अब्बासी ख़ुलफ़ा माक़क़ब्ल ज़ोर व ताक़त के मह्ज़ साया ही के, तौर पर थे और यही हाल मशरिक़ के सलातीन का था। सिर्फ दीनी फ़ौक़ियत बाक़ी रह गई थी। तुग़रल बेग सल्जूक़ के पोते को कमज़ोर ख़लीफ़ा अल-क़ासिम बअम्र-अल्लाह ने ताज पहनाया। उसने फ़त्ह पर फ़त्ह हासिल की इज़्ज़त पर इज़्ज़त उस को मिली। सब लोग उस को मशरिक़ व मग़रिब का बादशाह कह कर सलाम करते थे और ख़लीफ़ा ने अपनी बेटी का निकाह उस से कर दिया। इस के बाद अल-मक़तदी के अहद सल्तनत में सल्जूक़ तुर्कों ने यरूशलम को तसख़ीर किया।

नूला के साहब लिखते हैं कि :-

> “1000 ई॰ के क़रीब इस्लाम की हालत बहुत ख़राब थी। खुल्फ़ा-ए-अब्बासी देर से हालत हेचमदानी (बेइल्मी, नादानी, बेहुनरी) में पड़े थे। अरबों की ताक़त मुद्दत से टूट चुकी थी। बहुत सी छोटी बड़ी इस्लामी रियासतें पैदा हो गई थीं। इन सब रियासतों में ज़ोर-आवर फ़ातिमा ख़ानदान की रियासत थी लेकिन वो शीया थे। इसलिए वो भी सारे मुसलमानों को रिश्ता इत्तिहाद से ना बांध सके।”

इन ख़ाना-बदोश तुर्कों ने सख़्त बर्बादी ढाई। वसीअ ममालिक की सर-सब्ज़ तहज़ीब को पामाल किया और नूअ इन्सान की तर्बीयत व तरक़्क़ी में एक शोशे से भी मदद ना की। अलबत्ता मुहम्मदी मज़्हब को उन्होंने ज़बरदस्त तक़वियत दी इन गँवार तुर्कों ने दीन इस्लाम को सरगर्मी से क़ुबूल कर लिया क्योंकि ये उनकी अक़्ल की रसाई के अंदर था और ग़ैर-मुस्लिम दुनिया के मुक़ाबले में ये इस्लाम के बड़े भारी हामी बन गए। उन्होंने सल्जूक़ सल्तनत के ज़वाल के बाद भी ये पुराने इलाक़ों में बरसर हुकूमत रहे। अगर इस्लाम की जंगी तबीयत को तुर्क सर-सब्ज़ ना करते तो शायद सलीबी जंग की फ़ौजों को ज़्यादा मुस्तक़िल कामयाबी का मौक़ा मिलता।

तुग़रल बैग को शाही शहर नीशापूर में (1038 ई॰) सुल्तान का लक़ब मिला। बक़ौल मुअर्रिख़ गबन :-

“तुग़रल बेग अपने सिपाहीयों और अपनी रईयत का बाप था। मुस्तक़िल और आदिलाना इंतिज़ाम के ज़रीये फ़ारस ग़दर की मुसीबत से बच गया। और जिन हाथों से ख़ून टपक रहा था वही अदल और अमन आम्मा के मुतवल्ली बन गए।”

ज़्यादा दहक़ान या ज़्यादा दाना तुर्कमान अपने आबा व अजदाद के ख़ेमों में ज़िंदगी बसर करते रहे। दरिया-ए-आक्सस से लेकर दरिया-ए-फ़ुरात तक इन जंगजू क़बीलों के मुहाफ़िज़ उनके अपने अपने सरदार थे लेकिन जिन तुर्कों का ताल्लुक़ शाही दरबार से था और जो शहरों में बूद व बाश करने लग गए थे, वो तिजारत वग़ैरह के ज़रीये ज़्यादा शाइस्ता बन गए थे और ऐश व इशरत की वजह से नरम मिज़ाज हो गए थे। इन लोगों ने फ़ारसी लिबास, ज़बान और तौर-तरीक़े इख़्तियार कर लिए और नीशापूर और रए के शाही महलों में एक सल्तनत की शान व शौकत पाई जाती थी। अरबों और फ़ारसियों में जो साहिबे लियाक़त थे उनको सरकारी ओहदे मिलते और इज़्ज़त हासिल होती और तुर्की क़ौम ने बहैसीयत मजमूई सरगर्मी और ख़ुलूस क़ल्बी से दीन मुहम्मदी को क़ुबूल कर लिया।

सल्जूक़ सलातीन अज़ीम में से पहले सुल्तान ने दीन इस्लाम की सरगर्मी के साथ इशाअत करने में शौहरत हासिल की वो नमाज़ में बहुत वक़्त ख़र्च करता था और जिस जिस शहर को फ़त्ह किया वहां उसने एक नई मस्जिद तामीर की। उसने लश्कर-ए-जर्रार के साथ ख़लीफ़ा बग़दाद की मदद की और मूसिल और बग़दाद के लोगों को इताअत का

सबक़ सिखाया। जब ख़लीफ़ा ने अपने दुश्मनों से नजात पाई तो तुग़रल बैग की हमशीरा से शादी कर के रिश्ता इत्तिहाद को किया। 1063 ई॰ में तुग़रल बेग का इंतिक़ाल हो गया और उस का भतीजा अर्प अर्सलान (ارپ آرسلاناس) की जगह तख़्त नशीन हुआ। इसलिए मशरिक़ क़रीबा के सारे मुसलमान नमाज़ आम में ख़लीफ़ा के बाद अर्प अर्सलान का नाम पढ़ा करते थे।

मुअर्रिख़ गबन ने उस के अहदे हुकूमत की हक़ीक़त एक जुम्ले में बयान कर दी है :-

> "लुको कहा तुर्की सवार कोह तॉरस से ले कर अर्ज़ रूम तक छः सौ मीलों तक फैल गए और अरबी नबी के आगे 136000 मसीहीयों की क़ुर्बानी शुक्रगुज़ारी के लिए गुज़रानी।"

इस "बहादुर शेर" ने क्योंकि अर्प अर्सलाँ नाम के यही मअनी हैं। शिद्दत की सख़्ती और फ़य्याज़ी दिखाई। मसीहीयों को सख़्त ईज़ाएं दी गईं। उसने दुश्मनों को तो क़त्ल किया लेकिन आलिमों और दौलत मंदों और मक्बूलान नजर को बड़े-बड़े इनाम व इकराम अता किए अर्सलान दीन इस्लाम के लिए लड़ाईयां लड़ता था और मैदान-ए-जंग का वैसा ही मुश्ताक़ था जैसे वो लोग थे जिनका ज़िक्र मुर साहब ने मुफ़स्सला-ज़ैल अल्फ़ाज़ में किया है :-

> "इस मुक़द्दस ख़ूनी नस्ल में से एक जो ख़ूँरेज़ी और क़ुरआन के गरवीदा थे, जिनका ये अक़ीदा था कि ग़ैर-मुस्लिमों का ख़ून बहाने ही के ज़रीये वो सीधे बहिश्त (जन्नत) को जाऐंगे। जो ठहर जाते और बे जूती उतारे अपने घुटने झुकाते और ख़ून भरे हाथों को दुआ में ख़ुदा की तरफ़ उठाते और कलाम-उल्लाह की किसी आयत को पढ़ते हैं जो उनकी ख़ून से लबरेज़ तल्वार पर कुंदा है।"

जब आर्मेनिया का सदर मुक़ाम 6, जून 1064 ई॰ को उन्होंने तसख़ीर (कब्ज़े में) किया तो इस सारे इलाक़े को सख़्त बेरहमी के साथ बर्बाद किया। कहते हैं कि **"ख़ून की नदियाँ बह गईं और इस क़द्र ख़ूँरेज़ी हुई कि लाशों से गली कूचे रुक गए और मक़्तूलों**

<u>की लाशों से दरिया का पानी सुर्ख हो गया।"</u> दौलतमंद बाशिंदों को शिकंजे में खींचा गिरजाओं को लूटा और पादरीयों की ज़िंदा खालें उतारी गईं। इस वक़्त इमाम ग़ज़ाली छः साल के थे

1072 ई॰ में अल्प अर्सलान क़त्ल हुआ। उस का बड़ा बेटा मलक शाह उस का जांनशीन हुआ। उसने अपने बाप की फ़ुतूहात को दरिया-ए-आक्सस के पार बुख़ारा और समरक़ंद तक तौसीअ दी। हत्ता कि उस के नाम का सिक्का चल गया और मुल्क चीन की सरहदों पर जूता तारी सल्तनत थी वहां दुआओं में इस का नाम लिया जाने लगा। "चीन की सरहदों से लेकर उसने अपनी हुकूमत को मग़रिब और जुनूब में कोहिस्तान जॉर्जिया तक फैला दिया और क़ुस्तुनतुनिया के क़ुर्ब व जवार तक जा पहुंचा और यरूशलेम के मुक़द्दस शहर और अरबी फेलिक्स के मसाले पैदा करने वाले जंगलों तक उस की रसाई हो गई। हरम की अय्याशी में मुब्तला होने के बजाय ये चौपान बादशाह अमन और जंग के वक़्त हमेशा मैदान कार ज़ार में था।"

निज़ाम उस का वज़ीर था और उसी के रसूख़ की वजह से इल्म व साइंस की तरक़्क़ी ऐसे आला दर्जे तक हुई। जंतरी की इस्लाह की गई स्कूल और कॉलेज क़ायम हुए और बादशाह के मक़्बूल-ए-नज़र ठहरने के लिए उलमा ने एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर कोशिश की। तीस साल तक निज़ाम-उल-मुल्क ख़लीफ़ा का मौरुद-अल्ताफ़ रहा और दीन व साईंस में उस की ज़बान इल्हाम की तरह समझी जाती थी। लेकिन तिरानवे साल की उम्र में इस मुअज़्ज़िज़ मुदब्बिर मुल्क को जिसके ज़रीये इमाम ग़ज़ाली की ख़ास क़द्र हुई बादशाह ने मौक़ूफ़ कर दिया। उस के दुश्मनों ने उस पर इल्ज़ाम लगाए और बाअज़ जोशीलों ने उसे तह-ए-तेग़ (तल्वार से क़त्ल करना) किया। निज़ाम के आख़िरी अल्फ़ाज़ ने उस की मासूमियत साबित की। मलिक की ज़िंदगी का आख़िरी हिस्सा क़लील व ज़लील गुज़रा।

अरबी ज़बान का हर जगह रिवाज हो गया और मशरिक़ क़रीबा सारी ज़बानों में वो सरायत कर गई। जिस क़ौम से अरबों को वास्ता पड़ा उसे कम व पेश उन्होंने अरबी बना लिया। चीनरी (Chenery) साहब का क़ौल है कि :-

"इस रसूख़ की वुसअत का अंदाज़ा इस तरह से लग
सकता है कि फ़िर्दोसी ग्यारवीं सदी ईस्वी के इब्तिदाई हिस्से में

> ज़िंदा था। उस की फ़ारसी अरबी अल्फ़ाज़ व मुहावरात से मुबर्रा है। हालाँकि गुलिस्तान की फ़ारसी जो ढाई सौ बरस पीछे लिखी गई अरबी अल्फ़ाज़ व मुहावरात से पढ़े। ये भी काबिले लिहाज़ है कि सादी ने बाज़ औक़ात पै दरपे अरबी आयात और इबारात को दर्ज किया है। इस से ज़ाहिर है कि मुसन्निफ़ को मालूम था कि इस किताब के पढ़ने वाले अरबी से ख़ूब वाक़िफ़ थे।"

तिजारती सड़कें हर जगह जाती थीं। मशरिक़ में हिन्दुस्तान और चीन के साथ और इधर मसालेदार जज़ीरों यानी मलेशिया के साथ राह व रब्त था। क़ाफ़िलों के ज़रीये तिजारत वस्ती एशिया और शुमाली अरब के एक सिरे से लेकर मग़रिब की मंडीयों तक जारी थी। हसपानीया की आमद व रफ्त फ़ारस के साथ थी। अल-हरेरी ने बस्रा की तारीफ़ इन अल्फ़ाज़ में की :-

> "ये वो जगह है जहां जहाज़ और ऊंट जमा होते, समुंद्री मछली, छिपकली, सारबान, मल्लाह, मछुवे और हल चलाने वाले एक दूसरे से मिलते हैं।"

अल-ग़र्ज़ इन सारे ममालिक के लिए जो दरिया-ए-दजला और फ़ुरात से सेराब होते हैं। बंदरगाह भी था और मंडी भी। मग़रिब में सिकंदरीया (यूनानी लफ़्ज़ अलीगज़ निद रस (बमाअनी बनी नूअ इन्सान का मुहाफ़िज़) पर यही लफ़्ज़ सादिक़ आते हैं।

हमारे पास इस अम्र की शहादत है कि अरब और चीन के दर्मियान दरियाई बछड़े और हाथीदांत की तिजारत होती थी। चीनी सय्याह की एक बड़ी किताब मौजूद है जो बारहवीं सदी में अरब के साथ तिजारत के बारे में लिखी गई। जिसका तर्जुमा हाल ही में बमुक़ाम पेट्रो ग्राड शाएअ हुआ है। ये और भी काबिले लिहाज़ अम्र है कि सिकंडे नेवया में हज़ारों कोनी सिक्के मिले हैं और तक़रीबन इन सबकी तारीख़ ग्यारहवीं सदी से है इस से ज़ाहिर होता है कि यूरोप के इस दूर व दराज़ हिस्से से भी मशरिक़ क़रीबा का ताल्लुक़ था।

उस ज़माने के इल्म व अदब और तारीख़ से ज़ाहिर है कि उस वक़्त अख़्लाक़ी हालत गिरी हुई थी और दीन व अख़्लाक़ में जुदाई हो चुकी थी। यहां तक कि ज़माना-ए-

हाल की इस्लामी हालत भी उस का मुक़ाबला नहीं कर सकती। अलहरवी जैसे उलमा थे, जिन्हों ने क़ुरआन के एजाज़ पर तफ़्सीरें लिख डालीं लेकिन ख़ल्वत में मय-नोशी, नशा बाज़ी और यावागोई के मज़े उड़ाते थे। शराब, माशूक़ व ग़ज़ल का ज़िक्र ना सिर्फ आम इल्म व अदब और नज़्म में पाया जाता था बल्कि फ़ज़ला-ए-दीन और फिलासफर इन मज़्हब की ज़बान पर चढ़ा हुआ था। हवार्ट (Huart) साहब ने अपनी किताब "राहिब ख़ानों की किताब" (Book of the Monasteries) में ये बयान किया है :-

> "हम ये फ़रामोश ना करें कि जब मुसलमान मसीहीयों के हुजरों में दाख़िल हुए तो वो मज़्हबी जज़्बात की तलाश में वहां ना गए, बल्कि महज़ इस तलाश में कि वहां मय-नोशी का मौक़ा मिलेगा। क्योंकि मुहम्मदी शहरों में शराब का इस्तिमाल मना था। शोअरा महज़ शुक्रगुज़ारी से उन मुबारक जगहों की तारीफ़ें गाया करते थे जहां जाम-ए-शराब का हज़ (मज़ा) उन्होंने उठाया था। जिन लोगों ने इस बद-अख़्लाकी आम्मा के ख़िलाफ़ ज़बान या क़लम उठाई उनको तरह-तरह की ईज़ाएं उठानी पड़ीं। चूँकि रियाकारों का दरबार में ज़ोर था, इसलिए मुस्लेहों (सुधारकों) की कोई ना सुनता था।"

इब्ने हमदून (1101 ई॰ से 1167 ई॰) के बारे में लिखा है कि, बग़दाद की ख़राबियों को देखकर जब उसने बरमला हमला किया तो दुबैर सल्तनत के सरकारी ओहदे से वो मौक़ूफ़ किया गया और क़ैद में डाला गया, जहां से उसने जान देकर रिहाई पाई। सज़ाएं भी सख़्त मिला करती थीं। क़ुरआनी शरीअत के मुताबिक़ चोरी की सज़ा में आज़ा काटे जाते और ये सज़ाएं ऐसी आम और कस्रत से थीं कि टुंडे, लंगड़े अश्ख़ास की निस्बत यही गुमान होता था कि ज़रूर उसने कोई जुर्म किया होगा, जिसकी पादाश (सिला, बदला) में इस को ये सज़ा मिली। कहते हैं कि अल-ज़महशरी का एक पांव मौसम-ए-सरमा में बर्फ़ से गल गया था। इसलिए चलने फिरने के लिए उसे लकड़ी की टांग इस्तिमाल करनी पड़ती थी लेकिन साथ ही वो गवाहों की तहरीरी शहादत का सर्टीफ़िकेट लिए फिरते थे, ताकि वो साबित करें कि वो किसी हादिसे से लंगड़े हो गए थे ना कि किसी जुर्म की पादाश (सिला, बदला) में।

अल-बेयहक़ी जिसने बग़दाद के दरबार की तारीख़ लिखी, उस का बयान है कि दीनी सरगर्मी के साथ अक्सर शराब की मुमानिअत के इस्लामी क़ानून को बुरी तरह से नज़र-अंदाज किया जाता था। ना सिर्फ सिपाही और उनके अफ़्सर नशा बाज़ी में मुब्तला थे, बल्कि सुल्तान मस्ऊद से मख़मूर रहते और उस के रफ़ीक़ मतवाले हो कर दस्तर ख़्वान ही पर लौट-पोट होते थे। सूबा खुरासान के सदर मुक़ाम गज़नी का एक नज़ारा यूं दिखाया गया है, "पचास प्याले और शराब की सुराहीयाँ खेमे से बाग़ में लाई गईं और जाम की गर्दिश चारों तरफ़ शुरू हुई। अमीर ने फ़रमाया दुरुस्त अंदाज़े से यकसाँ पियालों में हम दुरुस्ती से नोश करें। वो सरवर में आए और मुत्रिब गाने बजाने में मसरूफ़ हुए। दरबारीयों में से एक ने पाँच प्याले ख़त्म किए। हर एक प्याले में तक़रीबन आधासेर शराब आती थी। लेकिन प्याले ने उस के दिमाग़ को परेशान कर दिया और सातवें ने उस के होश व हवास उड़ा दिए और जब आठवें को हाथ लगाया तो नौकरों ने उस को गठड़ी बांध कर अलग कर दिया। पांचवें प्याले के बाद डाक्टर को दूर कर दिया। ख़लील दाऊद दस प्याले चढ़ा गया। सयाबी रोज़ ने नौ ख़त्म किए फिर उनको उठा कर घर ले गए। हर शख़्स फ़र्श पर लुढ़क रहा था या उस को लुढका रहे थे। हत्ता कि सुल्तान और ख़्वाजा अब्दुल रज़ाक बाक़ी रह गए। ख़्वाजा अठारह प्याले चढ़ा कर उठा और कहने लगा कि, अगर बंदा दरगाह ने एक और पियाला पिया तो अक़्ल भी जाती रहेगी और आँहज़रत की इज़्ज़त का ख़याल भी भूल जाएगा। इस के बाद मस्ऊद तन्हे तन्हा शराब पीते रहे और जब सत्ताईस भरे प्याले नोश कर चुके तो वो भी उठे पानी और मुसल्ला (जानमाज़) मंगवाया वुज़ू किया और ज़ुहर की नमाज़ और मग़रिब की नमाज़ इकट्ठी करके ऐसी संजीदगी से अदा की कि गोया एक क़तरा शराब उसने ना पिया था। फिर अपने हाथी पर सवार हो कर अपने महल को रवाना हुए।"

मसऊद 1040 ई॰ में मारा गया। उस के बेटों और औलाद ने इस्लामी दुनिया के इस हिस्से पर एक सदी से ज़्यादा सल्तनत की लेकिन गज़नी जो सल्तनत का दार-उल-ख़िलाफ़ा था वो मुल्क शाह की सल्तनत की एक मातहत रियासत का सदर मुक़ाम बन गया।

ग्यारहवीं सदी वो ज़माना था जब मग़रिबी यूरोप की क़ौमों ने अपनी हुकूमत और तहज़ीब को इस्तिहकाम देना शुरू किया। उनका रसूख़ वतन में और वतन से बाहर फैलने लगा। गो अवामुन्नास अब तक वहशी हालत में थे। ख़ादिमान दीन और रऊसा-ए-मुल्क

के दरम्यान किसी क़द्र तर्तीब व तहज़ीब और तमद्दुनी तरक़्क़ी नुमायां हुई लेकिन एक मुअर्रिख़ ने ज़िक्र किया, कि शायद ये उस ज़माना का ख़ास्सा था कि वहशयाना ज़ुल्म और अबतरी और नफ़्सानी जज़्बात के जोश व ख़रोश के साथ-साथ दीनी ज़बरदस्त एहसास भी पाया जाता था। इस एहसास ने अक्सर वहम, जोश सवाब के कामों के बजा लाए और ख़ासकर मसीह की मुक़द्दस क़ब्र का हज करने की सूरत पकड़ी। इस मुक़द्दस शहर तक पहुंचने की कोशिश में हज़ारों ने अपनी जान, सेहत और दौलत तल्फ़ की। इसी क़िस्म की दीनदारी और जाँनिसारी आज तक सरगर्म रूसी हाजियों में पाई जाती है।

जब एशिया कोचक और शाम को तुर्कों ने फ़त्ह कर लिया तो यरूशलेम की आमद व रफ्त की राह मुनक़ते (ख़त्म हो) गई। 1076 ई॰ में (अल-ग़ज़ाली की उम्र अठारह साल थी) तुर्कों ने इन मसीहीयों में से तीन हज़ार को तह तेग़ (क़त्ल) किया और माबाअ्द हुकूमत ने इससे भी ज़्यादा जोर व ज़ुल्म को रवा (ज़ारी) रखा। ये ज़िक्र आया है कि मुअज़्ज़िज़ सदर उस्क़ुफ़ को बालों से पकड़ कर गलीयों में घसीटते फिरे और फिर उसे ज़िंदान में डाल दिया। हर फ़िर्क़े के पादरीयों की बेईज़्ज़ती की और कमबख़्त हाजियों से हर तरह की बदसुलूकी अमल में आई।

मसीही हाजियों के साथ ऐसी बद-सुलूकी का हाल सुनकर सारे मग़रिब में ग़ैय्ज़ (गुस्सा) व ग़ज़ब भड़क उठा। पीटर फ़क़ीर (Hermit) ख़ुद यरूशलेम को गया और यूरोप को वापिस जाकर क़ौमों में आग भड़का दी। इस का नतीजा पहला सलीबी जंग था। जिसमें पोप अर्बन दोम ने हाथ बटाया। तीन लाख अधूरे मुसल्लह और निम लिबास दहक़ान दरिया-ए-राएन और डैन्यूब को उबूर (पार) कर के यूरोप से रवाना हुए इनमें से सिर्फ तीसरा हिस्सा एशिया के साहिलों तक पहुंचा। वहां वो सब के सब मर खप गए सिर्फ उनकी हड्डीयों का मीनार बाक़ी रहा जो उनके अफ़्सोसनाक क़िस्से का बयान करे।

जो सलीबी जंग गॉड फिरे आफ़ बुईलान (Godfrery of Bouillon) की सरकर्दगी में हुई वो बाक़ायदा जंगी मुहिम थी जिसमें यूरोप के जवानों ने हिस्सा लिया। कहते हैं कि बैतुनिया के मैदानों में एक लाख सवार सर से पांव तक मुसल्लह (हथियार के साथ) और छः लाख प्यादे जमा हुए। इस शुमार में शायद कुछ मुबालग़ा हो और मरी और काल ने उनकी तादाद घटा दी हो, तो भी तीन साल से कम अर्से में उस की इस मुहिम का मक़्सद हासिल हो गया। 1097 ई॰ में उन्होंने निकाया का मुहासिरा (घेरा डालना, राह

बंदी) किया और इस को तसख़ीर (कब्ज़े में) कर लिया। फिर उन्होंने अन्ताकिया पर लश्कर कुशी की और सात महीनों की मेहनत के बाद शहर का मुहासिरा (घेराबंदी) किया। 1099 ई॰ में उन्होंने यरूशलेम का मुहासिरा किया और चालीस दिनों के मुहासिरे के बाद ये मुक़द्दस शहर तसख़ीर हुआ। "बेरहम अहले फिरंग ने उन दुखों और मुसीबतों का जो मसीहीयों ने तुर्कों के हाथ से उठाए थे सख़्त इंतिक़ाम लेने से दरेग़ ना किया। यहूदीयों को उनके इबादत ख़ानों ही में जला दिया और सत्तर हज़ार मुसलमानों को तह तेग़ किया। तीन दिन तक शहर में लूट मार और क़त्ल-ए-आम होता रहा हत्ता कि मक़्तूलों के सड़ने से बीमारी फैल गई।"

गॉड फिरे और उस के जांनशीनों ने अपनी हुकूमत को दूर तक तौसीअ दी हत्ता कि सिर्फ चार शहर शाम में मुसलमानों के क़ब्ज़े में रह गए यानी हलब, दमिश्क़, हामात और हम्स। मुसलमान हर जगह ग़म व शर्म खा रहे थे और बड़े आर्ज़ूमंद थे कि अपने दीन पर से ये ज़िल्लत का दाग़ धो डालें।

492 हिज्री में बक़ौल म्यूर साहब :-

> "यरूशलेम की तसख़ीर और वहां के बाशिंदों के साथ ज़ालिमाना सुलूक की वजह से सारे मुल्क में परेशानी फैल गई। वाइज़ जाबजा ये अफ़्सोसनाक क़िस्सा सुनाते फिरते थे। इंतिक़ाम का जोश फैलाते और लोगों को मुश्तइल करते कि उमर की मस्जिद और रसूल-ए-ख़ूदा के मेअराज की जगह को काफ़िरों के क़ब्ज़े से छुड़ाएं।"

ख़्वाह किसी दूसरी जगह इस में उनको कामयाबी हुई हो, लेकिन मशरिक़ में तो ये कोशिश नाकाम रही क्योंकि वो तो अपने झमेलों में फंसे हुए थे उनको मुक़द्दस ज़मीन की चंदाँ पर्वा ना थी, क्योंकि उन दिनों में खुल्फ़ा-ए-फ़ातमी बरसर हुकूमत थे। जिला वतनों के गिरोह जो बग़दाद में पनाह लेने के लिए भागे जा रहे थे वो अवामुन्नास से मिलकर ये चला रहे थे कि अहले फिरंग के साथ जंग करनी चाहीए लेकिन ना तो सुल्तान ने और ना ख़लीफ़ा ने उन की फ़र्याद की तरफ़ तवज्जोह की। दो जुमओं तक बाग़ी यही चिल्लाते रहे। आख़िरकार उन्हों ने इस मस्जिद कुबरा पर हमला किया। मिम्बर को और ख़लीफ़ा के तख़्त को तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और ऐसा शोर व

गुल किया कि लोग नमाज़ ना पढ़ सके लेकिन इस का ख़ातिमा यहां ही हो गया और कोई फ़ौज ना निकली।

ख़ुद मुसलमानों के दर्मियान बहस व तकरार का भरमार था। उस वक़्त तो चार सही-उल-एतक़ाद फ़िर्क़े इखट्टे नमाज़ पढ़ते और और अमन व अमान से रहते हैं। लेकिन उन दिनों में अक्सर सख़्त बहस मुबाहिसे होते एक दूसरे के खिलाफ किताबें और रिसाले लिखे जाते और मुख़्तलिफ़ फ़िर्क़ों के दर्मियान अदावत और दुश्मनी शिद्दत के साथ पाई जाती थी। फ़ारसी मुअर्रिख़ मीर खुवंद नामी ने एक का ज़िक्र किया है, जिससे ज़ाहिर होता है कि ख़िलाफ़त के आख़िर के क़रीब दुश्मनी कहाँ तक तरक़्क़ी कर गई। जब चंगेज़-ख़ाँ का मुग़ल लश्कर शहर रए (رے) के सामने नमूदार हुआ तो उन को पता लगा कि शहर में दो हरीफ़ फ़रीक़ थे। एक फ़रीक़ शाफ़ई मज़्हब का था। दूसरा हनफ़ी मज़्हब का शाफ़ई फ़रीक़ ने फ़ौरन चंगेज़-ख़ाँ के लश्कर से पोशीदा ख़त व किताबत शुरू की और ये वाअदा किया कि अगर वो हनफ़ी फ़रीक़ को तह तेग़ (क़त्ल) करेंगे तो वो शहर को उन के हवाले कर देंगे। मुग़लों को तो ख़ूँरेज़ी से क्या दरेग़ था उन्होंने ख़ुशी से इस शर्त को क़ुबूल किया और जब वो शहर में दाख़िल हुए तो बेरहमी के साथ हनफ़ियों को क़त्ल किया।

जब बाहमी दुश्मनी व अदावत की गर्म-बाज़ारी थी और जंग व ख़ूँरेज़ी का ज़माना था इन दिनों में अल-ग़ज़ाली ने आख़िरी अय्याम ज़िंदगी गुज़ारे। इसी वजह से उन को बाअज़ बातों के लिए हम माज़ूर रखेंगे जो दूसरी हालत में नाक़ाबिल-ए-बर्दाश्त और काबिल नफ़रीं ठहरतीं। क्योंकि हमें मालूम है कि जंग का जोश इन्सानी अक़्ल को अंधा कर देता है और हमला आवरों में किसी ख़ूबी को देखना नामुम्किन हो जाता है।

हम हरगिज़ फ़रामोश ना करें कि अय्याम तुफेलिय्यत (बचपन के दिनों) ही से ग़ज़ाली साहब को मशरिक़ी मसीहीयों से क़रीब ताल्लुक़ पड़ा। मुसलमानों की फ़ुतूहात के वक़्त मसीही दीन फ़ारस में क़ायम हो चुका था और नस्तुरियन कलीसिया ने मुसलमानों के सख़्त हमले का मुक़ाबला किया। हालाँकि ज़रदश्ती दीन इस हमले के सामने तक़रीबन मादूम (गुम) हो गया। अरबों की आमद मसीहीयों के लिए सिर्फ उतनी ही थी कि मुगलों की जगह अरब उन के हाकिम बन गए। नस्तुरियन मसीही ख़लीफों के रियाया हो गए। उन की उस वक़्त ये बुरी हालत ना हुई जो आजकल पाई जाती है। वो ग़ैर-मुल्कों में

मसीही दीन की इशाअत करते रहे। और ख़ुलफ़ा-ए-अब्बासिया के अहद सल्तनत में मशरिक़ में तहज़ीब की मशाल उन्होंने रोशन रखी। उनको इजाज़त थी कि अपने गिरजाओं को बहाल करें, लेकिन नए गरजा ना बनाएँ। बिला अशद ज़रूरत उन को असलाह (हथियार) लगाने और घोड़े पर सवार होने की मुमानिअत थी अगर राह में उनको कोई मुसलमान मिल जाये तो उन को हुक्म था कि घोड़े पर से उतर पढ़ें और हसब-ए-मामूल जज़्या अदा करें तो भी जब तक ख़ुलफ़ा बग़दाद में (750 ई॰ से 1258 ई॰) बरसर हुकूमत रहे। नस्तुरियन मसीही फ़रीक़ निहायत ज़बरदस्त ग़ैर-मुस्लिम गिरोह था और अपने हाकिमों की निस्बत आला तहज़ीब शाइस्तगी के मालिक थे। दरबार में वो तबाबत, किताबत और दुबैर का काम सर-अंजाम दिया करते थे। इस वजह से उन को बहुत रसूख़ हासिल था और दीनी उमूर में अपने ख़ादिमान-ए-दीन और बिशपों के इंतिख़ाब व तक़रीर में उन को पूरी आज़ादी थी। अरबी इल्म का आग़ाज़ जो हसपानीया में हुआ और वस्ती ज़मानों में जिसने बहुत फ़रोग़ हासिल किया बहुत कुछ बग़दाद के नस्तुरियन मसीहीयों से हुआ। उन्होंने अपने अरब हाकिमों को वो यूनानी तहज़ीब व तालीम पहुंचाई जो शामी तर्जुमों में उन को मीरास में मिली थी। यही वजह थी कि ख़ुलफ़ा उन को सारे मसीही फ़िर्क़ों में से आला व अफ़्ज़ल समझते थे और बाज़ औक़ात निस्तूरी बिशपों को सारे मसीहीयों पर हुकूमत अता की।

ग्यारहवीं सदी के इब्तिदा में अल-बैरूनी नामी खेवा के एक मुसलमान मुसन्निफ़ ने बयान किया है कि ख़लीफ़ा के ज़ेर हुकूमत मसीही फ़िर्क़ों में से निस्तूरी फ़रीक़ सबसे ज़्यादा मुहज़्ज़ब था। उसने लिखा कि :-

> “मसीहीयों के तीन फ़िर्क़े थे मलकी, नस्तूरी और याक़ूबी। इनमें से शुमार में सबसे ज़्यादा मलकी और निस्तूरी थे। क्योंकि यूनान और क़रीब व जवार (आसपास) के सारे ममालिक में मलकी मसीही आबाद थे और शाम इराक़, मसोपितामिया और खुरासान में कस्रत नस्तूरी मसीहीयों की थी।”

अल-ग़ज़ाली ने पहले बीस साल खुरासान में गुज़ारे। अब ये सवाल रहा कि आया इन्जील के मुतालए के ज़रीये मसीही दीन से उन्होंने वाक़फ़ीयत हासिल की? हमें मालूम है कि गो फ़ारसी तर्जुमे इन्जील के मौजूद थे इसी वजह से गज़ाली की तस्नीफ़ात में

मसीह और उस की तालीम की तरफ़ बहुत इशारे हैं और मादूद चंद ऐसे मुक़ाम हैं जिनको हम ठीक तौर पर इक़्तिबास कह सकें, जिसका बाद में ज़िक्र होगा। उन्होंने ख़ुद बयान किया **"मैंने इन्जील में पढ़ा"**

ये ज़न (ख़याल) ग़ालिब है कि अल-ग़ज़ाली ने इन्जील का अरबी तर्जुमा पढ़ा होगा। डाक्टर किल गूर (Kilgare) साहब ने इन्जील की अरबी नुस्ख़ों का जो नौवीं सदी के थे और अहद-ए-अतीक़ के तर्जुमों और नए अहदनामे के हिस्सों का ज़िक्र किया। जो फ्यूम ज़बान में 942 ई॰ से पेश्तर हुए। शामी ज़बान से अहदे-अतीक़ की बाअज़ किताबों के तर्जुमे दसवीं सदी से इलाक़ा रखते हैं। दूसरे तर्जुमे स्तरों के तर्जुमे से और क़िबती तर्जुमों से और तौरेत के बाअज़ नए तर्जुमे जिन्हों ने सामरी तौरेत और मसूरेट नुस्ख़ों को इस्तिमाल किया।

शामी और अरबी ज़बानों में डिगलत (Diglot) नुस्ख़े बकस्रत हैं। चारों अनाजील का नुस्ख़ा जिसके चंद औराक़ ब्रिटिश अजाइब घर में अब महफ़ूज़ हैं वो ऐसे डिगलत नुस्ख़ों का उम्दा नमूना हैं। नितरी अन सहरा के शामी राहिब ख़ाने बनाम मुक़द्दस मेरी डाए परा (St. Mary Die Para) से तिशदरफ़ साहब इस नुस्ख़े को यूरोप ले गए। ग्यारहवीं सदी के आग़ाज़ में तत्बीक़ अनाजील अरबा (Fatiou's Diotessaron) का तर्जुमा अरबी ज़बान में किया गया। ये वही शामी तत्बीक़ अनाजील अरबा है, जिसने मसीही कलीसिया की इस अम्र में मदद की कि हमारे नजातदिहंदा के बारे में बड़े-बड़े उमूर को समझ लें। इसी सदी के वस्त में रोमन कैथोलिक या मलकी यूनानीयों की कलीसियाई इबादत के इस्तिमाल के लिए ज़बूर की किताब का तर्जुमा हुआ। चूँकि इस का तर्जुमा यूनानी तर्जुमा से हुआ था और जिस जगह ये तबाअ हुआ उस की वजह से या हलबी ज़बूर (Aleppo Psalter) के नाम से मौसूम है। अब ये दिलचस्प सवाल बाक़ी रहा कि आया इमाम ग़ज़ाली ने अपनी सियाहत के वक़्त या खुरासान में रिहाइश के वक़्त नए अहदनामे की तहक़ीक़ात की या नहीं?

ये बयान किया जाता है कि यहूदीयों ने अपनी तौरात का तर्जुमा 867 ई॰ में फ़ारसी ज़बान में किया। इसलिए फ़ारसी मसीहीयों की इस ग़फ़लत को हम माज़ूर नहीं रख सकते। उन के बिशपों को इस के लिए काफ़ी वक़्त मिला कि फ़ारसी अरबी ज़बान में बड़े-बड़े इल्मी रिसाले लिखें, बल्कि अरस्तू की तस्नीफ़ात का तर्जुमा भी करें लेकिन

मुसलमानों की ख़ातिर अपनी किताब मुक़द्दस का तर्जुमा ना करें। अलबत्ता अलकिंदी और इस जैसे दूसरे जिनमें से अक्सरों के नाम और तस्नीफ़ात खो गईं वो ख़ुलफ़ा के दरबार में अपने दीन की शहादत देने से नहीं शर्माए। बक़ौल डब्लयू॰ टी॰ वाईट ले साहब,

> "कलीसिया अपनी नवाही के मुसलमानों पर असर डालने में क़ासिर नहीं रही। हालाँकि हुक्म ये था कि अगर कोई मसीही किसी मुसलमान को अपने दीन में शामिल करे तो वो जान से मारा जाये। अलबत्ता ऐसे हुक्म पर अक्सर औक़ात अमल नहीं हुआ। तो भी दमिश्क़ और बग़दाद में इस्लाम ने मसीही कुरहा तासीर में नशो नुमा पाया।"

मगर उस ज़माने की मसीहीय्यत ना तो ख़ालिस मसीह का दीन था ना उस की मुहब्बत और बेतास्सुबी के नमूने पर था। बाहमी अदावत और बद-गुमानी की वजह से दीनदार मसीहीयों और दीनदार मुसलमानों में राह व रब्त मस्दूद थी। मुसलमानों से लोग डरते थे और मसीहीयों को हक़ीर जानते थे। मुसलमानों की निगाह में मसीह के पैरौ (मानने वाले) अल्लाह के दुश्मन थे।

उस ज़माने की शरई किताबों से मालूम हो सकता है कि मसीहीयों के साथ कैसा सुलूक होता है। मुसलमानी मअनी में वो काफ़िर समझे जाते थे और महज़ जज़्या अदा करने के ज़रीये ही उन की जान बख़्शी होती थी। इस जज़्या के देने के ज़रीये उन को चंद हुक़ूक़ मिल जाते थे।

शाफ़ई फ़िर्क़े का निहायत मशहूर मुअल्लिम शराअ अल-नववी नामी 1627 ई॰ में बमुक़ाम दमिश्क़ फ़तवा दिया करता था। उसने ये क़ानून ठहराया था, "जो काफ़िर जज़्या अदा करे उसे महसूल लेने वाला नफ़रत की निगाह से देखे। महसूल लेने वाला बैठा रहे और काफ़िर उस के सामने खड़ा रहे और उस का सर और बदन झुका रहे। काफ़िर अपने हाथ से रुपया तराज़ू में डाले और महसूल लेने वाला उसे दाढ़ी से पकड़े रखे और उस के गालों पर तमांचे मारता जाये। काफ़िर अपने घर अपने क़ुर्ब व जवार के मुसलमानों के घरों से ऊंचे बनाने ना पाएं। बल्कि उन के बराबर ऊंचा भी ना बनाएँ। लेकिन ये हुक्म उन काफ़िरों के लिए नहीं जो अलग मुहल्ले में रहते हों। हमारे सुल्तान की काफ़िर रईयत (रियाया) घोड़े पर सवार ना हो। अलबत्ता गधे और ख़च्चर पर सवार हो सकता था ख़्वाह

उन की क़ीमत कितनी ही क्यों ना हो। वो आकाफ़ और लकड़ी की मह मेज़ इस्तिमाल करे, लोहे की मेह मेज़ इस्तिमाल करना उसे मना था और ज़ीन इस्तिमाल करना भी। अगर राह में कोई मुसलमान जाता होतो आप सड़क के किनारे हो जाए और मुसलमान को गुज़र जाने दे। कोई उसे इज़्ज़त की निगाह से ना देखे ना किसी मज्लिस में वो सदर नशीन हो। वो अपने लिबास के लिए रंगीन कपड़ा इस्तिमाल करे और कमरबंद कपड़ों के ऊपर बाँधे। अगर वो किसी हमाम में दाख़िल हो जहां मुसलमान हों या अगर उन की हाज़िरी में वो अपने कपड़े उतारे तो काफ़िर अपने गले में लोहे का तौक़ डाले या जस्त काया गुलामी का कोई दीगर निशान पहने। वो मुसलमानों को नाराज़ ना करे ना अपनी झूटी तालीम सुना कर ना एज़्राह या मसीह का बुलंद आवाज़ से नाम लेकर ना बरमला शराब पीने या सूअर का गोश्त खाने से। काफ़िरों को मना था कि गिरजाओं के या इबादत ख़ानों के घंटे बजाएं या अपनी बद दीनी की रसूम बरमला अदा करें।"

प्रोफ़ैसर मार्गलूथ साहब लिखते हैं कि :-

> "मुसलमानों के अह्दे हुकूमत के मसीही जमाअतों की ठीक ठीक तारीख़ लिखना मुश्किल है। क्योंकि उन जमाअतों को अपनी हालत लिखने का मौक़ा ना था और ना ऐसा करना ख़तरे से ख़ाली था। और मुसलमानों को उस की तरफ़ तवज्जोह करने की परवाह ना थी। उमूमन उनकी हालत वैसी ही थी जैसी यूनानी और रूसी आलिमों ने औरतों की बयान की है यानी ये कि वो लाज़िमी ज़हमत थी। चूँकि वो बे असलाह होते थे, इसलिए उनका माल व दौलत हमेशा मारिज़-ए-ख़तर (खतरे) में था। गो ये सच्च है कि मुतलक़-उल-अनान रियासतों में जहां हाकिम मुख़्तार-ए-मुत्लक़ था सारी रईयत का यही हाल था तो भी ग़ैर-मुस्लिम रियाया ना सिर्फ बादशाहों से ज़ुल्म उठाती थी, बल्कि अन्बूह (गिरोह) मर्दमान से भी। जहां कहीं कोई मुसीबत आती तो मसीहीयों पर इल्ज़ाम आता और जिन ममालिक का इंतिज़ाम बाक़ायदा था वहां भी मुसीबत के अय्याम (दिनों) में मसीहीयों पर इल्ज़ाम थोपा गया।"

उस ज़माने में मसीहीयों के साथ जो बदसुलूकीयाँ अमल में आईं और जो बद हालत पाई गई उस पर पर्दा डालना ही बेहतर होगा। लेकिन इमाम ग़ज़ाली की किताब "अहया" में ऐसी ख़ौफ़नाक हालत का ज़िक्र है जिसकी तरफ़ मार्गलूथ साहब ने इशारा किया :-

> "एक शहवत नफ़्सानी जिसका नाम नहीं बताया एक वक़्त मुसलमानों में वैसी ही आम थी जैसी क़दीम यूनानियों में। इस शहवत का शिकार अक्सर कम्बख़्त मसीही नौजवान होते थे। मुअर्रिख़ या क़ुव्वत ने अडीसा या अफ़्रा के एक नौजवान राहिब का बयान किया है जिस पर एक साद नामी फ़कीबा आशिक़ हो गया। इस मुसलमान का बार-बार इस नौजवान को मिलने जाना राहिबों का ऐसा बुरा लगा कि उन्होंने उस की आमदो रफ्त बंद कर दी। इस पर सअद को ऐसा रंज पहुंचा कि एक रोज़ वो राहिब ख़ाने की दीवार के बाहर मुर्दा पाया गया। मुसलमानों ने ये मशहूर किया कि राहिबों ने उसे मार डाला और हाकिम ने ये तज्वीज़ की कि वो नौजवान राहिब जिसकी वजह से ये हादिसा हुआ फांसी दिया जाये और जला दिया जाये और उस के रफिक़ियों को बंद लगाऐं। लेकिन राहिबों ने एक लाख दिरहम अदा करके मख़लिसी (छुटकारा) हासिल की।"

ना सिर्फ मुसलमानों की अख़्लाक़ी हालत ऐसी थी बल्कि ग्यारहवीं सदी में मसीहीयों की अख़्लाक़ी हालत भी वैसी ही ख़राब थी। एक रोमन कैथोलिक मुअर्रिख़ ने उस ज़माने को लोहे का ज़माना कहा है जो हर तरह की नेकियों से मुअर्रा था और जस्त का ज़माना जिसमें हर तरह की बदी की कसरत थी। "मालूम होता है कि मसीह उस वक़्त सोया पड़ा था जिस वक़्त जहाज़ पर लहरें ज़ोर मार रही थीं सबसे बदतर अम्र ये था कि जिस वक़्त मसीह सो रहा था कोई शागिर्द भी ऐसा ना था जो फ़र्याद करके उस को जगाए क्योंकि वो ख़ुद ख़्वाब-ए-ग़फ़लत में सोए पड़े थे।"

पोपियत के दुश्मनों ने शायद इस सदी और मुक़ाबिल सदी के पोपों की बदियों और ख़राबियों का बयान मुबालग़े से किया हो। लेकिन कलीसिया ही के मोअर्रिखों का

बयान है कि कलीसिया कुफ़्र नफ़्सानियत और शहवत परस्ती में ग़र्क़ थी। जब आथो अव्वल क़ैसर जर्मी रुम में आया तो उसने बज़ोर शमशीर (तल्वार) चंद अख़्लाक़ी इस्लाहें जारी कीं लेकिन बक़ौल मिलनर साहब (Milner) :-

> "आथो के क़वानीन का नतीजा ये हुआ कि पोपों ने शिकंजा और शराबखोरी की बदीयाँ छोड़कर लालच और मक्कारी की बदियों को इख़्तियार कर लिया। दूर अंदेशी की रोशन और हुक्म की इताअत जो बदियों की कस्रत के बाइस जाती रही थी वो बतद्रीज फिर बहाल हो गई लेकिन इस का आग़ाज़ ग्यारहवीं सदी के आख़िरी हिस्से में हुआ।"

इस सदी में मशज़ी सरगर्मी हंगरी, डेनमार्क, पोलैंड और पर्शिया के उन हिस्सों ही में महदूद रही जहां पहले इन्जील की बशारत ना हुई थी। बरेमन के आदम (Adam) साहब ने 1080 ई॰ में ये लिखा :-

> "डेनमार्क की तुंद-ख़ू क़ौम की तरफ़ देखो कि वो अब मुद्दत से ख़ुदा की तारीफ़ हलेलुयाह गाते हैं। इन दरियाई चोरों की तरफ़ निगाह करो, अब वो अपने मुल्क के फलों ही पर गुज़रान करते हैं। इस दहशतनाक इलाक़े को देखो जहां सरासर बुत-परस्ती होती थी अब वो मुबश्शिरिन इन्जील को ख़ुशी से क़ुबूल करते हैं।"

अहले पर्शिया इस सारी सदी में बराबर बुत-परस्त रहे। ये ज़िक्र आता है कि जो अठारह मिशनरी इनमें ख़िदमत करने के लिए भेजे गए थे वो मक़्तूल (क़त्ल) हुए। यूरोपीयन क़ौमों में से ग़ालिबन ये आख़िरी क़ौम थी जिन्हों ने सबसे पीछे मसीही दीन को क़ुबूल किया।

मसीहीयों की तारीख़ में मग़रिब में इस सदी का सब से अफ़्ज़ल शख़्स अनसेलम (Anselm) था। ये तक़रीबन उस वक़्त पैदा हुआ जिस वक़्त कि अल-ग़ज़ाली पैदा हुआ था और उसने 1109 ई॰ में वफ़ात पाई। उस की ज़िंदगी बहुत बातों में उस के हम-अस्र की मानिंद थी। दोनों आलिमान अल-हयात और दोनों सूफ़ी थे और दोनों ने अपनी रूहों

के लिए इत्मीनान हासिल करने की ख़ातिर दुनिया और उस की तहरीसों को तर्क किया। दोनों बेदीनी और फ़लसफ़े के दुश्मन थे। इन दोनों ने अपनी तस्नीफ़ात और वाज़मों के ज़रीये निहायत तासीर की। अल-ग़ज़ाली ने इस्लामी दीनी ज़िंदगी की तरक़्क़ी व तजदीद की कोशिश अपनी किताब अहया के ज़रीये की और अनसलेम ने अपनी मशहूर किताब (Curdeus Homo) लिखी और दीन को इस्तिहकाम देने की ख़ातिर इन्होंने फ़लसफ़ों की तर्दीद की।

इस क़रीने में ये याद रखना दिलचस्पी से ख़ाली ना होगा कि अनसलेम साहब की मज़्कूर बाला मशहूर किताब का तर्जुमा अरबी ज़बान में हो गया है और जो मिशनरी मुसलमानों के दर्मियान काम करते हैं वो इसे इस्तिमाल करते हैं और अल-ग़ज़ाली साहब की किताब बनाम "इक़रारात" (اقرارات) का अंग्रेज़ी में तर्जुमा हो गया और ये उस की ख़ुलूस दिली और दीनदारी की शहादत है।

अनसलेम और अल-ग़ज़ाली दोनों की ज़िंदगी और तस्नीफ़ात में आइन्दा जहां यौम अदालत के ख़ौफ़ और शरीरों (बेदीनों) के बद-अंजाम का गहरा एहसास पाया जाता है। ये भी उस ज़माने की ख़ास ख़ुसूसीयत थी, जिस ज़माने में अल-ग़ज़ाली ज़िंदा था। इस को समझने के लिए हमको ये भी याद रखना चाहीए कि बग़दाद के ख़ुलफ़ा अब्बासिया और सल्जूक़ सलातीन के अहद सल्तनत में उलूम व फ़नों को बहुत फ़रोग़ हासिल था। ये ज़िक्र हो चुका है कि हुक्काम ने उलमा की कैसी क़द्र-दानी की। मदरिसे क़ायम किए और तालीम को दीनी तरीक़े पर तरक़्क़ी दी। अरबी इल्म-ए-अदब के हर सीगे में मुसलमान आलिमों के बेशुमार नाम पाए जाते हैं।

इमाम ग़ज़ाली के मशहूर हम-अस्र आलिमों में से एक अबी दर्दी बामी शायर था। (1113 ई॰) एक इब्ने ख्यात जो बमुक़ाम दमिश्क़ 1058 ई॰ में पैदा हुआ और फ़ारस में (1125 ई॰) में मर गया। अल-ग़ाज़ी (1049 ई॰) जिसने निज़ामीया कॉलेज के तारीफ़ और कैफ़ीयत में नज़्म लिखी। वो अल-ग़ज़ाली का हम-मक्तब था और उसने खुरासान में वफ़ात पाई। एक तर्बलुसी नामी (1080 ई॰) में पैदा हुआ जो अल-ग़ज़ाली से उम्र में छोटा था लेकिन इन सब में मशहूर शायर अलहरीरी था। (1054 ई॰ से 1122 ई॰ तक) जिसकी किताब बनाम "मुक़ामात" उस ज़माने के तौर तरीक़ों और अख़्लाक़ पर बहुत रोशनी डालती है। जो तलबा निज़ामीया दार-उल-उलूम में थे उनमें से एक शख़्स अल-ख़तीब

नामी था (1030 ई॰) में पैदा हुआ जो इल्मे ज़बान में शहरा आफ़ाक़ था और इब्ने अरबी जो बमुक़ाम सेविले (Seville) 1076 ई॰ में पैदा हुआ और अल-ग़ज़ाली की तालीम सुनने के लिए बग़दाद गया। शाफ़ई आलिमों में से सबसे बड़ा अल-रियानी नामी गुज़रा है। वो भी अल-ग़ज़ाली का हम-अस्र था। ये नीशापूर में दर्स दिया करता था और उसने फ़िक़्ह (वाक़फ़ीयत इल्म, अहकाम की शरीअत की मालूमात) की मशहूर किताब "बहर-उल-उलूम" नामी लिखी। 1108 ई॰ में एक रोज़ जब उस ने अपना दर्स ख़त्म किया तो क़ातिल (हशीशीन) फ़िर्क़े के एक मुतअस्सिब शख़्स ने उसे क़त्ल कर डाला। हम अल-ग़ज़ाली के एक हम-जमाअत अल-हरसी नामी (1058 ई॰ से 1110 ई॰) का भी ज़िक्र करेंगे। उसने भी नीशापूर में इमाम अल-हरमी से तालीम पाई, फिर वो बग़दाद को गया और बाक़ी उम्र निज़ामीया दार-उल-उलूम में इल्म-ए-इलाहीयात पढ़ाता रहा। हम अल-बैज़ावी को भी फ़रामोश ना करें जिसने क़ुरआन की मशहूर तफ़्सीर लिखी और इल्म-ए-इलाहीयात पर दीगर रिसाले तहरीर किए। (1122 ई॰) अल-राग़िब, अल-असफ़हानी जिसने 1108 ई॰ में वफ़ात पाई और क़ुरआन की लुग़ात हरूफ़-ए-तहज्जी के सिलसिले के मुताबिक़ लिखी। इस का नाम "मुफ़रिदात अल्फ़ाज़-उल-क़ुरआन" (مفردات الفاظ القرآن) है। इस में हदीसों और शाइरों की किताबों से इक़तिबासात भी दिए गए हैं। उसने अख़्लाक़ पर भी एक रिसाला लिखा जिसे इमाम ग़ज़ाली हमेशा अपने साथ रखा करते थे यानी "किताब अल-ज़ारइया" (کتاب الذارعیہ) और क़ुरआन की एक तफ़्सीर लिखी। अल-ग़ज़ाली के इब्तिदाई हम-अस्रों में से हम अली बिन उस्मान-उल-जबी-उल-हजवरी (علی بن عثمانالجبی آل جوری) को ना भूलें जिसने तसव्वुफ़ पर फ़ारसी में एक रिसाला लिखा जो अब तक मौजूद है। वो बमुक़ाम गज़नी वाक़ेअ अफ़्ग़ानिस्तान में पैदा हुआ और 1062 ई॰ में वफ़ात पाई। जबकि अल-ग़ज़ाली की उम्र चौदह साल थी। अल-हजवरी ने दूर व नज़्दीक मुहम्मदी ममालिक में सियाहत (सफ़र) की और उस की किताब "कश्फ़-उल-महजूब" (کشف المحجوب) में बहुत सी बातें पाई जाती हैं जिनकी अल-ग़ज़ाली ने पीछे तालीम दी। इस से ज़ाहिर है कि वो इस किताब से वाक़िफ़ होंगे। इन शहरा आफ़ाक़ उलमा की फ़हरिस्त को तक्मील देने की ख़ातिर हम नीशापूर के आलमेदानी का ज़िक्र भी करेंगे जिसने 1124 ई॰ में वफ़ात पाई और ज़रब-उल-अम्साल की एक मशहूर किताब लिखी और अल-ज़महशरी का जो 1074 ई॰ में पैदा हुआ। उसने क़ुरआन की मशहूर तफ़्सीर लिखी और इब्ने तोमरत मग़रिब का मशहूर फिलासफर जो निज़ामीया दार-उल-उलूम में अल-ग़ज़ाली के लेक्चर सुनता रहा और अल-शहरस्तानी जिसने मुख़्तलिफ़ मज़ाहिब और फ़िर्क़ों का बयान लिखा और मुक़ाबला मज़्हब

के बारे में सारे मुसलमानों के दर्मियान ये मुस्तनद किताब है। बहुत उमूर के लिहाज़ से ये ज़माना इस्लामी अदब का सुनहरा ज़माना था और बिलाशक ये आला दर्जे की तारीफ़ है कि मुसलमानों और मसीहीयों दोनों की राय में अल-ग़ज़ाली अपने सब हम-अस्र उलमा पर सबक़त ले गया। अगर तर्ज़ इबारत व फ़साहत में नहीं तो कम अज़ कम अपनी तस्नीफ़ात की वसात और ख़ूबी में तो ज़रूर और सबसे बढ़कर उस की ज़िंदगी की तासीर ज़्यादा आलमगीर और देरपा थी। अब नाज़रीन की ख़ातिर उस की ज़िंदगी का क़िस्सा और उस के पैग़ाम की कैफ़ीयत बयान करने की कोशिश करेंगे।

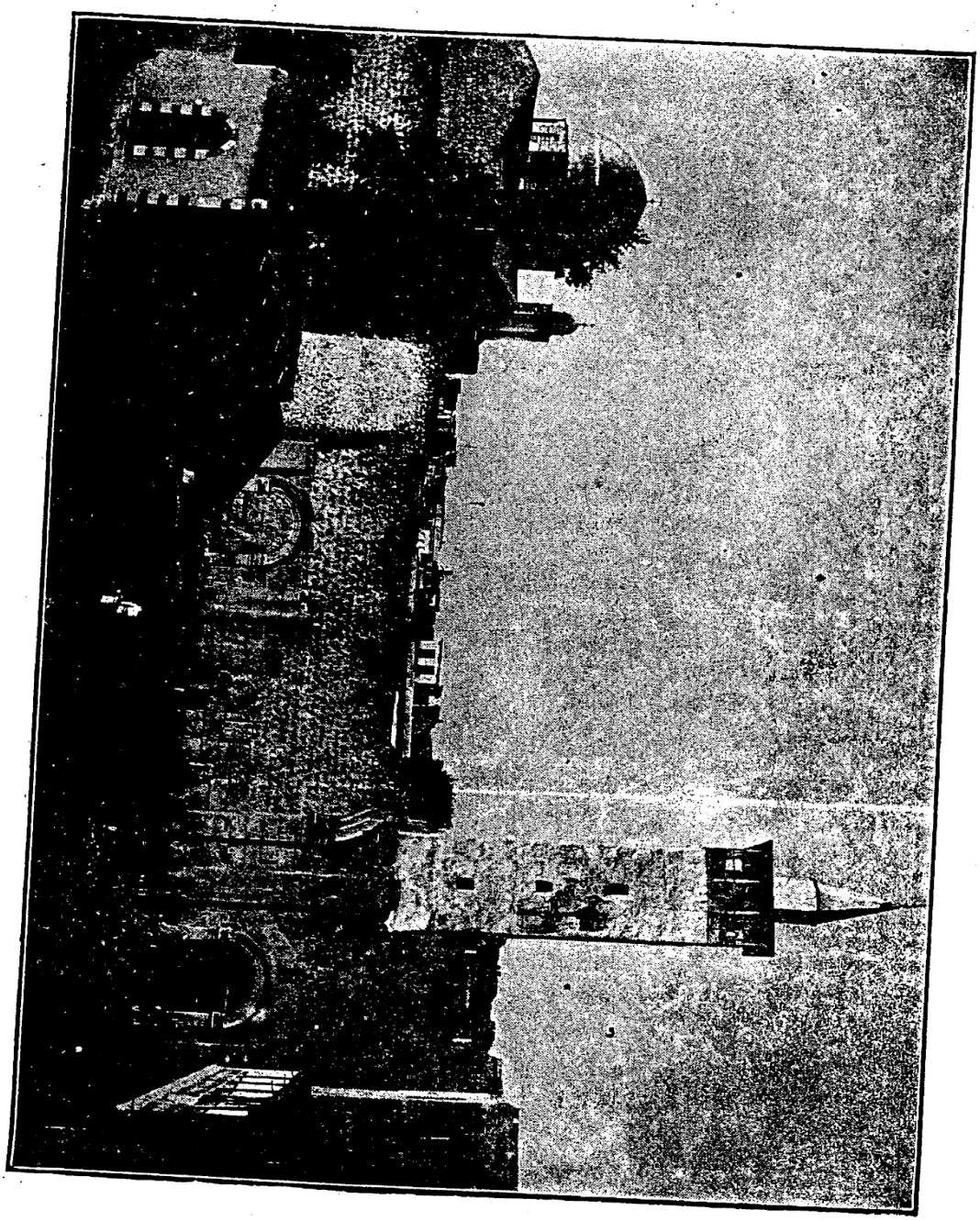

باب توما بدمشق الشام

बाब तोसाबिद मश्क़ अल-शाम

باب توصابد مشق الشام

बाब दोम

पैदाइश और तालीम

जैसा मज़्कूर हुआ अल-ग़ज़ाली खुरासान वाक़ेअ फ़ारस में पैदा हुआ और वहां ही उसने तालीम हासिल की और अपनी ज़िंदगी के आख़िरी अय्याम भी वहां ही सर्फ किए। जैसा कि होआर्ट साहब ने बयान किया। फ़ारस में एक ग़ैर-महसूस क़ुव्वत थी यानी आर्या ज़हानत और आर्या यूरोपीयन ख़ानदान की ज़बरदस्त मुतख़य्युला इख़्तिरा कनुंदा तबाअ। मुसव्विराना फिलासफ़राना दिमाग़ जिसने ज़माना अब्बासिया से लेकर बहुत अर्से तक अरब के इल्म-ए-अदब पर ऐसा ज़बरदस्त सिक्का जमाया कि ख़ुलफ़ा की सल्तनत के हर हिस्से में उस के नशो व नुमा में मदद की और बेशुमार किताबें पैदा कीं। इसी आर्या ज़हानत के बाइस अल-ग़ज़ाली की ज़बरदस्त तासीर मुस्लिम ख़याल पर हुई और जिसकी वजह से इस तासीर में हमारे ज़माने में फिर जान पड़ गई जब कि इस्लामी ताक़तों का शिकंजा ढीला हो रहा है। अल-ग़ज़ाली के अय्याम में फ़ारस का रसूख़ सबसे ज़बरदस्त था। ये रसूख़ हर जगह सरायत कर गया था। अरबों ने तहरीर करना छोड़ दिया था। नज़्म, इल्म इलाही और साईंस में फ़ारसी तस्नीफ़ात गोया सबक़त ले गईं। सारे ओहदे मुल्की और शरई ग़ैर-अरबों के हाथ में थे तो भी जिस ज़बान का रिवाज था वो क़ुरआन की ज़बान थी और ख़ुलफ़ा की वसीअ सल्तनत में तहरीर व तस्नीफ़ उसी ज़बान में हुई थी। “सारी कौमें फ़ारसी शामी और मग़रिब के बरबरी इस ज़बरदस्त देग में पिघल कर एक हो गईं।”

अल-ग़ज़ाली पैदाइश से फ़ारसी था। ख़यालात में आर्या, मज़्हब में सामी और सियाहत व तालीम के ज़रीये वो मुख़ब आलम यानी हर मुल्क का ख़ैर-ख़्वाह हो गया। चूँकि वो अपने ज़माने के इस्लामी सदर मुक़ामों में देर देर तक सुकूनत रखते इसलिए हर तरह के ख़यालात और हर क़िस्म के मज़ाहिब व फ़लसफ़ों से उनका गहिरा ताल्लुक़ रहा। इस के याद रखने से हमको उनकी वसीअ इल्मी तस्नीफ़ात का राज़ मालूम हो जाएगा। उनकी नज़र का उफ़क अफ़्ग़ानिस्तान से हस्पानिया तक और कुर्दिस्तान से जुनूबी अरब तक फैला हुआ था। दार-उल-इस्लाम से बाहर कुफ़रिस्तान यूरोप में जो कुछ वाक़ेअ हो रहा था, उस का हाल सलीबी जंगों के ज़रीये मालूम होता रहा।

साहिब-ए-इल्म अश्ख़ास का राह व राब्ता बज़रीये ख़त व किताबत इस्लामी दुनिया के हर हिस्से के साथ था। उन ख़तों का ज़िक्र आता है जो अल-ग़ज़ाली को हसपानीया, मराको, मिस्र, शाम और फ़िलिस्तीन से आते रहे। फ़िक़्ह, फ़ल्सफ़ा और इल्म इलाही के सवालात सलातीन ज़माना मशहूर मुस्तनद उलमा के पास जवाब के लिए भेजा करते थे। जो वुसअत उस की तस्नीफ़ात में पाई जाती है इस की यही वजह होगी।

मूर (Moore) शायर ने अल-ग़ज़ाली के वतन का ये ज़िक्र किया है।

> "आफ़्ताब का ख़ुशनुमा सूबा, फ़ारसी ममालिक में से ये पहली सर-ज़मीन है जिस पर सूरज चमकता है। जहां उस की शुवाओं की ख़ूबसूरत शक्लें पैदा होतीं और फूल और फल हर नदी पर लहलहाते हैं और सारी नदियों में से ख़ूबसूरत नदी मर्ग़ा वहां बेहती है। सरो के दरख़शां महलों और कुंजों में।"

लफ़्ज़ ख़ुरासान के मअनी ही ये हैं "सर-ज़मीन आफ़ताब" और सासानी क़दीम सल्तनत जिन चार हिस्सों में मुनक़सिम थी उनमें से ये एक हिस्सा था। क़ुतबनुमा के बड़े-बड़े नुक़्तों के मुताबिक़ उनके नाम रखे गए थे। अरबी फ़ुतूहात के बाद ये नाम एक ख़ास सोने का भी था और आम तौर पर फ़ारस के मशरिक़ी इलाक़े का ये नाम था। अब तक इस सूबे की हदूद ठीक तौर पर बयान नहीं हुईं। इस का कुल रकबा 150000 मुरब्बा मील है और हाल में इस की आबादी 800000 से ज़्यादा नहीं बिलाशक अल-ग़ज़ाली के ज़माने में इस की आबादी इस से कहीं ज़्यादा होगी।

शुमाल और जुनूब मग़रिब की तरफ़ ख़ुरासान पहाड़ी है मशरिक़ की तरफ़ कोहिस्तान है लेकिन सिलसिला कोह के माबैन वसीअ वीरान इलाक़ा है। इन वीरानों में से सबसे ज़्यादा वसीअ "दश्त कबीर" है। सारे इलाक़े में ख़ास तौर तूस के नज़्दीक जो मैदान और सरसब्ज़ वादीयां हैं वो एक दूसरे पर सबक़त ले जाने में जद्दो जहद करती रहती हैं। फिसलते रेगिस्तानों ने कई कस्बों और दिहात को निगल लिया है। इस इलाक़े में मुश्किल से कोई दरिया पाया जाता है और जो चंद नदियाँ नाले हैं वो मज़े में तल्ख़ हैं और सहरा-ए-शोर में जज़्ब हो जाते हैं जो नमक इन दरियाओं के ज़रीये बह आता है वो दलदलों में जमा हो जाता है। मौसम-ए-गर्मा की शिद्दत तमाज़त (शिद्दत की गर्मी) उनको ख़ुश्क कर डालती है हत्ता कि मौसम-ए-सरमा के सेलाब फिर रवां हो जाते हैं चूँकि

ये अमल ज़मानों से जारी है इसलिए वो सारा क़ताअ ज़मीन जहां दलदल फैला हुआ है नमक की तह बन गया है।

सय्याह और मौसम शनास इस अम्र पर मुत्तफ़िक़ हैं कि ये सारा मुल्क तमाज़त आफ़्ताब से और क़िल्लत-ए-आब से झुलस गया है। शहरों और दिहात के खन्डरात बेशुमार पाए जाते हैं जिनसे ये साबित होता है कि किसी ज़माने में यहां आबादी कस्रत से होगी और आब व हवा बहुत बेहतर होगी और आबपाशी का बेहतर इंतिज़ाम होगा। ये कहना ख़िलाफ़ इन्साफ़ होगा कि फ़ारस की ये सारी तबाही जंग व जदल (लड़ाई, फसाद) और सलामी बद-इंतिज़ामी का नतीजा है। बक़ौल हनटिंगटन साहब :-

> "खुरासान, आज़र बाइजान, किरमान और सेस्तान के चारों
> सूबों का मुक़ाबला करना ख़ाली अज़ दिलचस्पी नहीं।"

फ़ारस के बाक़ी इलाक़ों की निस्बत खुरासान ने जंग व जदल (लड़ाई, फसाद) से ज़्यादा नुक़्सान उठाया। इस का शुमाली हिस्सा जहां बारिश कस्रत से होती है और जहां सबसे ज़्यादा लड़ाईयां वक़ूअ में आईं आज फ़ारस के सब से ज़्यादा आबाद हिस्सों में है। इस में बेशुमार खन्डरात हैं लेकिन वो ऐसे दिलचस्प नहीं जैसे कि जुनूब की तरफ़ के खन्डरात हैं। इस इलाक़े के जुनूबी और ज़्यादा ख़ुश्क हिस्से में खन्डरात बकस्रत पाए जाये हैं और वहां की आबादी बहुत घट गई है। आज़र बाइजान जिसने जंग से दूसरे इलाक़ों की निस्बत मासिवा खुरासान के ज़्यादा नुक़्सान उठाया। वो फ़ारस के इलाक़ों में ज़्यादा आबाद और ग़नजान है चूँकि निस्बतन यहां पानी की कस्रत है इसलिए इस का मुस्तक़बिल ज़्यादा पुर-उम्मीद है। सेस्तान ने भी जंगों से नुक़्सान उठाया लेकिन माक़ब्ल दो इलाक़ों के बराबर नहीं तो भी यहां की आबादी बहुत घट गई। ये इलाक़ा ऐसा बन्जर हो गया है कि इस का बहाल होना तक़रीबन नामुम्किन हो गया है। सिवाए हलमंद के क़ुर्ब व जवार के। किरमान ने सहरा और कोहिस्तान से दूर वाक़ेअ होने के बाइस पहले तीन सूबों की निस्बत लड़ाईयों से कम नुक़्सान उठाया। तो भी इस के शहरों के खन्डरात और आबादी में ऐसी शिद्दत की कमी तक़रीबन वैसी ही नमूदार है जैसे सेस्तान के, अगर फ़ारस के तनज़्ज़ुल (गिरावट) का बाइस जंग व बद-इंतिज़ामी हो तो ये क़ाबिल लिहाज़ है कि जिन दो सूबों ने जंग से ज़्यादा सरसब्ज़ तौर पर आबाद हैं जिन दो सूबों

ने लड़ाई और बद-इंतिज़ामी से कम नुक़्सान उठाया वो ऐसे उजड़े हैं कि उनका बहाल करना तक़रीबन नामुम्किन नज़र आता है।

आजकल खुरासान के सूबे की सर-ज़मीन सतह मुर्तफ़े, शोर सहरा और फलदार सेराब वादीयों पर मुश्तमिल है। इन फलदार इलाक़ों में चाओल, कपास, ज़ाफ़रान लेकिन ख़सूसुन ख़रबूज़े और दीगर फल बकस्रत पैदा होते हैं। दीगर पैदावार ये हैं गूंद, मन, फ़ीरोज़ा वग़ैरह जो हिन्दुस्तान को भेजे जाते हैं ख़ास दस्तकारीयां ये हैं तलवारें, मिट्टी के बर्तन, क़ालीन रुई और कत्तानी अश्या।

शहर मशहद (ईरान का एक मशहूर शहर जिसे तूस भी कहते हैं) ने जो आजकल खुरासान का सदर मुक़ाम है पुराने शहर और इलाक़ा तूस की जगह छीन ली है जो क़दीम ज़माने में सदर मुक़ाम था। इस शहर के खन्डरात पंद्रह मील शुमाल की जानिब पाए जाते हैं। दसवीं सदी में भी अल-ग़ज़ाली के मौलुद (जाये विलादत) का ज़िक्र पाया जाता है। मिसआर महलहेल (941 ई॰) के क़रीब ने ये रक़म किया।

> “ये चार कस्बों के इज्तिमे से बना है इनमें से दोनों बड़े क़स्बे हैं और दो कम मशहूर। इस का रकबा एक मुरब्बा मील है इस में ख़ूबसूरत यादगारें हैं जो इस्लाम के आग़ाज़ से पाई जाती हैं। मसलन हमीद इब्ने खत्ताब का घर, अली इब्ने मूसा और रशद का मक़बरा इस के क़ुर्ब व जवार हैं।”

इस्तख़री (951 ई॰) ने इस से दस साल बाद तहरीर किया कि तूस एक मातहत रियासत थी जिसमें चार शहर या बस्तीयां थीं। उसने ये भी बयान किया :-

> “तूस नीशापूर के मातहत रियासत था और इस में ये चार शहर थे। ज़रकान, तबरन, बज़ग़ोर, नोकन इस आख़िरी शहर में अली इब्ने मूसा अल-रज़ा (रज़ीयल्लाहु अन्हो) का मक़बरा था और हारून रशीद का मक़बरा। अल-रज़ा का मक़बरा सन् बज़ नामे गांव से तक़रीबन पौने फ़र्संग के फ़ासिला पर था।”

तूस की मुख़्तसर बेहतर तारीख़ और इस की मौजूदा हालत का बयान प्रोफ़ैसर ए॰ वी॰ विलियम जैक्सन (A.V. William Jackson) साहब ने लिखा है। किताब बनाम "क़ुस्तुनतुनिया से उमर ख़य्याम के घर तक" वो लिखते हैं कि :-

> "तूस का नाम वैसा ही क़दीम है कि इस बहादुर तूस का नाम ओस्ता में आया है कि उसने कौर से जंग की थी। सिकंदर आज़म लिस्बोस आख़िरी दारा के क़ातिल के तआक़ुब में इस शहर में गुज़रा।"

ज़रश्ती अह्दे हुकूमत में तूस का शहर नीशापूर की तरह नस्तुरीं मसीह बिशप का दार-उल-करार था जब अरबों ने फ़ारस को फ़त्ह किया तो तूस ने हमला आवरों के सामने सर-ए-तस्लीम ख़म किया और इस्लाम का बड़ा मर्कज़ बन गया। इस की शौहरत ख़ासकर इसलिए भी है कि ये फ़िर्दोसी शायर का शहर था जो 935 ई॰ के क़रीब पैदा हुआ और 1025 ई॰ में मर गया।

प्रोफ़ैसर जैक्सन साहब ने इस शहर की मौजूदा उजड़ी हालत का ये बयान किया है :-

> "इस मुर्दा शहर की शिकस्तह दिवारें एक वक़्त पे बहुत वसीअ और बुलंद फ़सीलें थीं। बहुत कुछ उन्हीं की मानिंद जो बिस्ताम और रए (رے) में पाई जाती हैं लेकिन इमत्तीदाद-ए-ज़माने की वजह से वो बहुत कुछ फैल गई हैं। उन बुर्जों के आसार अब तक पाए जाते हैं और इनसे शहर के नक़्शे का पता लगता है कि वो एक बेक़ाइदा मुरब्बा सूरत का होगा। जिसके अतराफ़ उमूमन क़ुतुब नुमा के मुताबिक़ होंगी।"

जो नज़ारा हमने देखा वो एक ऐसा अजीब था जिससे इन्सान के हाथ के तबाहकुन नतीजों और फ़ित्रत की सरसब्ज़ करने वाली अबदी ताक़त का तमाशा नज़र आता था। गोज़ झंडों और मुग़ल लश्करों के हमलों के साथ ज़लज़लों ने मिलकर तूस के आलीशान शहर को तबाह व बर्बाद कर दिया। लेकिन इस की ख़ाक में फूलों और अनाज के ज़िंदगी भरे बीज पाए जाते हैं, जो मौत के दर्मियान ज़िंदगी अज सर-ए-नौ पैदा करते

हैं। चारों तरफ़ जो और एक ख़ास क़िस्म के पौदे के सरसब्ज़ खेत पाए जाते हैं और साथ ही वो बन्जर कतए हैं जो गुज़श्ता ज़माने की तबाही का क़िस्सा सुना रहे हैं। प्रोफ़ैसर मौसूफ़ ने ये भी लिखा :-

> "ये ज़ाहिर है कि तूस के जिन खन्डरात को हम देख रहे हैं वो मए रोज़ बार और रज़ान फाटकों के तबर इन के क़िले का हिस्सा थे। फ़िर्दोसी के अय्याम में शहर का ये हिस्सा बहुत मशहूर था। उस वक़्त शहर का रकबा बहुत वसीअ था और उस के कई चौक बहुत ग़नजान आबाद थे। दसवीं सदी के मशरिक़ी जुग़राफ़िया नवीसों ने या उस ज़माने के मोअर्रिखों ने इस का बयान किया है जो इस शायर की ज़िंदगी का बेहतरीन ज़माना था।"

तबरान ही में अल-ग़ज़ाली मदफ़ून हुआ और ग़ालिबन अपनी ज़िंदगी के आख़िरी अय्याम उस ने वहां ही गुज़ारे होंगे।

तूस में मज़्हबी बह्स मुबाहिसों की गर्म-बाज़ारी थी। मसीहीयों की आबादी भी वहां कस्रत से थी। शीया लोगों का ज़ोर भी वहां इतना ही था जितना कि हनफ़ियों का था। इनका बहायत मशहूर मुसन्निफ़ और आलिम अबू जाफ़र मुहम्मद नामी तूस ही में पैदा हुआ और इब्ने अबी हातिम जो हदीस के इल्म जरह का क़दीम आलिम था उसने 939 ई॰ में तूस ही में वफ़ात पाई। लेकिन बावजूद यहां के उलमा के तूस को बहुत आला शौहरत हासिल ना हुई जैसा कि इब्ने जबरीया की तहरीर से ज़ाहिर है। निज़ाम-उल-मुल्क के एक दुश्मन ने उस से दरख़्वास्त की कि इस हाकिम की हजव (नज़्म) में किसी की बुराई करना लिखे। इस पर उसने जवाब दिया कि जिस शख़्स की मेहरबानी से ये सारी नेअमतें मुझे हासिल हुईं जो मेरे घर में पाई जाती हैं। उस की हजव मैं कैसे लिखूँ? लेकिन उस को ताकीद की गई तो उसने जो शेअर लिखा उस का तर्जुमा ये है

"क्या अजब कि निज़ाम-उल-मुल्क हुक्मरानी करे
और तक़्दीर उस की हिमायत पर हो
इक़बाल रहट की मिस्ल है
जिससे पाई कुवें की तह से ऊपर आता

लेकिन बैल ही इस को चलाते हैं।"

जब वज़ीर को ख़बर लगी कि उस पर ये हमला हुआ तो उस ने सिर्फ इतना कहा कि इस में सिर्फ उस के वतन की तरफ़ इशारा था क्योंकि मेरा वतन तूस वाक़ेअ खुरासान है और वहां की ज़रब-उल-मसल है कि तूस के सब लोग बैल हैं। (आजकल कहेंगे गधे हैं)। चेनेरी (Chenery) साहब लिखते हैं कि :-

> "अहले खुरासान अपने बुख्ल (लालच, कंजूसी, तंगदिल) के बाइस बदनाम थे और ये ताज्जुब नहीं कि इस सदर मुक़ाम के बाशिंदे बुख्ल में दुनिया के सब बाशिंदों पर सबक़त ले गए हों, अगर मेरी याददाश्त में ग़लती ना हो तो शेख़ सादी ने गुलिस्तान में मरो के एक सौदागर का ज़िक्र किया है जिसने अपने बेटे को पनीर खाने की इजाज़त ना दी बल्कि उसे कहा कि जिस बोतल में वो रखा था उस पर अपनी रोटी रगड़ ले।"

ज़माना-ए-हाल के अहालीयाँ खुरासान की अहमकी साबित करने के लिए मेजर पी॰ ए॰ साईकस ने एक क़िस्सा बयान किया कि :-

> "तीन फ़ारसी अश्ख़ास एक जगह इकट्ठे थे उनमें से हर एक अपने अपने सूबे की तारीफ़ करने लगा। किरमानी ने कहा कि "मेरे सूबे किरमान में सात रंगों का फल पैदा होता है।" शीराज़ी ने कहा कि "रुकना बाद के पानी ऐन चट्टान में से निकलते हैं।" लेकिन बेचारा खुरासानी यही कह सकता था कि "खुरासान से मेरे जैसे अहमक़ ही निकलते हैं।"

तो भी बक़ौल हजूरी :-

> "खुरासान की सर-ज़मीन वो ख़त था जहां ख़ुदा की इनायत का साया पड़ता था।"

इस में उसने सूफ़ियों की तालीम की तरफ़ इशारा किया। उसने तो मशहूर सूफ़ियों का ज़िक्र किया है जो खुरासान के इलाक़े से थे और वो अल-ग़ज़ाली के ज़माने से पेश्तर

वहां तालीम दिया करते थे। ये सब अपनी बुलंद ख़याल, अपनी तक़रीर की फ़साहत और अपनी अक़्ल की जिद्दत के बाइस मशहूर थे। उसने ये भी बयान किया कि "खुरासान के सारे शेखों का बयान लिखना दुशवार होगा। सिर्फ इसी एक इलाक़े में मुझे तीन सौ ऐसे शख़्स मिले जो इल्म-ए-तसव्वुफ़ में ऐसे माहिर और कामिल थे कि उनमें से एक वाहिद शख़्स सारी दुनिया के लिए काफ़ी होता। इस की वजह ये थी कि मुहब्बत का आफ़्ताब और सूफ़ी तरीक़त का इक़बाल खुरासान में हमेशा सिम्त-अल-रास पर था।"

ऐसे बयानात से ये वाज़ेह है कि अल-ग़ज़ाली की क़ाबिलीयत कुछ तो उन मुक़ामी हालात से हासिल हुई और कुछ उस की अपनी ज़हानत का नतीजा था। वो तसव्वुफ़ का बानी ना था बल्कि जो कुछ उस के मुक़ाबिल उस्तादों ने तालीम दी थी उस को उसने इस्तिमाल किया। अल-ग़ज़ाली ने तसव्वुफ़ पर जो किताबें लिखी हैं उनके उन्वान वही हैं जो "कश्फ़-उल-महज़ूब" के हैं।

बक़ौल मुर्तज़ा (जो अल-सबक़ी के बाद हुआ) अल-ग़ज़ाली का पूरा नाम अबू हमीद मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-तूस अल-ग़ज़ाली था। वो 450 ई॰ (1058 ई॰) में बमुक़ाम तूस पैदा हुआ। उस के नाम के बारे में ये बयान किया जाता है कि उस से पेश्तर बाअज़ दूसरों के ख़ानदानी नाम भी ऐसे तिहरे थे। इब्ने कज़ीबा का बयान है कि :-

> "अबूल-बख़्तारी का नाम वहब बिन वहब बिन वहब था। यानी एक ही नाम तीन दफ़ाअ दुहराया गया। उसी की मिस्ल सलातीन फ़ारसी के नामों में बहिराम बिन बहिराम बिन बहिराम था। अबू-तालिब की औलाद में से एक शख़्स का नाम हसन बिन हसन बिन हसन था और ग़स्सान ख़ानदान में से एक शख़्स अल-हारिस ख़ुर्द बिन अल-हारिस बिन अल-हारिस कलां था।"

उस के नाम के बारे में कि आया सिर्फ़ ज़ तशदीद के साथ पढ़ा जाये या बिला-तशदीद तवील बहस हुई। प्रोफ़ैसर मैक्डानल्ड साहब की राय में ज़ तशदीद के साथ पढ़नी चाहीए और अपने एक ख़ास रिसाले में इस के दलाईल दिए हैं। इब्ने ख़लीकान ने अपनी नआत सवानिह उम्री (किसी शख़्स की ज़िंदगी के हालात, तज़्किरा) में उस के हिज्जे तश्दीद के साथ किए हैं (1282 ई॰) लेकिन बक़ौल अलसा मअनी इस लफ़्ज़ का माख़ज़ ग़ज़ल है। तूस के नज़्दीक एक गांव था और ये तख़ल्लुस नहीं जैसा कि अक्सर ख़ानदानी

नामों में पाया जाता है। अबू साअद अब्दुल-करीम अलसा मअनी ग़ज़ाली की वफ़ात के दो साल के बाद पैदा हुआ और आठ जिल्दों में इन लक़बों और तख़ल्लुसों पर एक किताब लिखी। इसलिए वो नामों और शिजरा नसबों में माहिर था। हम उस बुज़ुर्ग इमाम के नामों के हिज्जे के बारह में उस की सनद क़ुबूल कर सकते हैं। ये शख़्स उस का हम-वतन भी था। क़ाहिरा के अज़हर दार-उल-उलूम के सारे शेखों ने इसी सनद को मान कर अल-ग़ज़ाली हिज्जे किए बिला तशदीद के।

बाज़ों का बयान है इस ख़ानदान में दो आलिम पेश्तर गुज़र चुके थे। एक अल-ग़ज़ाली कलां, तूस के क़ब्रिस्तान में जिसकी क़ब्र पर दुआ का जवाब मिला। ये अल-ग़ज़ाली के वालिद का चचा था। दूसरा उस का बेटा था। ख़ुद ग़ज़ाली ही की सनद पर एक क़िस्सा बयान हुआ है कि उस के बाप की वफ़ात के वक़्त उसने अपने दो बेटों को यानी मुहम्मद और अहमद को तालीम के लिए एक मोअतबर सूफ़ी दोस्त के सपुर्द किया। उस की अपनी ख़्वाहिश अपनी तालीम के बारे में पूरी ना हुई थी। इसलिए उसने मुस्तक़िल इरादा किया कि उस के बेटों को तालीम का बेहतर मौक़ा मिले। इसलिए जो कुछ नक़द व माल था। इस मक़्सद के लिए अपने उस दोस्त के सपुर्द किया। वो दोस्त बड़ा वफ़ादार साबित हुआ और जब तक रुपया बाक़ी रहा इन लड़कों की तालीम व तर्बीयत करता रहा। बादअज़ां उसने उन्हें ये सलाह दी कि एक मदरिसे में जाएं जहां उनको हस्ब-ए-ज़रूरत ख़ुराक और मकान मिलेगा। अपनी ज़िंदगी के आख़िर में अल-ग़ज़ाली ने अपनी ज़िंदगी के इस हिस्से के तजुर्बे का बयान किया और ये कहा "हम ख़ुदा के सिवा किसी और शैय के तालिब बने लेकिन ख़ुदा की मर्ज़ी ये ना थी कि हम उस के सिवा किसी दूसरी शैय के तालिब बनें।" इस मिसाल से ज़ाहिर है कि उस के मुतालआ और सारी जद्दो जहद दौलत का तालिब था।

तूस में उस की ख़ानदानी ज़िंदगी और फिर माबाअ्द उस के अपने अयाल ज़ातफ़ाल की ज़िंदगी का हाल बहुत कम मालूम है। इस में कुछ शक नहीं कि उस को ये नाम अबू हमीद बहुत देर बाद दिया गया। शायद उस में ये ईमा हो कि इस नाम का उस का कोई बेटा था। जिसने अय्याम तुफ़ुलिय्यत (बचपन) में वफ़ात पाई। बीस साल उम्र से पहले ही उसने शादी की और उस की वफ़ात के बाद उस की कम अज़ कम तीन बेटियां बाक़ी थीं, मगर उस के छोटे भाई के बारे में जिसने उस से पंद्रह साल बाद वफ़ात पाई। (1126 ई॰) और क़ज़वीन में मदफ़ून हुआ हमें ये मालूम है कि निज़ामीया स्कूल में

अल-ग़ज़ाली की जगह वो मुअल्लिम हुआ। उसी की तरह वो भी सूफ़ी था और अपने ख़यालात को बड़ी फ़साहत से बज़रीये तक़रीर व तहरीर बयान करता था। कहते हैं कि वो बहुत शकील व वजीहा शख़्स था और शिफ़ा देने की करामत उसे हासिल थी। बरमला वाअज़ कहने का वो ऐसा मुश्ताक़ था कि उसने अपने शरई और क़ानूनी मुतालआ को भी नज़र-अंदाज कर दिया। उसने अपने भाई की मशहूर तस्नीफ़ का ख़ुलासा लिखा और तसव्वुफ़ पर एक मशहूर रिसाला बनाम "मिन्हाज-उल-अलबाब" (दिलों के लिए राह) तस्नीफ़ किया। इस किताब में उसने इफ़्लास (ग़रीबी) के फ़वाइद का बयान किया और इस अम्र की ताईद की कि दरवेश एक ख़ास क़िस्म का लिबास इख़्तियार करें। एक और किताब उसने इल्म-ए-मौसीक़ी की हिमायत में लिखी जिसका नाम "बवारिक़ अमल उल-मोअल्लम" (بوارق اہل المعلم) रखा। लेकिन पाबंद शराअ मुसलमान इस किताब को छिछोरी समझते हैं। गो सूफ़ी लोग हालत वज्द के तारी करने के लिए मौसीक़ी को इस्तिमाल करते हैं।

अल-ग़ज़ाली की वालिदा की निस्बत इस से ज़्यादा हमें कुछ मालूम नहीं कि वो अपने शौहर के बाद ज़िंदा रही और बग़दाद में अपने बेटों की शौहरत और इज़्ज़त देखना उसे नसीब हुआ। लेकिन ये मालूम नहीं कि वो उनके हमराह गई थी या पीछे उनके पास गई। एक दिलचस्प क़िस्सा बयान हुआ है कि जब अबू हमीद बग़दाद में अपने उरूज की हालत में था तो उस का भाई अहमद उस की मुनासिब इज़्ज़त ना किया करता था बल्कि ऐसा सुलूक करता जिससे लोगों की नज़र में उस की ख़िफ़्फ़त हो। वो पूरा क़िस्सा लिखना ख़ाली अज़-लुत्फ़ ना होगा।

"उस का एक भाई अहमद नामी था जिसका दूसरा नाम जमाल-उद्दीन या बक़ौल बाअज़ अश्ख़ास जैन-उद्दीन था। अगरचे उस का भाई आला दर्जे पर मुम्ताज़ था लेकिन वो उस के पीछे नमाज़ ना पढ़ता था यानी उस को इमाम तस्लीम ना करता था। हालाँकि अवामुन्नास और उमरा व वुज़रा में से हज़ार हासिफ़ दरस्फ़ु उस के पीछे नमाज़ पढ़ा करते थे। इसलिए अल-ग़ज़ाली ने अपनी माँ से अपने भाई के सुलूक की शिकायत की और कहा कि उस के ऐसे सुलूक से अवाम के दिल में उस की तरफ़ से शुब्हा पड़ जाएगा क्योंकि उस का भाई नेक-चलनी और दीनदारी की वजह से शौहरत रखता था। इसलिए उसने अपनी वालिदा से दरख़्वास्त की कि अहमद को हुक्म दे ताकि वो उस से वैसा ही सुलूक करे जैसा दूसरे लोग उस से करते थे। इमाम ग़ज़ाली ने बार-बार शिकायत की और

ताकीद से वालिद को कहा, उस के वालिद ने बार-बार अहमद को समझाया कि ये सलाह मान ले। आख़िर अहमद ने इस शर्त पर इस सलाह को मान लिया कि वो सफ़ से अलैहदा खड़ा हुआ करेगा। इमाम ने ये शर्त मंज़ूर कर ली और एक रोज़ जब नमाज़ का वक़्त पहुंचा। इमाम ने नमाज़ शुरू की और जमाअत भी उस के पीछे पढ़ने लगी। जमाल-उद्दीन कुछ फ़ासिले से उस के पीछे नमाज़ पढ़ने लगा और जब लोग नमाज़ पढ़ रहे थे तो जमाल-उद्दीन ने यकलख्त दख़ल दिया। इसलिए ये सुलूक पहले से बदतर था और जब उस से इस की वजह दर्याफ़्त की तो उसने जवाब दिया कि मेरे लिए ये नामुम्किन है कि ऐसे शख़्स को नमूना पकड़ूं जिसका दिल ख़ून से मामूर था। इस से उस की मुराद ये थी कि जो शख़्स दुनियादार आलिमों के साथ शरीक हो उस का दिल कैसे दुरुस्त होगा।"

अल-ग़ज़ाली ने बहुत अवाइल उम्र (इब्तिदाई उम्र, छोटी उम्र) में तहसील इल्म शुरू की होगी और तूस में उसे तालीम में ऐसी कामयाबी हुई कि बीस साल की उम्र से पेश्तर ही वो जुरजान के बड़े तालीमी मर्कज़ में तालीम पाने गया। ये जगह तूस से एक सौ मील से ज़्यादा फ़ासिले पर थी और उस वक़्त के लिहाज़ से ये सफ़र बहुत दूर दराज़ का समझा जाता था।

अल-ग़ज़ाली ने जो अपनी ज़िंदगी की सरगुज़श्त लिखी इस से पता लगता है कि उसने इस अम्र को महसूस किया कि बच्चा कैसे हिक्मत और क़द में नशवो नुमा पाता है चुनान्चे वो लिखते हैं कि "पहली हिस जो इन्सान पर मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) होती है वो मस की हिस है जिसके ज़रीये से वो एक ख़ास क़िस्म की सिफ़ात को पहचानते लगता है मसलन सर्दी, गर्मी, तरी, ख़ुश्की वग़ैरह। मस की हिस रंगों और शक्लों को महसूस नहीं कर सकती। वो तो उस के नज़्दीक कुल अदम का हुक्म रखती हैं। इस के बाद बसारत की हिस हासिल होती है, जिसके ज़रीये इन्सान रंगों और शक्लों को पहचानने लगता है। यानी उन अश्या को जो आलम एहसास में सबसे आला दर्जा रखती हैं। बाद-अज़ां हिस्स सामेआ (سامعہ) हासिल होती है और बाद-अज़ां हिस शामा (شامہ) और हिस (لامسہ) लामसा। जब इन्सान आलम एहसास से आगे क़दम रखता है यानी सात साल की उम्र को पहुंचता है तो उसे क़ुव्वत तमीज़ हासिल होती है। उस वक़्त वो ज़िंदगी के एक नए तबक़े में दाख़िल होता है और इस क़ाबिलीयत की बरकत से

हवास से आला तासीरात का तजुर्बा करने लग जाता है जो आलम एहसास में उसे हासिल ना थीं।"

अल-ग़ज़ाली अय्याम तुफ़ुलिय्यत (बचपन) ही से अला-उल-सबाह (बहुत सवेरे, तड़के) ही उठने का आदी मालूम होता है। उसने जो किताब बनाम "दीन व अख़्लाक़ में मुबतदी का रहनुमा" (अल-बदायत) लिखी, उस में ये ज़िक्र किया कि "जब तुम ख़्वाब से बेदार हो तो पौ फटने से पहले उठने की कोशिश करो और सबसे पहले जो ख़याल तुम्हारे दिल में और जो अल्फ़ाज़ तुम्हारी ज़बान पर हों वो ख़ुदा ए तआला की याद हो और ये कहो "ख़ुदा का शुक्र हो जिसने ख्व़ाब की मौत के बाद हमें ज़िंदगी अता की हम उसी की तरफ़ रुजू करते हैं। उसने हमें और सारी फ़ित्रत को जगाया। अज़मत और क़ुद्रत ख़ुदा ही की है। शौकत और हुकूमत रब-उल-आलमीन की है। उसने हमें दीन इस्लाम के लिए और उस की वहदत की शहादत के लिए बेदार किया और अपने रसूल मुहम्मद के दीन और हमारे बाप इब्राहिम की उम्मत होने के लिए जो हनीफ़ और मुसलमान था और मुश्रिक ना था। ऐ ख़ुदा मैं तेरी मिन्नत करता हूँ कि तू मुझे आज सारी बरकतें अता फ़र्मा और हर एक बुराई से मुझे छुड़ा। तेरी ही इनायत से हम-ख़्वाब से बेदार होते हैं और तेरी ही मदद से शाम तक पहुंचते हैं। तुझी में हम जीते और मरते हैं और तेरी तरफ़ ही हम रुजू करते हैं।"

इसी छोटे रिसाले के एक दूसरे मुक़ाम में अला-उल-सबाह (बहुत सवेरे, तड़के) उठने की उसने यूं तल्क़ीन की "ये जान लो कि दिन और रात में चौबीस घंटे होते हैं इसलिए रात और दिन में तुम्हारी नींद आठ घंटे से ज़्यादा ना हो कि जब तुम साठ साल की उम्र तक पहुँचो तो ये ख़याल तुम्हारे लिए काफ़ी होगा कि तुमने अपनी उम्र के बीस साल सरासर नींद में ज़ाए किए।"

शायद सात साल की उम्र से पेश्तर उसने पढ़ना शुरू किया क्योंकि हमें ये मालूम है कि तूस में और बादअज़ां जुरजान में ना सिर्फ उसने दीनी साईंस को हासिल किया बल्कि फ़ारसी और अरबी में पूरी महारत हासिल की। उस के दीनी मुतालआ का हम पीछे ज़िक्र करेंगे। उसने ख़ुद हमें बताया कि जो उलूम उस वक़्त सिखाए जाते थे उनमें इल्म-ए-रियाज़ी, मन्तिक़, इल्म तबई, इल्म माबाद-अल-तबीअत सियासत और अख़्लाक़ दाख़िल थे। अगरचे उसने अपने "इक़रारात" में अपनी इब्तिदाई तालिब इल्मी का ज़िक्र

नहीं किया लेकिन इल्म-ए-रियाज़ी के बारे में जो बयान उसने किया इस से ज़ाहिर होता है कि अवाइल उम्र ही में जो बयान उसने किया इस से ज़ाहिर होता है कि अवाइल उम्र ही में उसे किस क़िस्म के शक शकूक पैदा हुए। उसने लिखा है कि "इल्म-ए-रियाज़ी में इल्म हिसाब, इल्म अक़्लीदस और इल्म कैफ़ीयत आलिम दाख़िल थे।" दीनी उलूम से उस का कुछ ताल्लुक़ ना था और दीन की उस से ना ताईद होती है ना तर्दीद। ये ऐसे इस्बात पर मबनी है जिनको आदमी अगर एक दफ़ाअ जान और समझ ले तो उनकी तर्दीद नहीं हो सकती लेकिन इल्म-ए-रियाज़ी से दो बुरे नतीजे निकलते हैं। पहला नतीजा ये है कि जो शख़्स इस इल्म का मुतालआ करता है वो उस के सबूतों की ख़ूबी और वज़ाहत का मद्दाह हो जाता है। फ़ल्सफ़ा का एतबार उस के दिल में बढ़ता जाता है और वो समझने लगता है कि उस के सारे सीगों में ऐसे ही पुख़्ता और वाज़ेह सबूत होंगे जैसे कि इल्म-ए-रियाज़ी के थे लेकिन जब वो लोगों को ये कहते सुनता है कि रियाज़ी दान बे एतिक़ाद और बेदीन होते हैं और शरीअत इलाही की तरफ़ से बिल्कुल ग़ाफ़िल और ये आम मशहूर है। उनके सुने सुनाए वो भी ये इल्ज़ामात लगाने लगता है लेकिन साथ ही अपने दिल में ये कहता है कि अगर दीन में कोई सदाक़त होती तो उन उलमा से छिपी ना रहती जिन्हों ने इल्म-ए-रियाज़ी की तहसील में अपनी तेज़ फ़हमी और अक़्लमंदी का सबूत दिया।

दोम, जब वो आगाह होता है कि उन आलिमों ने दीन व मज़्हब को रद्द कर दिया तो वो ये नतीजा निकालता है कि मज़्हब को रद्द करना अम्र माक़ूल है। "मैं बहुत ऐसे शख़्सों से मिला हूँ जिन्हों ने मज़्हब को सिर्फ इसी वजह से रद्द कर दिया था जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ।" (सफ़ा 28)

ना सिर्फ इल्म-ए-रियाज़ी बल्कि इल्म नुजूम और दीगर उलूम भी मुकाशफ़ा के अक़ाइद के ख़िलाफ़ नज़र आते थे। अल-ग़ज़ाली ने उसे बहुत शिद्दत से महसूस किया होगा उसने ये तहरीर किया "जाहिल मुसलमान ख़याल करते हैं कि दीन की हिमायत करने का सबसे अफ़्ज़ल तरीक़ा ये है कि सारे सही उलूम को रद्द करें और उनके मुअल्लिमों पर गुमराही का इल्ज़ाम लगाऐं वो सूरज और चांद ग्रहण के मसाइल को रद्द कर देता है और दीन के नाम से उन पर कुफ़्र का फ़त्वा लगाता है ये इल्ज़ामात दूर तक जाते हैं और फ़लसूफ़ों के कानों तक जा पहुंचते हैं। वो ये जानते हैं कि उनका इन्हिसार अटल इस्बात पर है। इसलिए इन उलूम पर तो उनको कुछ शक पैदा नहीं होता, बल्कि

बरअक्स इस के वो ये समझने लगते हैं कि इस्लाम की बुनियाद जहालत और इल्मी दलाईल व इस्बात के इन्कार पर है। यूं फ़ल्सफ़ा की मुहब्बत तो उस के दिल में बढ़ जाती है और दीन की तरफ़ से नफ़रत हो जाती है। इसलिए ऐसे क़ियास से दीन को सख़्त नुक़्सान पहुंचता है कि इस्लाम की हिमायत उलूम सहीहा के इन्कार पर मबनी है। दीन में कोई बात ऐसी नहीं जिससे इन उलूम की तर्दीद या ताईद हो और वो उलूम भी दीन पर कोई हमला नहीं करते। नबी के ये अल्फ़ाज़ कि "आफ़्ताब और मेहताब ख़ुदा की क़ुद्रत के दो निशान हैं उनका ग्रहण किसी की पैदाइश या मौत का निशान नहीं जब तू उन निशानों को देखे तो आऊज़ु-बिल्लाह (अल्लाह की पनाह) पढ़ और ख़ुदा का नाम ले। इन अल्फ़ाज़ से किसी तरह इल्म नुजूम के हिसाब की तर्दीद नहीं होती क्योंकि उनका इन्हिसार इन दो अज्राम की गर्दिश, इत्तिफ़ाक़ और जुदाई पर है जो ख़वास क़वानीन के मुताबिक़ अमल में आते हैं।" इस क़रीने में हम ये याद रखें कि उम्र ख़य्याम मुनज्जम शायर ने उन दिनों बहुतों को दीन से गुमराह किया।

अरबी सर्फ़ व नहो की तहसील और क़ुरआन को हिफ़्ज़ करने के बाद इस शौक़ीन तालिबे इल्म ने इल्म जिरह को सीखना शुरू किया। अल-ग़ज़ाली के उस्तादों ने और ख़ुद अल-ग़ज़ाली ने क़ुरआन की सही तिलावत पर बहुत ज़ोर दिया। अल-ग़ज़ाली ने अपनी किताब "अहया" के एक फ़सीह मुक़ाम में इन बातों का ज़िक्र किया। क़ुरआन को पढ़ने से पेश्तर आदमी बदनी तौर पर पाक साफ़ हो और किताब की इज़्ज़त व ताज़ीम बरमला करे एक ख़ास अंदाज़े से पढ़े। उसने साअद और उस्मान के नमूने को पसंद किया कि वो क़ुरआन को हफ़्ते में एक दफ़ाअ ख़त्म किया करते थे। क़ुरआन को तर्तील (क़ुरआन शरीफ़ के हुरूफ़ को मख़ारिज से अदा करके पढ़ना) से पढ़े क्योंकि इस से क़ुरआन के हिफ़्ज़ करने में मदद मिलती है और आहिस्ता-आहिस्ता पढ़े। जल्द जल्द पढ़ने को नापसंद किया बल्कि गर ये वज़ारी से पढ़े यानी अपने गुनाहों पर ग़म खाते हुए। मुनासिब मुक़ामों पर मुनासिब दकफ़ों के साथ पढ़े। दिल में और बुलंद आवाज़ दोनों तरह से पढ़ सकते हैं लेकिन बक़ौल हदीस अल-हान (الحان) से पढ़े "जो शख़्स क़ुरआन को अल-हान (الحان) से नहीं पढ़ता वो हमारे दीन का नहीं। एक दिन जब मुहम्मद साहब ने अबू मूसा को क़ुरआन पढ़ते सुना तो फ़रमाया कि "फ़िल-हक़ीक़त इस क़ारी को ख़ुदा ने हख़बरा दाऊदी अता किया है जब उन्होंने मज़ामीर लिखे।"

ये क़रीन-ए-क़ियास है कि यूसुफ़ निसाज जो उस का पहला उस्ताद था वो सूफ़ी था और बाद-अज़ां इमाम अल-हरमैन मुक़र्रर हुआ मज़्कूर बाला उमूर पर वो ताकीद अकीद किया करता था। अल-ग़र्ज़ जिस कुर्राह में अल-ग़ज़ाली ने तालीम हासिल की वो तसव्वुफ़ का कुर्राह था।

क़ुरआन के मुतालए के बाद उसने अहादीस का मुतालआ शुरू किया। इन अहादीस के मुस्तनद मजमूआ उस वक़्त मुरव्वज थे। इस के बाद अल-ग़ज़ाली के अय्याम में तालिब-ए-इल्म फ़िक़्ह का मुतालआ शुरू किया करते थे। इस मज़्मून पर जो मुस्तनद किताबें पाई जाती हैं, जो अल-ग़ज़ाली के ज़माने से पेश्तर लिखी गईं और जो पीछे ख़ुद अल-ग़ज़ाली ने लिखीं उनसे मालूम होता है कि तूस और जरजान के स्कूलों में उनकी तरफ़ ख़ास तवज्जोह दी जाती थी। पहला सबक़ शरई तहारत के बारे में था। बज़रीये वुज़ू, ग़ुस्ल और मिस्वाक बाअज़ हालतों में शरई नापाकी के लिए सारे बदन का ग़ुस्ल मुक़र्रर था। फिर औरतों के हैज़ व निफ़ास और अय्याम हमल के लिए हिदायात थीं। फिर दूसरे हिस्से में नमाज़, उस के औक़ात व शराइत व मुतालिबात का बयान था और इस हिस्से में उन चार बातों का ज़िक्र भी आया है जिनमें औरतों की नमाज़ मर्दों की नमाज़ से मुतफ़र्रिक़ (अलग) थी। फिर ज़कात, रोज़ा और हज का बयान है। ख़रीद व फ़रोख़्त के क़वानीन हैं। क़र्ज़ के लिए और मीरास व वसियत के लिए हिदायात हैं। ये आख़िरी मज़्मून बहुत मुश्किल और पेचीदा है बाद-अज़ां तालिबे इल्म निकाह व तलाक़ बयान पढ़ता। इस के मुताल्लिक़ इस्लामी फ़िक़्ह की किताबों ने बहुत तफ़्सील के साथ बयान किया है। फिर जराइम तशद्दुद, जिहाद और बक़रईद की क़ुर्बानी की रसूमात का ज़िक्र आता है। इन फ़िक़्ह की किताबों के आख़िरी तीन बाबों में उमूमन क़सम खाने, शहादत देने और ग़ुलामों की आज़ादगी का ज़िक्र आता है।

अय्याम तुफ़ुलिय्यत (बचपन) से लेकर अल-ग़ज़ाली शाफ़ई मज़्हब रखता था जो चार बड़े मज़ाहिब में से एक था। इमाम शाफ़ई ने जिसके मक़बरे की ज़ियारत के लिए अल-ग़ज़ाली क़ाहिरा गया और जहां आज तक लोग ज़ियारत के लिए जाते हैं। 204 ई॰ में वफ़ात पाई। उसने अहादीस की ग़ुलामी और इल्म-ए-मन्तिक़ की आज़ादगी के बैन-बैन इस्लामी शराअ की तफ़्सीर की बक़ौल मैक्डानल्ड साहब :-

> "तारीख़ शराअ में ला कलाम इमाम शाफ़ई सबसे अफ़ज़ल व आला गुज़रा है। शायद अबू हनीफ़ा की तरह ये माक़ूल पसंद और तेज़ तबाअ ना था लेकिन अक़्ल व मिज़ाज व तबीयत में एतिदाल और अस्बाब व नताइज का साफ़ इल्म रखता था। जिसकी वजह से इस का जवाब क़ातेअ व सातेअ साबित होता। इस के बाद रद्द वक़द की कोशिशें हुईं लेकिन वो सब नाकामयाब ठहरीं इस्लामी शराअ की इमारत बिला जुंबिश खाए खड़ी रही।"

इमाम शाफ़ई के मुक़ल्लिदों (पैरवी करने वाला, शागिर्द) का शुमार अब तक़रीबन छः करोड़ है। इनमें से तक़रीबन निस्फ़ तो नेज़र लेंड इंडीज़ में पाए जाते हैं और बाक़ी मिस्र, शाम, हज़र-उल-मौत, जुनूबी हिन्दुस्तान और मलेशिया में। इन सब के दर्मियान अल-ग़ज़ाली शाफ़ई का रुत्बा सबसे बड़ा है।

जिन दिनों में वो इमाम अबू नस्र-अल-इस्माईलिया से तालीम पाया करता था उन दिनों का एक दिलचस्प क़िस्सा बयान हुआ है। इस मशहूर मुअल्लिम की तालीम के उसने बहुत नोट (Notes) लिखे थे लेकिन जो कुछ लिखा था उस के हिफ़्ज़ करने में उस ने ग़फ़लत की। बक़ौल मैक्डानल्ड साहब :-

> "ये उस की आदत मालूम होती है क्योंकि जो इक़तिबासात उसने दिए हैं वो अक्सर बहुत लापरवाई पर दलालत करते हैं और उस के मुख़ालिफ़ों में से एक ने ये बड़ा इल्ज़ाम उस पर लगाया कि उसने हदीस की तक़्ज़ीब की।"

लेकिन जुरजान से तूस को वापिस जाते वक़्त उस को अच्छा सबक़ मिला। डाकूओं ने राह में उस पर हमला किया उस के कपड़े उतार लिए और जिस जुज़ दान में उस के तहरीरी काग़ज़ात थे वो भी ले गए। इस की वो बर्दाश्त ना कर सका। वो उनके पीछे भागा अगरचे उन्होंने उस को मौत का ख़ौफ़ दिलाया लेकिन उसने उनका पीछा ना छोड़ा बल्कि उनसे मिन्नत की कि वो काग़ज़ात उस को वापिस कर दें क्योंकि वो उनके किसी काम के ना थे। अल-ग़ज़ाली को कुछ ज़र्राफ़त में भी दस्तरस और उसे इस ख़याल से हंसी आती थी कि ये चोर शरीअत का मुतालआ करेंगे। डाकूओं के सरदार ने पूछा कि

इन काग़ज़ात में उस का क्या धरा था। अल-ग़ज़ाली ने बड़ी सादगी से जवाब दिया "इस जुज़दान में मेरी वो तहरीरें हैं जिनके सुनने और लिखने की ख़ातिर और इनका इल्म हासिल करने के लिए दूर व दराज़ का सफ़र किया।" इस पर डाकू सरदार ज़ोर से हंसा और कहने लगा "तुमको कैसे मालूम है कि इनमें इल्म मुन्दरज है जब कि हमने तुमसे वो काग़ज़ छीन लिए और इस इल्म से तुमको मुअर्रा (आज़ाद) कर दिया और अब तुम बग़ैर इल्म के हो?" लेकिन वो काग़ज़ात उसने उसको वापिस दे दिए। अल-ग़ज़ाली का बयान है कि "ख़ुदा ने ये आदमी मुझे सबक़ सिखाने को भेजा था।" फिर अल-ग़ज़ाली वापिस तूस को गया और तीन साल वहां रह कर उन सारे नोटों (तहरीरों) को हिफ़्ज़ कर लिया ताकि आइन्दा उनकी चोरी का ख़तरा ना रहे।

थोड़े अर्से के बाद तूस से दूसरी दफ़ाअ तहसील इल्म के लिए नीशापूर गया जहां अल्लामा अस्र तालीम दिया करता था। नीशापूर तूस से ऊंचास (49) मील मग़रिब की तरफ़ वाक़ेअ था और अरबों ने उसे (31 हिज्री) में फ़त्ह किया था। याकूत ने अपनी "लुगात जुग़राफ़िया" में ये बयान किया है कि :-

"जो जो शहर उसने देखे उन सब में वो ख़ूबसूरत था।"

इसी शहर में हमदानी ने अपने चार सौ (400) मुक़ामात लिखे और अपने हरीफ़ पर फ़त्ह पाई।

जिन दूसरे बुज़ुर्गों को ताल्लुक़ इस शहर से था उनमें से एक तो उम्र ख़य्याम शायर था। एक मुफ़स्सिर क़ुरआन अहमद-अल-सअलबी और मीदानी जिसने अरबी अम्साल को जमा करके एक मशहूर जिल्द में रखा।

इस शहर या इलाक़े का क़दीम ना उबरा शहर था। सासानियों के अहदे हुकूमत में इस जगह को इल्म-ए-दीन की वजह से शौहरत हासिल थी। तीन मशहूर मुक़द्दस आतिश-कदों में से एक इस जगह था। मुसलमानों के अय्याम में बहुत अरब यहां रहते थे और खुरासान का सदर मुक़ाम हुआ और ताहिर ख़ानदान के ख़ुद-मुख़्तार सरदारों के दिनों में उसने बहुत उरूज हासिल किया। (820 ई॰ और 873 ई॰) इस्तहरी ने इसे हसीन मज़्बूत शहर बयान किया। वुसअत में ये तीन मील मुरब्बा था। रुई और रेशम यहां से दूसरे शहरों को जाया करती थी। जब सल्तनत को ज़वाल हुआ तो तुर्कमानों के हाथ से

इस शहर को भी बहुत नुक़्सान पहुंचा। ज़माना-ए-हाल में इन्हीं तुर्कमानों की युरुशों से वो सारा इलाक़ा उजड़ है। 1153 ई॰ में ग़ज़ तुर्कमानों ने इसे बिल्कुल बर्बाद कर दिया। लेकिन ये फिर आबाद हुआ क्योंकि बक़ौल याक़ूत ये ऐसे मौक़े पर वाक़ेअ था जहां से तिजारत के सारे क़ाफ़िले मिश्रती ममालिक को जाया करते थे। 1221 ई॰ में मुगलों ने उसे मिस्मार करके ज़मीन से पैवस्त कर दिया लेकिन एक सदी के बाद इब्ने बतुता ने उसे फिर सरसब्ज़ शहर पाया। जहां दार-उल-उलूम थे, बेशुमार तालिबे इल्म और रेशम वहां से हिन्दुस्तान को भेजा जाता था। नीशापूर अपने मेवा-जात और बाग़ात के बाइस भी मशहूर था और इसी वजह से उसे "दमिश्क़ ख़ूरो" कहा करते थे।

जिन दिनों में अल-ग़ज़ाली नीशापूर में था उन दिनों के मशहूर मुअल्लिम का दिलचस्प खाका दिया गया है। इस मुअल्लिम का नाम अबूल-मआली अब्दुल मलक अल-जवीन्सी इमाम-उल-हरमैन था। वो नीशापूर के मुत्तसिल (पास, क़रीब) बराबर मिलने वाला बमुक़ाम बोशती ख़ां पैदा हुआ। 12 फरवरी 1028 ई॰ को, वो अपने ज़माने में शराअ मुहम्मदी का सबसे बड़ा और मशहूर मुअल्लिम था। उस का बाप अबू मुहम्मद अब्दुल्लाह इब्ने यूसुफ़ मोअख़रुल-ज़िक्र क़िस्से में मुअल्लिम था। उसने बीस साल की उम्र में अपने बाप के मरने के बाद उसकी जगह ली। लेकिन ये वो ज़माना था जिसमें फ़ौक़ल-आदत आलिम पैदा हुए, जिनकी क़ुव्वत-ए-हाफ़िज़ा भी फ़ौक़ुल आदत थी। अपनी तालिम की तक्मील और हज की ख़ातिर वो बग़दाद को गया और वहां से मक्का व मदीना को। वहां उसने चार साल तक तालीम दी इसी लिए उस को ये लक़ब "इमाम-उल-हरमैन" मिला। जब वो नीशापूर में वापिस आया तो निज़ाम-उल-मुल्क ने उस के लिए एक स्कूल तामीर किया और अपने मरने तक वहां तालीम देता रहा। आख़िर 20 अगस्त 1085 ई॰ में जब वो अपने वतन को गया तो वहां वफ़ात पाई। वहां वो अलालत तबाअ के बाइस गया था और उसे उम्मीद थी कि वहां की आब व हवा से उसे सेहत हासिल होगी। अपनी तालीम व तदरीस के मन्सबी फ़राइज़ के इलावा वो वाअज़ व नसीहत का काम भी सरअंजाम देता रहा। हर जुमा के दिन वो मज्लिस किया करता था जिसमें वो वाअज़ करता और शरई बह्स मुबाहिसों के वक़्त सालस का फ़र्ज़ अदा करता। इलावा अज़ीं वक़्फ़ जायदाद का इंतिज़ाम भी उस के सपुर्द था ऐसी जायदाद की आमदनी दीनी कारोबार में सर्फ होती थी। तीन साल तक बराबर वो इन फ़राइज़ को अदा करता रहा। उस के मरने पर आम मातम हुआ जिस मिम्बर पर से वो वाअज़ किया करता था वो तोड़ दिया गया और उस के शागिर्दों ने जिनका शुमार चार सौ एक (401) था अपने क़लम दवात तोड़ डाले और

साल भर तक पढ़ना मौक़ूफ़ रखा। ये तहक़ीक़ अम्र है कि उन दिनों में अल-ग़ज़ाली नीशापूर और बग़दाद में तालिबे इल्म था और गुमान ग़ालिब है कि इस इमाम की वफ़ात पर मातम में उसने भी हिस्सा लिया होगा। इस इमाम की आला तस्नीफ़ का नुस्ख़ा बनाम निहायत अल-मतलब अब तक बमुक़ाम क़ाहिरा सुल्तानिया कुतुब ख़ाने में महफ़ूज़ है।

नीशापूर में अल-ग़ज़ाली इस इमाम के मक़्बूल नज़रों में से था और यहां उस के मुतालआ का दायरा भी बहुत वसीअ था यानी इल्म इलाही इल्म ज़बान, इल्म-ए-फ़ल्सफ़ा और मन्तिक़। यहां वो तालिबे इल्म भी था और और मोअल्लिम भी क्योंकि बयान हुआ है कि "वो अपने हम मकतबों को पढ़ कर सुनाया और उनको सिखाया करता था लेकिन थोड़े ही अर्से में वो नातवां और कमज़ोर हो गया।" इस दुहरे काम ने उस की सेहत को नुक़्सान पहुंचाया लेकिन उसने अपना मुतालआ ना छोड़ा। इमाम ने उस के बारे में और दूसरे तलबा के बारे में एक दफ़ाअ ये कहा "अल-ग़ज़ाली बहर ग़रीक़ (बड़े समुंद्र) में डूबा हुआ है, अलकीह फाड़ने वाला शेर बब्बर है और अल-ख़वाफ़ी भस्म करने वाली आग है।"

इन तीनों के बारे में उस का एक क़ौल ये है "जब वो आपस में बहस करते हैं तो सबूत देना अल-ख़वाफ़ी का काम है, मुहारबाना (जंगी हमले) अल-ग़ज़ाली का और वज़ाहत अलकीह का।" उस की ज़िंदगी के इस ज़माने के बारे में ये बात भी किसी गुमनाम शख़्स की ज़बान से कही गई "ये नौजवान अल-ग़ज़ाली ज़ाहिरा तो शेखीबाज़ मालूम होता है लेकिन ज़ेर सतह कुछ ऐसा माद्दा छिपा है कि जब वो इज़्हार का मौक़ा पाया है तो उस में बयान की ख़ूबी इशारे की नज़ाकत और सालिम तवज्जोह और सीरत की पुख़्तगी ज़ाहिर होती है।"

अल-ग़ज़ाली की ज़िंदगी के इस हिस्से का बयान करते वक़्त मैक्डानल्ड साहब ये कहते हैं :-

> "शायद नीशापूर में तालीम पाते वक़्त वो शकूक व शुब्हात उस को पैदा हुए, जिनका ज़िक्र उसने अपनी किताब मनकदह (منقدح) में किया। वो ज़रूर (484 हिज्री) से पेश्तर उस के दिल में पैदा हुए होंगे और उस के नश्वो नुमा के अर्सा-ए-दराज़ में ज़हूर पज़ीर हुए लेकिन ग़ालिबन जब तक वो इमाम-उल-हरमैन दीनदार

सूफ़ी की शागिर्दी में रहा कमो बेश अपने पुराने अक़ीदा पर क़ायम रहा।"

शको शुब्हात के ज़माने में उस की रूह की जद्दो जहद का और कि, किस तरह से उसे उन से मख़लिसी (छुटकारा) हासिल हुई। अगले बाब में बयान होगा।

बाब सोम

तालीम, तब्दीली दिल और तर्क दुनिया

478 हिज्री में इमाम की वफ़ात के बाद अल-ग़ज़ाली की ज़िंदगी में बड़ी तब्दीली वक़ूअ में आई। वो अपनी क़िस्मत आज़माई के लिए नीशापूर से निकला और वज़ीर निज़ाम-उल-मुल्क के कम्पू दरबार में पहुंचा यहां उस को उस के इल्म की वजह से बहुत उरूज हासिल हुआ और इज़्ज़त पर इज़्ज़त मिली।

ये कम्पू दरबार सल्जूक़ सलातीन का सफ़री दार-उल-ख़िलाफ़ा था। इस शाही कम्पू में चूक और दरबार बने हुए थे जहां ये कम्पू जा लगता वहां बियानान में आनन फ़ानन गोया जादू के ज़रो से एक शहर आबाद हो जाता था। गौना गों मकानात और खजूर की झोंपड़ीयाँ होती थीं इस कम्पू का बाक़ायदा हिस्सा दुकानों का बाज़ार था। इनमें से हर एक मिस्ल छप्परों के थी जैसे मीलों में दुकानें लगाई जाती हैं। मूर ने इन अल्फाज़ में इस की तस्वीर खींची है :-

"ये चमकदार खेमे किन के हैं जिनका जमघटा राह में लगा हुआ है जहां कल उजाड़ और सुनसान बियाबान था?"

"ये जंग का शहर गोया जादू के ज़रो से चंद घंटों में आबाद हो गया जिसने सितारे के झलकने के क़लील अर्से में ख़िलमेतार के सुतून दार कमरे बना दिए तरफियह-उल-ऐन में जादू के ज़ोर से ख़ेमों, गुम्बद और दरख़शां असलाह का जहां पैदा कर दिया।"

"शाहाना चांदनी, क़िरमज़ी रंग की कनातें, जिनकी चोटी पर सोने के गुम्बद लगे हुए हैं। घोड़े जिनके झोल ज़र बफ्त (किम-ख़्वाब, एक कपड़ा जो सोने और रेशम के तारों से बुने हैं) के बने हैं और ऊंट जिनके गलों में यमन के घोंघों के हार पड़े हैं और हवा के झोंकों से जिनकी घंटियाँ बजती रहती हैं।"

निज़ाम-उल-मुल्क ने अपनी सवानेह उम्री ख़ुद लिखी ताकि आइन्दा मद बरां मुल्क के काम आए। वो लिखता है कि "खुरासान के सबसे बड़े दानाओं में से इमाम मुवाफ़िक़ नीशापूरी था, जिसकी इज़्ज़त व ताज़ीम आला दर्जे की थी। ख़ुदा उस की रूह को ख़ुशी बख़्शे। उस की उम्र पचासी साल से ज़्यादा थी और ये आलमगीर यक़ीन था कि जिस लड़के ने उस के सामने क़ुरआन पढ़ा या अहादीस का मुतालआ किया। वो ज़रूर इज़्ज़त व ख़ुशहाली हासिल करेगा। इस वजह से मेरे वालिद ने मुझे तूस से नीशापूर मुअल्लिम शराअ अबदुस्समद के हमराह भेजा ताकि मैं इस मशहूर मुअल्लिम के ज़ेर-ए-निगरानी मुतालआ और तहसील इल्म में मसरूफ़ होऊं। मुझे हमेशा वो नज़र अल्ताफ़ और आतिफ़त से देखा करते थे और मैं उनकी शागिर्दी का दम-भर के उनसे अज़हद उन्स व उल्फ़त रखता था। यूं मैंने उनकी ख़िदमत में चार साल गुज़ारे। जब मैं वहां पहले गया तो मेरी उम्र के दो और नए तालिबे इल्म वहां गए थे। हकीम उमर ख़य्याम और दूसरा बद-बख़्त इब्ने सबाह जो फ़िर्क़ा आसासुन (क़ातिल) का बानी हुआ। दोनों जिद्दत तबअ और आला फ़ित्रती क़वा (क़ुव्वत) से मुज़य्यन (आरास्ता) थे और हम तीनों गहरे दोस्त हो गए। इमाम अपना दर्स ख़त्म करते तो ये दोनों मेरे पास चले आते और जो दर्स हम ने सुना था वो एक दूसरे को सुनाते। उमर तो नीशापूर का बाशिंदा था और हसन इब्ने सबाह का वालिद एक शख्श अली नामी था जो रियाज़त कश और आलिम बाअमल था लेकिन अक़ीदे और तालीम में बिद्अती था। एक रोज़ हसन ने मुझे और ख़य्याम को कहा, ये आलमगीर यक़ीन है कि इमाम मुवाफ़िक़ के शागिर्द इज़्ज़त व हश्मत हासिल करते हैं और अगर हम सब ऐसी इज़्ज़त व हश्मत हासिल ना करें।

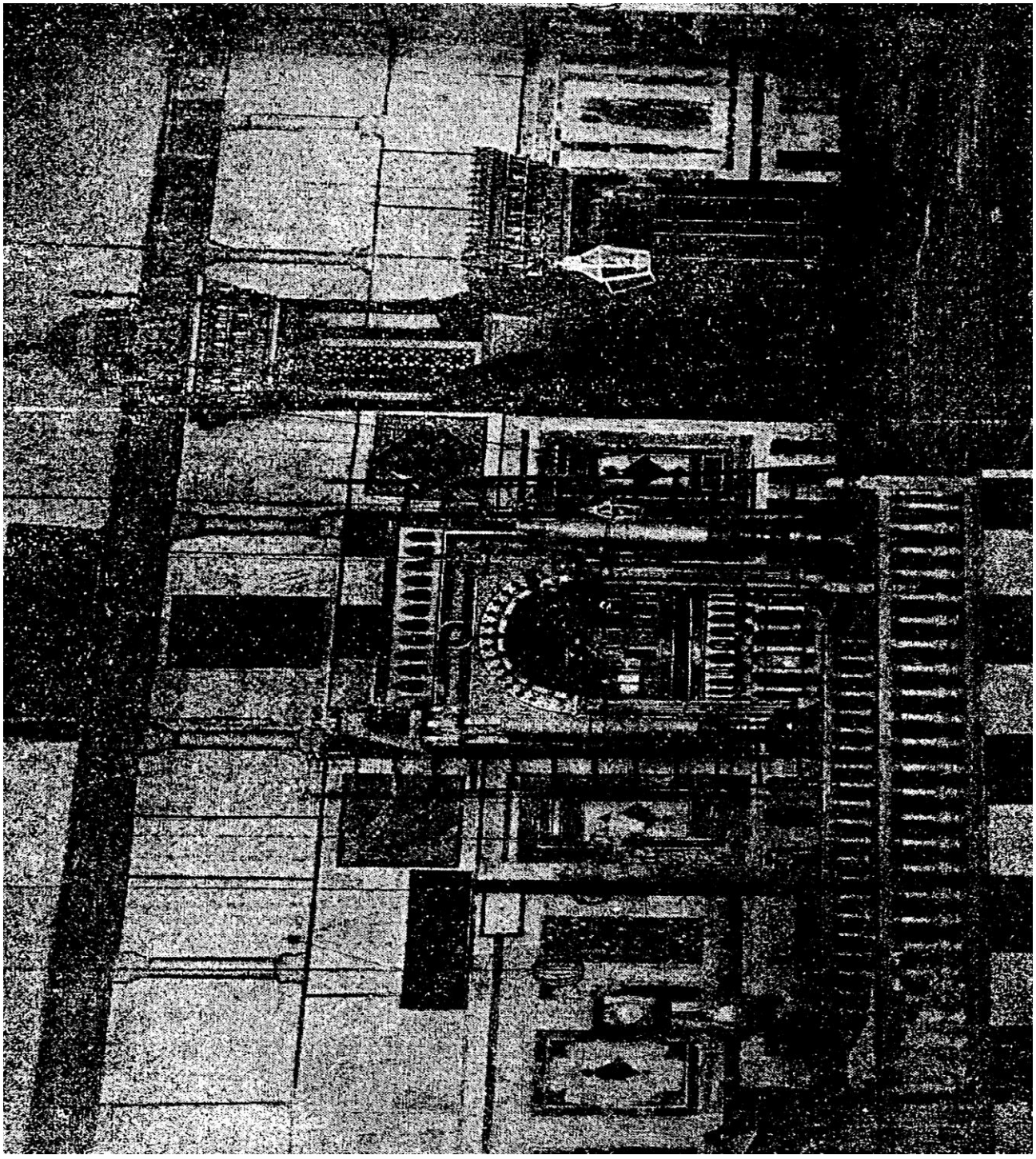

महराब अल-जामे अल-अहवी अल-मशहूर बिल-शाम

محراب الجامع الاھوی المشھور بالشام

तो भी हम में से एक तो ज़रूर साहिबे रुत्बा होगा। हम आपस में क्या अहदो पैमाँ करें? हमने जवाब दिया जैसा आप चाहें उसने कहा "अच्छा हम अहद करें जिसकी क़िस्मत यावरी करे वो दूसरों के साथ मुसावात बरते और कोई बड़ाई छटाई का लिहाज़ ना हो।" हम दोनों ने जवाब दिया कि हमको ये मंज़ूर है और इस शर्त पर हम ने एक दूसरे के साथ अहदो पैमाँ किया। इस के बाद कई साल गुज़र गए और मैं खुरासान से निकल कर ट्रांस ऑक्सी-आना (Trans Osciana) को गया और वहां से गज़नी और काबुल को और जब मैं वापिस आया तो मैं सरकारी ओहदे पर मुम्ताज़ हुआ और तरक़्क़ी करते करते सुल्तान अल्प अर्सलान के अहदे हुकूमत में ओहदा वज़ारत पर मामूर हुआ।"

नीशापूर में तालीम ख़त्म करने के बाद निज़ाम-उल-मुल्क ने अल्प अर्सलान की मुलाज़मत इख़्तियार की जो तुग़रल बैग के बाद तख़्त पर बैठा और बीस साल से ज़्यादा तक सलजोती सल्तनत का बोझ उस के कंधों पर रहा। जब (465 हिज्री) में अल्प अर्सलान ने वफ़ात पाई तो मुल्क शाह उस की जगह तख़्त नशीन हुआ और 10 माह रमज़ान को (485 हिज्री) में मक़्तूल हुआ। उस वक़्त तक निज़ाम-उल-मुल्क सल्तनत में सबसे बड़ा आदमी और हक़ीक़ी हुक्मरान था वो उलूम व फ़नून का दोस्त था और उसने कई शहरों में दार-उल-उलूम क़ायम किए।

(484 हिज्री) में अल-ग़ज़ाली ने दरबार में आला मन्सब हासिल किया और निज़ाम-उल-मुल्क ने उसे बग़दाद के मदरसे में मुअल्लिम मुक़र्रर किया जो सारे मशरिक़ी इस्लाम का सदर मुक़ाम था।

रब्बी बिनियामीन साकिन तोदिला (Tudela) अल-ग़ज़ाली की वफ़ात (1160 ई॰) से चंद साल बाद बग़दाद को गया। उसने इस शहर का दिलचस्प हाल लिखा है वो बयान करता है :-

> "शहर बग़दाद का मुहीत तीन मील है। जिस इलाक़े में ये वाक़ेअ है वहां खजूर के दरख़्त बाग़ और बाग़ीचे बकस्रत पाए जाते हैं कि सारे मिसोपितामिया में उनकी नज़ीर नहीं मिलती। सारे ममालिक के सौदागरों की तिजारत की ख़ातिर वहां आमद व रफ्त रहती है। वहां बहुत दाना फिलासफर भी पाए जाते हैं जो उलूम व फ़नून में माहिर और जादूगर हर तरह की जादूगिरी में

ताक़ (लासानी) मिलते हैं। बग़दाद में ख़लीफ़ा के महल का रकबा तीन मील है इस के साथ जो बाग़ मुल्हिक़ है उस में हर क़िस्म के दरख़्त लगे हैं। जिनमें से बाअज़ तो मुफ़ीद हैं और बाअज़ महज़ ज़ेबाइश के लिए हैं। सब तरह के जंगली जानवर भी वहां हैं और पानी का एक तलाब है जिसमें दरिया-ए-दजला से पानी आता है और जब कभी ख़लीफ़ा अपना जी बहलाना और शिकार करना चाहता है तो हर तरह के चरिंद परिंद और मछलियाँ वहां लाकर जमा कर देते हैं बादशाह अपने उमरा वुज़रा को हमराह लेकर वहां जाता है।"

उसने किनायतन हमको ये भी दिखा दिया कि शाही महल की चार-दीवारी के अंदर क्या कुछ होता है चुनान्चे वो लिखता है कि :-

"बादशाह के भाई बंद और रिश्तेदार उस के लिबास को बोसा देते हैं और ख़लीफ़ा के महल के अहाते में उनके महल भी हैं लेकिन उन सबको लोहे की हथकड़ीयां लगी रहती हैं और महल पर एक दारोगा मुक़र्रर है ताकि वो देखता रहे कि कहीं वो बादशाह के ख़िलाफ़ बग़ावत पर आमादा ना हों। इस पेशबंदी की ये वजह थी कि चंद साल पेश्तर ऐसा वाक़िया वकुह में आया था जब इन भाईयों ने सुल्तान के ख़िलाफ़ अलम बग़ावत बुलंद किया और अपने में से एक को सुल्तान चुन लिया आइन्दा को ऐसे इम्कान के रोकने की ख़ातिर ये हुक्म था कि शाही ख़ानदान के सब रुक्न पाबज़ नजीर (पांव का ज़ंजीर में) रहें ताकि उनको बग़ावत का मौक़ा ना मिले फिर भी उनमें से हर एक अपने अपने महल में रहता है। हर एक की बड़ी इज़्ज़त होती है। हर एक के क़ब्ज़े में बाअज़ दिहात और क़स्बात हैं और उनके मुख़्तार उनका ख़राज जमा किया करते हैं। वो खाते पीते और ऐश करते हैं।"

बादशाह का महल एक आलीशान इमारत है उस में सोने चांदी के सुतून बने हैं और क़ीमती जवाहरात से जड़े हैं। ख़लीफ़ा साल में सिर्फ एक दफ़ाअ अपने महल से

निकलता है यानी रमज़ान की ईद की तक़रीब पर। इस मौक़े पर दूर दूर मुल्कों से लोग जमा होते हैं ताकि बादशाह का दीदार हासिल करें फिर वो शाही दुलदुल (स्याही माइल ख़च्चर) पर सवार हो कर निकलता है। शाही लिबास से मुलब्बस, वो लिबास ज़रबफ्त का है सर पर दस्तार है जिसमें बेश-बहा क़ीमती जवाहरात लगे हैं। इस दस्तार पर एक स्याह हिजाब पड़ा है जो अजज़ व इनकिसारी का निशान है जिस का यह मतलब है कि "ये दुनियावी शानो-शौकत मौत के दिन तारीकी से मुबद्दल हो जाएँगी।" बेशुमार मुहम्मदी उम्रा व शरिफा उस के हम-रकिब (सवारी के साथ) होते हैं, ख़लअत-ए-फ़ाख़िरा (बेशक़ीमत) से मलबूस और अपने-अपने घोड़े पर सवार अरब, मेदियह, फ़ारस और तिब्बत के शाहज़ादे (तिब्बत अरब से तीन माह की मुसाफ़त रखता है) उस की सवारी के साथ चलते हैं। जो लोग सवारी के साथ पापयादा (पैदल) चलते हैं। मर्द व ज़न सब रेशम और अर्ग़वानी लिबास पहने होते हैं। गली कूचों में गाने और ख़ुशी की आवाज़ सुनाई देती है और ख़लीफ़ा के आगे-आगे तवाइफ़ नाचती जाती हैं। अवामुन्नास और अंबोह मर्दुमाँ ये नारा बुलंद करते हैं "हमारा ख़ुदावंद बादशाह मुबारक हो।" इस पर ख़लीफ़ा अपने लिबास को बोसा देता और उसे अपने हाथ में पकड़ कर उनके सलाम का जवाब देता है फिर वो सवारी चलते-चलते मस्जिद के सिहन में दाख़िल होती है और ख़लीफ़ा चोबी मिम्बर पर चढ़ता है और शराअ का बयान करता है। उलमा-ए-मुहम्मदी उठकर उस के लिए दुआ करते हैं और उस की मेहरबानी और दीनदारी की तारीफ़ करते हैं इस के बाद सारी जमाअत आमीन कहती है। फिर वो उनको बरकत देता और एक ऊंट ज़ब्ह करता है जो इसी मक़्सद के लिए वहां हाज़िर रहता है। ये उनकी क़ुर्बानी है जो उम्रा व वुज़रा में तक़्सीम की जाती है। ये लोग उस के टुकड़े अपने दोस्तों के पास तबर्रुक के तौर पर भेज देते हैं क्योंकि वो लोग भी अपने मुक़द्दस बादशाह के हाथ से ज़ब्ह किए हुए जानवर का गोश्त चखने का बड़ा शौक़ रखते हैं और उस को हासिल करके बहुत ख़ुशी मनाते हैं। फिर ख़लीफ़ा मस्जिद से रुख़्सत हो कर दरिया-ए-दजला के किनारे-किनारे अकेला अपने महल को जाता है। मुहम्मदी उमरा कश्तीयों में बैठ कर उस के साथ जाते हैं जब तक कि वो महल में दाख़िल ना हो। जिस राह से वो निकला था फिर उस रास्ते से कभी वापिस नहीं जाता और साल भर दरिया के किनारे की राह पर पहरा लगा रहता है ताकि कोई वहां पांव ना रख सके जहां उस के नक़श-ए-क़दम पड़े। फिर साल भर तक ख़लीफ़ा अपने महल से नहीं निकलता।

"ये ख़ुदातरस और मेहरबान शख़्स है। उसने दरबार की दूसरी तरफ़ दरिया-ए-फ़ुरात के नाले के किनारों पर (ये नाला शहर की एक तरफ़ बहता है) इमारात तामीर करवाई हैं। ये इमारात आलीशान घरों, बाज़ारों और बीमार ग़रीबों के लिए हस्पतालों पर मुश्तमिल हैं। यहां ग़रीब बीमार ईलाज की ख़ातिर जाया करते हैं। इस में तक़रीबन साठ दवाईख़ाने हैं दवाईयाँ बादशाह के मोदीख़ाने से आती हैं मए दीगर मसालों और ज़रूरीयात के और जिस बीमार को मदद की ज़रूरत होती है बादशाह की तरफ़ से उस को ख़ुराक मिलती है जब तक कि उस का ईलाज ख़त्म ना हो। एक और वसीअ इमारत बनाम "दारुलमस्तान" (यानी पागलख़ाना) है। जो पागल इधर-उधर से मिलते उनको यहां लाकर बंद कर देते हैं। ख़ासकर मौसम-ए-सरमा में एक को पाबज़ बख़ैर (पांव में ज़ंजीर पड़ी हुई हो) रखते हैं जब तक कि वो होश व हवास में ना आए फिर उस को घर जाने की इजाज़त मिलती है।"

बग़दाद के दस्तर-ख़्वान पर जो तरह-तरह के खाने चुने जाते थे उनका कुछ हाल हमदानी हम-अस्र शायर ने बयान किया है जिसका ज़िक्र यहां करना ख़ाली-अज़-लुत्फ़ ना होगा।

> "हम एक जमाअत में जा शामिल हुए। उनके आगे फूल पत्तियां सजी हुई थीं। फूलों के गुल-दस्ते लगे थे। शराब के प्याले धरे थे और नेव बर्बत की शीरीं आवाज़ आ रही थी। हम उनकी तरफ़ गए और वो हमारे इस्तिक़बाल को आए। फिर हम उस दस्तर-ख़्वान पर गए जिसके सारे बर्तन उलवान (गोश्त, बहुत से रंग) नेअमत से भरे थे। जिनके बाग़ीचे फूलों से लदे थे। जिनकी तश्तरियां और रकाबियाँ मुख़्तलिफ़ रंगों से आरास्ता सफ़ दर सफ़ चुनी हुई थीं। एक तरफ़ तो सियाह-रंग की क़तार थी।"

और दूसरे मुक़ाम में उसने ये लिखा "क़हत के साल में मुझे दमिश्क़ जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ और एक जमाअत के नज़्दीक गया ताकि उन से कुछ पूछूँ। उनमें एक नौजवान था जिसकी ज़बान में क़दरे लुक्नत (कुद्रत, ताक़त, तवानाई) थी और सामने के दाँतों में फ़ासिला था। उसने पूछा तेरा क्या काम है? मैंने जवाब दिया कि "दो हालतों में आदमी बख़्तावर (ख़ुशनसीब) नहीं होता। एक तो दरवेश जिसे भूक ने सता रखा हो और

एक परदेसी जिसके लिए अपने वतन को जाना मुम्किन हो।" तब उस लड़के ने कहा "तू इन दो मुसीबतों में से कौन सी मुसीबत से पहले बचना चाहता है?" मैंने जवाब दिया भूक से क्योंकि इस की शिद्दत ने मुझे तंग कर रखा है उसने कहा "साफ़ दस्तर-ख़्वान पर सफ़ैद नान के बारे में क्या कहता है। उम्दा सब्ज़ी और उम्दा सिरका उस के साथ है नफ़ीस खजूर की शराब है और उस के साथ राई की चाशनी है गोश्त का कबाब है और नमक साथ धरा है ये चीज़ें वो तेरे आगे रख देगा जो ना वादों के ज़रीये इलतिवा में डालेगा और ना तवक़्क़ुफ़ के ज़रीये तुझे दुख देगा और जो इनके बाद शराब-ए-अंगूर के प्याले तेरे आगे ला धरेगा। क्या ये तुझे पसंद है या एक बड़ी जमाअत, भरे प्याले, बूक़लमूं ख़वाँ, ग़ालीचे बिछे, साफ़-शफ़्फ़ाफ़ रोशनी और माहिर मुत्रिब जिसकी आँख और गर्दन हिरन की तरह हो?"

इस से नाज़रीन अंदाज़ा लगा सकेंगे कि जब अल-ग़ज़ाली निज़ाम-उल-मुल्क या किसी दीगर उमरा के हाँ खाना खाने गया होगा तो कैसी कैसी नेअमतें दस्तर-ख़्वान पर उसे मिली होंगी और बग़दाद में कोई काल ना था।

निज़ामीया कॉलेज जहां अल-ग़ज़ाली ने तालीम पाई और अपनी ज़िंदगी के दो मौक़ों पर दर्स देता रहा। दरिया-ए-दजला के मशरिक़ी किनारे पर कश्तीयों के पुल के मुत्तसिल (मिला हुआ, नज़दीक) और साहिल और बड़ी मंडी के के नज़्दीक वाक़ेअ था। इस कॉलेज की बुनियाद 1095 ई॰ में ख़ास कर शाफ़ई मज़्हब की तालीम के लिए पड़ी। इस कॉलेज के नज़्दीक एक दूसरा कॉलेज बनाम "बहाटिया" और एक हस्तपाल बनाम "मारिस्तां तत्वशी" था।

इब्ने जुबैर सय्याह ने जब वो बग़दाद में (581 हिज्री) में पहुंचा तो पहले जुमे को निज़ामीया कॉलेज में नमाज़ पढ़ी। उसने बयान किया कि इस मशरिक़ी शहर बग़दाद में इकत्तीस (31) आलिशान कॉलेज थे। इब्ने जुबैर ने ये भी बयान किया कि सरकार की तरफ़ से जो अतयात (रक़म) मिले थे और कॉलेज के मुताल्लिक़ मकानात से जो किराया हासिल होता था वो प्रोफ़ैसरों की तनख़्वाहें अदा करने और इमारत की मुरम्मत वग़ैरह के लिए काफ़ी वाफ़ी (बहुत से, पूरा पूरा) थे। इलावा अज़ीं ग़रीब तलबा के गुज़ारे के लिए मज़ीद फ़ंड था। सोक़ या निज़ामीया की मंडी इस मुहल्ले में बहुत आमदो रफ्त की जगह थी और ये मश्राअ (مشرعہ) के मुत्तसिल (मिला हुआ, नज़दीक) वाक़ेअ थी। इस से ज़ाहिर है

कि ये कॉलेज दरिया-ए-दजला के किनारे के नज़्दीक था..... इब्ने बतुत से तक़रीबन बारह साल बाद हम्द-अल्लाह फ़ारसी मुअर्रिख़ ने मुख़्तसरन निज़ामीया कॉलेज का ज़िक्र किया। उस के बयान के मुताबिक़ ये कॉलेज बग़दाद के "मदरसों की माँ" था। इस से साबित है कि चौदहवीं सदी मसीही के वस्त तक कॉलेज मौजूद था। अगरचे ज़माना-ए-हाल में इस के सारे आसार मादूम (फ़ना, ग़ायब) हो चुके हैं। बल्कि गुज़श्ता सदी के वस्त में भी यही हाल था। क्योंकि नाई बोर (Nie Bohr) ने ख़ुलफ़ा के इस सदर मुक़ाम शहर के खन्डरात का बयान किया है जो उस के वहां जाने के वक़्त मौजूद थे लेकिन उनमें निज़ामीया कॉलेज के खन्डरात का कुछ ज़िक्र नहीं जिससे ज़ाहिर होता है कि उस वक़्त इस के कुछ आसार बाक़ी ना रहे थे।

निज़ामीया स्कूल ही में पहले-पहल अल-ग़ज़ाली ने बाइख़्तियार मुअल्लिम के तौर पर तालीम देना शुरू किया। उस के दर्सों के सुनने के लिए एक अंबोह (भीड़, हुजूम) जमा हो जाता था। शरई फ़त्वे भी उसने जारी किए शरई उमूर के बारे में उसने कई रिसाले लिखे। मस्जिद में वाज़ किए और लोगों की इमामत की लेकिन ऐन इस उरूज की हालत में नागहां उस में एक अजीब तब्दीली वाक़ेअ हुई। एक अजीब बीमारी उसे लाहक़ हो गई। उस की ज़बान रुकने लगी। उस की भूक जाती रही और उस के तबीबों ने ये कहा कि इस बीमारी की वजह दिमाग़ी तकान (थकावट) थी। वो अचानक माह ज़ुल-अक़्दह में (488 हिज्री) बग़दाद से निकल गया और अपने भाई को अपनी जगह दर्स के लिए मुक़र्रर किया और अपनी जायदाद को तर्क कर दिया सिर्फ इतनी रख ली जो उस के और उस के बच्चों के गुज़ारे के लिए काफ़ी हो।

उस ज़माने के इल्म-ए-इलाहीयात के उलमा की समझ में ना आया कि उसने ऐसे ओहदे और इज़्ज़त को क्यों यकलख़त तर्क कर दिया। उन्होंने उस के तारिक-ऊद-दुनिया होने को इस्लाम के लिए एक आफ़त समझा। बाज़ों ने समझा कि सरकार का ख़ौफ़ था किसी ने ख़याल किया कि ज़िम्मेदारी के बोझ से डर गया। लेकिन उसने अपनी किताब बनाम "इक़रारात" (اقرارات) में इस की हक़ीक़ी वजह बयान की है। इस किताब में उस के रुहानी तजुर्बात का ज़िक्र है जो अय्याम शबाब से पचास साल की उम्र तक हुए थे। उसने यूं बयान किया :-

> "ऐ मेरे भाई (ख़ुदा राह-ए-रास्त में तेरी हिदायत करे) जान ले मज़ाहिब और अक़ाइद का इख़्तिलाफ़ और तालीमात और फ़िर्क़ों के तफ़रफ़ात जिन्हों ने इन्सानों को फाड़ रखा है वो उस गहरे समुंद्र की तरह हैं जहां जाबजा तबाह शूदा जहाज़ों के टुकड़े सतह पर फैले हुए हैं। उनकी वजह से मादूद-ए-चंद ही सही सलामत साहिल तक पहुंचते हैं। ये तो सच्च है हर फ़िर्क़ा अपनी तालीम ही को रास्त और वसीला नजात मानता है। बक़ौल क़ुरआन "हर फ़रीक़ अपने अक़ीदे में ख़ुश है।" लेकिन जैसे सरवर अम्बिया ने जिनका क़ौल हमेशा सादिक़ है, हमें ये फ़रमाया कि मेरी उम्मत सत्तर (70) से ज़्यादा फ़िर्क़ों में मुनक़सिम (बटना) हो जाएगी लेकिन इनमें से सिर्फ एक फ़िर्क़ा ही नजात पाएगा। ज़रूर है कि नबी की ये पेशीनगोई दूसरी पेशीनगोइयों की तरह पूरी हो।"

सन बलूग़त से इस उम्र तक जो उस वक़्त पचास साल से ज़्यादा होगी मैंने इस बहर अमीक़ (बड़ा गहिरा समुंद्र) में ग़वासी (ग़ोता ख़ोरी) की और हर फ़िर्क़े के अक़ाइद को दर्याफ़्त किया और हर मसअले के राज़ की तहक़ीक़ की ताकि मैं सिदक़ (सच्च) को किज़्ब (झूट) से जुदा करूँ और सही तालीम को बिद्अत से इम्तियाज़ (अलग) करूँ। मुझे कभी कोई ऐसा शख्स नहीं मिला जिसने अपने अक़ीदे की हक़ीक़त दर्याफ़्त किए बग़ैर क़ुरआन के पोशीदा मअनी समझ लिए हों या अपने मसाइल के नताइज की तफ़्तीश किए बग़ैर क़ुरआन के बैरूनी मअनी की हिमायत की हो। ऐसा कोई फिलासफर नहीं गुज़रा जिसके फ़ल्सफ़े की तह तक मैं ना पहुंचा हूँ ना कोई ऐसा आलिम इलाहिय्यात है। जिसकी तालीम के उक़दे (गृह, भेद) मैंने हल ना किए हों।

तसव्वुफ़ का कोई ऐसा राज़ नहीं जिसको मैंने दर्याफ़्त ना किया हो। ख़ुदा के दीनदार मद्दाह ने अपनी रियाज़तों का मक़्सद मुझ पर मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) किया। दहरिये लोगों ने अपनी बे एतिक़ादी की असली वजह मुझसे ना छुपाई। अवाइल उम्र ही से इल्म की प्यास मेरे बातिन में थी। ख़ुदा ने गोया ये मेरी जिबिल्लत कर दी थी कि ख़्वाह मैं चाहूँ या ना चाहूँ वो मुझमें मौजूद थी। जब अय्याम तुफ़ुलिय्यत

(बचपन) से मैंने उबूर किया तो मैं अहादीस की ज़ंजीरें तोड़ चुका था और मौरूसी अक़ाइद से आज़ाद हो गया था।

"मैंने देखा कि कैसे मसीहीयों के बच्चे मसीही होते हैं और मुसलमानों के बच्चे मुसलमान और मुझे ये हदीस भी याद थी जो रसूल-ए-ख़ूदा से मन्सूब है कि "हर बच्चा फ़ित्रत इस्लाम पर पैदा होता है फिर वालदैन उस को यहूदी, मसीह, या ज़रतशती बना लेते हैं।" मुझे ये आरज़ू हुई कि उस फ़ित्रत को दर्याफ़्त करूँ जो हर बच्चे में पाई जाती है और जो अक़ाइद वालदैन और उस्तादों के ज़रीये से इस को हासिल होते हैं और आख़िरकार उनकी तालीमात के ज़रीये ना माक़ूल यक़ीन इस में पैदा होता है।

उस के दिल में शक शकूक भरे होंगे जब उसने ये बयान किया "शायद बक़ौल सरवर अम्बिया, मौत ही वो हालत होगी (वो ऐसी हालत के इम्कान का ज़िक्र कर रहा है जिसका हमारी मौजूद हालत से वही इलाक़ा होगा जो इस मौजूदा हालत का हालत ख़्वाब से होता है) आदमी हालत ख़्वाब में हैं। जब वो मरते हैं तो वो बेदार होते हैं। हमारी मौजूदा ज़िंदगी बलिहाज़ मुस्तक़बिल ज़िंदगी के शायद ख़्वाब ही की मिस्ल है और आदमी मरने के बाद अश्या को बिल्कुल इनसे मुख़्तलिफ़ पाएगा जो इस वक़्त उस को नज़र आ रही हैं।

"ऐसे ख़यालात ने मेरी अक़्ल को परेशान कर दिया और मैंने उनसे बचने की कोशिश की लेकिन कैसे? इस मुश्किल उक़्दा को हल करने की ख़ातिर एक सबूत की ज़रूरत थी। अब ऐसा सबूत इब्तिदाई क़ियासात पर मबनी होगा और मुझे उन इब्तिदाई क़ियासात पर ही शक था। ये कम्बख़्त हालत दो माह तक रही। ये तो सच्च है कि इस अर्से में ज़ाहिरी या बरमला तौर पर तो नहीं लेकिन अख़्लाक़ी और असली मअनी में मैं बिल्कुल बे-एतिक़ाद था।"

ये जाए ताज्जुब नहीं कि इमाम ग़ज़ाली की ये हालत हो। बग़दाद और बस्रा में उसी से पचास साल पहले आज़ाद ख़यालात के मदरसे क़ायम हो चुके थे। हर जुमा को वो जमा हुआ करते। उनमें से बाअज़ तो माक़ूल पसंद थे और बाअज़ बिल्कुल मादिया। ना सिर्फ फिलासफर बल्कि बाअज़ शायर भी इन फ़रीक़ के हादी थे। इनमें से हम अबूल आला अल-मुअर्रा का ज़िक्र करेंगे जो 973 ई॰ में पैदा हुआ। इस नाबीना शायर ने मुहम्मद की तक़्लीद में एक क़ुरआन तस्नीफ़ किया और जब किसी ने इस ये शिकायत

की कि गो किताब बहुत उम्दा लिखी गई लेकिन इस की तासीर दिल पर वैसी नहीं होती जैसी कि अस्ल क़ुरआन की होती है तो उसने ये जवाब दिया कि इस की तिलावत चार सौ साल तक मस्जिदों के मिम्बरों पर से हो लेने दो तब तुम इस से महज़ूज़ (बहरा-मंद, मसरूर, ख़ुश व ख़ुर्रम) होगे। इस की रुबाईयाँ उम्र ख़य्याम की रुबाइयों की तरह दुनिया के तारीक पहलू को ज़ाहिर करती हैं और इस्लामी नुक़्ता ख़याल से कुफ़्र के दर्जे तक पहुँचती हैं। मसलन उसने ये लिखा :-

> "बहुत मज़ाहिब और बहुत फंदे हैं और बहुत रहनुमा। इनमें से कौनसा ख़ुदावंद है? और फ़िल-हक़ीक़त मुहम्मद के हाथ में तल्वार है। शायद सदाक़त भी उस के पास हो? एक मज़्हब का ज़ोर उस वक़्त तक रहता है जब तक कि दूसरा उस को मग़्लूब ना करे। क्योंकि इन्सान महज़ इन्सान के साथ ज़िंदगी बसर करने की जुर्रत नहीं करता बल्कि हमेशा किसी फ़साने को पसंद करता है। मैं कहता हूँ दीन एक दिल-फ़रेब लड़की है लेकिन इस ग़रीब दहलीज़ के अंदर आना पसंद नहीं करती क्योंकि मैं अफ़्सोस उसे बे-नक़ाब नहीं कर सकता और ना उस का हक़ महर अदा कर सकता हूँ।"

ना इस मुसन्निफ़ के दिल में इस्लाम की इज़्ज़त होगी जब उसने ये रक़म किया,

> "वो बहादुर शख़्स कहाँ हैं जो आने वाले जहां के बहादुरों के क़िस्से गाते हैं? "जिनका वो बयान करते हैं और गोया हवा में उनको लटकाते और धागे का लंगर डालते हैं।" दो सौदागरों ने जंग करने पर इत्तिफ़ाक़ किया। इस अम्र को साबित करने के लिए कि किस ने सबसे उम्दा अश्या फ़रोख़्त कीं। और जब मुहम्मद ने नमाज़ के लिए बुला ने के वास्ते बुलंद आवाज़ से अज़ान दी तो हक़ीक़ी मसीहा ने अपनी चोबी सलीब को खटकाया।"

जैसे मसीही तारीख़ में उन्नीसवीं सदी थी वैसी ही इस्लाम की तारीख़ में ग्यारहवीं सदी थी। साईंस और दीन के माबैन सख़्त जंग छिड़ी रही। फ़िर्क़ा मोतज़िला के माक़ूल

पसंद मदरसों ने बहुत तासीर की और मन्क़ूल पसंद और इस्लाम के नाबीना मुक़ल्लिद दीनदारी की निस्बत फ़रीसी-पन के लिए ज़्यादा मशहूर थे।

अलहमदानी की किताब "मुक़ामात" (مقامات) से मालूम होता है कि बरमला दीनी नमाज़ों के बारे में इन बे एतिक़ादों की राय क्या थी। हमदानी ने बयान किया कि :-

> "मैं अपने रफ़ीक़ों से चुपके से अलेहदा (अलग) हो गया जब कि वो जमाअत के साथ मिल कर नमाज़ पढ़ने लगे मैं भी शामिल हुआ। अगरचे मुझे अंदेशा था कि जिस क़ाफ़िले को मैं छोड़कर आया हूँ वो चला ना जाये। लेकिन सहरा की मुश्किल पर फ़त्ह पाने के लिए मैंने नमाज़ के ज़रीये मदद मांगी और मैं नमाज़ियों की पहली सफ़ में जा खड़ा हुआ। इमाम महराब के नीचे जा खड़ा हुआ और क़ुरआन की पहली सूरत पढ़नी शुरू की और मद व हमज़ा के तलफ़्फ़ुज़ का झगड़ा शुरू किया और मुझे क़ाफ़िले से जुदा होने और सवारी न मिलने का अंदेशा बढ़ता गया। तब इमाम ने सूरत फ़ातिहा के बाद सूरत वाक़ेआ को शुरू कर दी और मेरे दिल में बेकरारी बढ़ती गई और मैं ज़बरदस्ती से अपने तईं रोकने लगा और ग़ेय्ज़ (गुस्सा) व ग़ज़ब की आग से भुन कर कबाब हो रहा था। लेकिन इस जगह के लोगों के वहशियाना जोश का हाल मुझे मालूम था। अगर नमाज़ में से आख़िरी सलाम का हिस्सा क़ताअ कर दिया जाता तो सिवाए ख़ामोशी और तहम्मुल या बोलने और मौत के सिवा चारा ना था। इसलिए इस सूरत के ख़ातिमे तक मजबूरन खड़ा रहा। अब क़ाफ़िले की तरफ़ से तो मुझे मायूसी हो गई और ख़ुराक व सवारी की उम्मीद ना रही। फिर इमाम ने ऐसी इन्किसारी और जज़बे से रुकूअ के लिए पुश्तख़म की कि जिसकी मिस्ल मैंने पहले कभी ना देखा था फिर उसने अपने हाथ और सर उठा कर ये कहा "ख़ुदा उस की हम्द क़ुबूल करे जो उस की हम्द करता है।" और फिर वो ख़ामोश खड़ा रहा जिससे मैंने गुमान किया कि वो सो गया। फिर उसने दाहिना हाथ ज़मीन पर रखा और पेशानी

> ख़ाक पर और अपना मुँह रगड़ा। मैंने सर उठा कर देखा कि भागने का कोई मौक़ा है लेकिन सफ़ों में से निकल भागने की कोई राह नज़र ना आई इसलिए फिर मैं नमाज़ में लग गया। हत्ता कि उसने दो ज़ानू बैठ कर तक्बीर पढ़ी फिर दूसरे रुकूअ के लिए खड़ा हुआ और सूरह फ़ातिहा और सूरह क़ारिया को ऐसे लहजे से और आहिस्तगी से पढ़ने लगा कि गोया क़ियामत तक ख़त्म ही ना करेगा और जमाअत को थका दिया और जब दो रुकूअ ख़त्म कर चुका तो कलिमा शहादत पढ़ने के लिए होंट हिलाने लगा और आख़िरी सलाम के लिए दाहने और बाएं अपना मुँह फेरा तब मैंने कहा "अब ख़ुदा ने भागने की राह आसान कर दी और मख़लिसी नज़्दीक है लेकिन इतने में एक आदमी ने उठकर कहा "जो मुसलमान उम्मत के रफ़ीक़ों को प्यार करता है वो एक लम्हे के लिए अपने कान मेरी तरफ़ लगाए।"

मुसलमान रस्म परस्तों की ऐसी तासीर दूसरों पर हुई थी।

इन पाबंद शराअ आलिमों के शक शकूक दूर ना हुए और ना किसी मुसलमान के आज तक हुए हैं प्रोफ़ैसर मेक्डानाल्ड साहब ने इस की वजह बताई है।

> "इन आलिमाने दीन के मुक़द्दमात को क़ुबूल कर लो तो वो बहस कर सकेंगे। इन मुक़द्दमात को रद्द कर दो तो फिर किसी दलील की गुंजाइश ना थी इनके इल्म का बानी अल-अशरी था जिसने ये इल्म मोतज़िला फ़िर्क़े को जवाब देने के लिए इख़्तिरा किया और उसने कामयाबी से ये किया लेकिन उसने यहां ही बस की। बिद्अतीयों के मुक़ाबले में वो अपने अक़ीदे की हिमायत कर सकते थे उनके नुक़्स व सिकम को खोल कर बयान कर सकते थे लेकिन बे एतिक़ादों के मुक़ाबले में वो लाचार व बेकस थे। ये तो सच्च है कि उन्होंने ये कोशिश तो की कि अहले फ़सलफ़ा का मुक़ाबला उन्हीं की दलाईल से करें जो हर और आज़ और अक़्ल ऊला की बहस को लें लेकिन इस में उनकी कोशिश

नाकाम रही। उनको इस मज़्मून का लाज़िमी इल्म हासिल ना था और ना उस की इल्मी बुनियाद थी और इसलिए आख़िरकार उन्होंने मन्क़ूल ही पर तकिया किया।"

ना फ़ल्सफ़े में उस को रोशनी मिली। गो उसने मुख़्तलिफ़ फ़लसफ़ों का मुतालआ किया और उनकी तर्दीद लिखी। दीन का ताल्लुक़ महज़ अक़्ल से नहीं बल्कि दिल से है। फ़ल्सफे की भी इस में जगह है। लेकिन इस से महज़ अक़्ल की तश्फ़ी हो सकती है लेकिन रूह इन्सानी के तकाज़ात इस से पूरे नहीं होते बादअज़ां उसने तालीमातियों की तालीम का इम्तिहान किया। ये फ़िर्क़ा इस्माईलियों का हम-अस्र फ़िर्क़ा था जिसका बानी हसन इब्ने अल-सबाह था। उनकी तालीम ये थी कि इमाम लाग़लता (لاغلط) होता है। बहुत लोग इस फ़िर्क़े के पैरौ (मानने वाले) हो गए लेकिन अल-ग़ज़ाली ने बजाय मानने के चंद रिसाले उस की तर्दीद में लिखे। इस परेशान व हैरान तालिब हक़ के लिए सिवाए तसव्वुफ़ के और कोई राह ना थी ये वही तालीम थी जो उसने शुरू में तूस और नीशापूर में हासिल की थी और अपने वतन में जिसका चर्चा सुना था क्योंकि सदीयों से वहां इस तालीम का ज़ोर था। अपनी ज़िंदगी के इस ज़माने के बारे में वो ये कहा करता था :-

"जब मैंने अवाम की तक़्लीद में ग़ोता लगाना और उनके प्याले से पीना चाहा तो मैंने अपनी रूह पर नज़र डाली और मैंने देखा कि इस पर किस क़द्र हिजाब पड़ा हुआ था। इसलिए मैं सहरा नशीन हो गया और चालीस रोज़ तक चिल्ले में रहा और उस वक़्त मुझे वो इल्म हासिल हुआ जो मेरे माहसल इल्म से ज़्यादा ख़ालिस और उम्दा था। फिर मैंने इस पर नज़र डाली तो क्या देखता हूँ की इस में शरई अंसर मिला हुआ है। मैं फिर गोशा नशीन हुआ और चालीस दिन तक फिर चिल्ला खींचा और पहले की निस्बत भी ज़्यादा आला और अफ़्ज़ल इल्म मुझे हासिल हुआ और मेरे दिल में बड़ी ख़ुशी हुई जब फिर मैंने इस पर निगाह की तो मैंने देखा कि इस में बहुत कुछ क़यासी अंसर मिला हुआ था। इसलिए मैंने तीसरी दफ़ाअ ख़ल्वत नशीन हो कर चालीस दिन का चिल्ला किया। इस वक़्त मुझे एक और इल्म हासिल हुआ। जो महज़ ख़याल ना था बल्कि ऐनी था और मैं

> बातिनी उलूम के अस्हाब तक ना पहुंचा। इसलिए मैं जानता हूँ कि जिस तख़्ती पर से कुछ मिटा कर लिखा जाये वो तहरीर ऐसी साफ़ और उम्दा नहीं होती जैसी वो तहरीर जो कोरी और साफ़ तख़्ती पर लिखी जाये और मादूद-ए-चंद अश्या के, सिवा किसी दूसरी शैय की निस्बत मैं क़ियास के पंजे से ना छूट सका।"

इन सुतूर को पढ़ कर किस को शक बाक़ी रहेगा उसने ख़ुदा और हक़ की तलाश में ख़ुलूस क़ल्बी से काम नहीं लिया।

अपनी किताब "इक़रारात" में उसने ये बाक़ी क़िस्सा भी बयान किया :-

> "मैंने मालूम कर लिया कि इल्म-ए-तसव्वुफ़ तारीफ़ात पर मुश्तमिल नहीं बल्कि तजुर्बात पर और जिस बात की कमी मुझमें थी वो तालीम की ना थी बल्कि वज्द (सूफ़ियों की इस्तिलाह वो हालत बेखुदी जो बाअज़ अश्ख़ास को समाअ से होती है।) और बैअत (मुरीद) बनने की थी।"

"जिस तहक़ीक़ात में मुझे मसरूफ़ होना पड़ा और दीनी और क़यासी उलूम की तहसील में जो राह मुझे तेय करनी पड़ी उनके ज़रीये तीन उमूर का मुझे पुख़्ता यक़ीन हो गया यानी ख़ुदा, इल्हाम और यौम-उल-हिसाब का। दीन के इन तीन बुनियादी उसूलों कौमें ने पुख़्ता तौर से मान लिया ना महज़ ख़ास दलाईल के ज़ोर पर। लेकिन अस्बाब, वाक़ियात और इस्बात के मुसलसल सिलसिले से जिनका बयान करना नामुम्किन है। मैंने ये मालूम कर लिया कि ख़ुदा-परस्ती, जज़्बात पर क़ाबू पाने ही के ज़रीये आदमी नजात हासिल कर सकता है। इस अमल, में ये तो फ़र्ज़ कर लिया गया है कि आदमी ने इस झूटी दुनिया को तर्क कर के इस से दिल हटा लिया है ताकि वह अबदियत और ख़ुदा का ध्यान करने की तरफ़ मुतवज्जोह हो। आख़िर कार मैंने ये दर्याफ़्त किया कि कामयाबी की शर्त वाहिद ये थी कि दुनियावी इज़्ज़त व दौलत को आदमी क़ुर्बान कर दे और दुनियावी ज़िंदगी के ताल्लुक़ात और रिश्तों से क़ताअ करे।"

जब मैं अपनी हालत पर संजीदगी से सोचने लगा तो मैंने देखा कि मैं तो चारों तरफ़ से ज़ंजीरों के साथ जकड़ बंद हूँ मैंने अपने अफ़आल का इम्तिहान किया और मुझे अफ़आल हसना दिखाई देते थे। यानी दर्स व तदरीस का काम तो मुझे ये दर्याफ़्त करके हसरत हुई कि मैं कैसी कम वक़अत उलूम की तहसील में लगा रहा, जो मेरी नजात के लिए हरगिज़ मुफ़ीद ना थे। और जब मैंने अपने दर्स तदरीस की ग़र्ज़ को परखा तो मुझे ये मालूम हुआ कि मैंने ख़ुलूस दिली से ख़ुदा को मद्द-ए-नज़र नहीं रखा बल्कि दुनियावी इज़्ज़त व शौहरत को। मैंने ये मालूम कर लिया कि मैं एक कराड़े (दरिया का बुलंद किनारा) के किनारा पर खड़ा हूँ और अगर फ़ौरन दिल में तब्दीली ना हो तो मैं आतिश अबदी में झोंक दिया जाऊँगा। बहुत अर्से तक मैं इन्हीं ख्यालात में ग़लताँ रहा और अभी तक इस दुबधे ही में था कि मैंने एक दिन ये अज़म कर लिया कि बग़दाद निकल भागूं और माल मताअ सब तर्क कर दूँ। लेकिन दूसरे दिन ही ये अज़म जाता रहा। मैं एक क़दम आगे बढ़ाता था और फिर फ़ौरन पीछे हटा लेता था। सुबह को तो ये पुख़्ता इरादा होता कि अब मैं फ़क़त आक़िबत (आख़िरत) की फ़िक्र में ही रहूँगा। शाम को जिस्मानी ख़यालात हमला-आवर होते और मेरे इरादों को मुंतशिर कर देते। एक तरफ़ तो दुनिया लालच की ज़ंजीरों के साथ मुझे अपने ओहदे से बांध देती और दूसरी तरफ़ दीन की आवाज़ चिल्ला चिल्ला कर मुझे ये कहती थी "उठ उठ" तेरी ज़िंदगी का अंजाम नज़्दीक है और तुझे दूर दराज़ का सफ़र दरपेश है जिस इल्म का तू फ़ख़्र करता है वो तो दरोग़ (झूट) व वहम है। अगर तू अपनी नजात की फ़िक्र ना करेगा तो फिर कब करेगा? अगर तू अपनी ज़ंजीरों को आज ना तोड़ेगा तो कब तोड़ेगा? उस वक़्त मेरे इरादे में इस्तिक़लाल आ जाता और सब कुछ छोड़ कर भाग जाना चाहता। लेकिन इब्लीस आकर फिर हमला करता और ये कहता था तू आरिज़ी ख़यालात से दुख उठा रहा है उन से मग़्लूब ना हो क्योंकि ये जल्द जाते रहेंगे। अगर तू उनकी बात मान कर अपना ऐसा उम्दा ओहदा छोड़ देगा और ऐसी इज़्ज़त की जगह जिसमें ना कोई तक्लीफ़ है ना कोई हरीफ़। ये हुकूमत जो हमलों से महफ़ूज़ है तो बादअज़ां बहुत पछताएगा और फिर ये मौक़ा हाथ ना आएगा।

अल-गर्ज़ जज़्बात नफ़्सानी और तमन्ना-ए-दीनी की कश्मकश से मेरी जान शिकन्जे में थी और हाल यह छः माह तक रहा। 1096 ई॰ के माह रज्जब से लेकर इन छः माह के इख़्ततताम पर मैं रज़ा ब-क़ज़ा हुआ। ख़ुदा ने मेरी ज़बान में लुक्नत

(हल्कापन) डाल दी और दर्स देने से मुझे रोक दिया। अपने शागिर्दों की ख़ातिर मैंने बहुत चाहा कि दर्स तदरीस का काम जारी रखूं। लेकिन मेरी ज़बान गुंग हो गई।

जब मेरे क़वाए जिस्मानी में ज़ोफ़ (कमज़ोरी) आ गया तब तबीबों ने मेरे बचाने की ख़ातिर मायूस हो कर ये कहा कि ये मर्ज़ दिल में है जिसका असर सारे बदन पर हो रहा है और इस का कुछ ईलाज नहीं जब तक कि इस शिद्दत-ए-ग़म का सबब दूर ना हो।

आख़िरकार अपनी नातवानी और रूह की परेशानी को देखकर मैंने ख़ुदा में पनाह ली जैसे वो शख्स पनाह लेता है जिसका कोई हीला वसीला नहीं रहता। जो "कमबख़्तों की सुनता है जब वो उस से फ़र्याद करते हैं।" (क़ुरआन 28-63) उसने मेरी आवाज़ भी सुनी और उस ने मुझे तौफ़ीक़ इनायत की कि मैं इज़्ज़त दौलत और अयाल व इतफ़ाल को तर्क करूँ।" (इक़रारात सफ़ा 42 से 45) लफ़्ज़ तब्दीली दिल से रुहानी तौर पर यहां वही मुराद नहीं जो मसीही दीन में मुराद ज़ाहिर ली जाती है। चुनान्चे माबाद बयान से ये ज़ाहिर है उस ने बहाना किया "मैंने बरमला ये बयान किया कि मैं मक्का के हज का इरादा रखता हूँ। हालाँकि दिल में ये इरादा था कि शाम को जाऊं लेकिन मैं ये ना चाहता कि (ज़ादहशमता) या मेरे दोस्त मेरे इस इरादे से आगाह हों कि उस मुल्क में यहां से जा कर रहना चाहता हूँ। मैंने बग़दाद छोड़ने के हर तरह के हीले बहाने किए। हालाँकि मेरा इरादा था कि मैं वहां फिर कभी वापिस ना जाऊं। इराक़ के इमामों ने एक दिल हो कर मुझ पर नुक्ता चीनीयां कीं। उनमें एक भी ये ना मानता था कि इस क़ुर्बानी की कोई दीनी ग़र्ज़ थी क्योंकि वो जानते थे कि दीनी जमाअत में मुझे सबसे आला रुत्बा हासिल था। उनकी अक़्ल की रसाई यहीं तक है। (क़ुरआन 53:31)

मेरी इस रविश के हर तरह के सबब बताए जाते थे। जो लोग इराक़ की हदूद से बाहर रहते थे उन्होंने तो ये कहा कि सरकार के ख़ौफ़ से मैंने ये काम किया और जो वहीं रहते थे और जिन्हों ने देखा था कि हुक्काम ने मुझे बाज़ रखने की कैसी कोशिश की और मेरे इस इरादे से कैसे नाराज़ थे और इस अम्र से कि मैंने उनकी दरख़्वास्त नामंज़ूर की। उन्होंने अपने दिल में ये कहा "ये आफ़त है जिसे आदमी क़िस्मत ही से मन्सूब कर सकता है। ये ईमानदारों और आलिमों की क़िस्मत में था।"

आख़िरकार मैं बग़दाद से निकल आया और माल व मताअ को तर्क कर दिया। चूँकि इराक़ की ज़मीन और जायदाद ख़ैराती मक़ासिद के लिए काफ़ी आमदनी दे सकती थी इसलिए मैंने शरई तौर पर ये इजाज़त हासिल कर ली कि मैं इस में से इस क़द्र आमदनी रख लूं जो मेरे और मेरे बच्चों के गुज़ारे के लिए काफ़ी हो। क्योंकि दुनिया में इस से ज़्यादा और क्या जायज़ होगा कि आलिम अपने ख़ानदान के काफ़ी गुज़ारे के लिए सामान बहम पहुंचाए। इस के बाद मैं शाम को चला गया और वहां दो साल तक रहा और ये अर्सा मैंने गोशा-नशीनी, ज़िक्र और रियाज़त में गुज़ारा। मुझे सिर्फ ये फ़िक्र थी कि जो तरीक़े दुआ व नमाज़ के सूफ़ियों ने मुझे सिखाए थे, उनके ज़रीये अपने आपको सुधारूं और अपने दिल की सफ़ाई व पाकीज़गी हासिल करूँ। दमिश्क़ की मस्जिद में गोशा नशीन रहा और मीनारे पर अपने हुजरे का दरवाज़ा बंद करके अपने दिन गुज़ारता था।" (सफ़ा 45 से 46)

जब अल-ग़ज़ाली ने दुनिया तर्क करने का अज़म किया और हज पर रवाना हुआ तो उसने अपने ज़माने के दस्तूर के मुताबिक़ किया। ना सिर्फ दीनदार लोगों को बल्कि सय्याहों को भी सफ़र ही में इत्मीनान और आराम हासिल होता था। दीनदार तो बक़ौल उनके यसूअ मसीह की तक़्लीद में ये करते थे और लफ़्ज़ मसीह के मअनी ही "सियाहत करने वाला" समझते थे। और दुनियावी मिज़ाज लोग फ़क़ीराना लिबास इसलिए इख़्तियार करते थे कि दूर-दूर मुल्कों की सैर करें और नई-नई जगहों को देखें।

बज़रीये डाक और क़ाफ़िलों की सड़कों के सफ़र बहुत आसान हो गया था इसलिए इस ज़माना का नाम ही शौक़ सियाहत पड़ गया था। उलमा को तश्फ़ी हासिल ना होती जब तक वो इस्लामी दुनिया को देख ना लेता। तबरेज़ी (1030 ई॰ से 1100 ई॰) इमाम ग़ज़ाली का हम-अस्र था वो भी निज़ामीया स्कूल में अफ़्सर रह चुका था। उस की निस्बत ये ज़िक्र आया है कि जब इल्मी मक़ासिद के लिए वो सफ़र करना चाहता था "तो उस के पास रुपया ना था कि वो घोड़ा किराये पर ले सके। इसलिए उसने अपनी किताब थैली में डाली और फ़ारस से शाम तक के दूर दराज़ सफ़र पर रवाना हुआ। उस की पीठ के पसीने से थैली भीग गई और उस की किताब पर धब्बे पड़ गए। ये क़लमी किताब बग़दाद के एक कुतुब ख़ाने में महफ़ूज़ रही और वहां जाने वालों को दिखाई जाती थी।" फ़ारसी शायर साअदी अवाइल उम्र ही में यतीम हो गया। और निज़ामीया दार-उल-उलूम में तालीम पाने की ख़ातिर बग़दाद को गया। और कई बार मक्का का हज किया और

यरूशलेम के बाज़ार और शाम के शहरों में महज़ ख़ैरात की ख़ातिर बहिश्ती का काम करता रहा। फ़िरंगियों ने उसे क़ैद में डाला। और यहूदीयों के साथ तरफ़ली वाक़ेअ शाम में ख़ंदक़ खोदने के काम पर लगा दिया। हलब के एक बाशिंदे ने ज़र-ए-फ़िद्या देकर उसे छुड़ाया और अपनी बेटी उसे निकाह दी। काशग़र वाक़ेअ तुर्किस्तान और हब्श और एशिया कोचक में सफ़र करने का उस ने ख़ुद ज़िक्र किया है। अफ़्ग़ानिस्तान की राह वो हिन्दुस्तान में भी आया।

हमदानी के बयालिस्वें मुक़ामात में एक ऐसे दरवेश का ज़िक्र आया है (जो बद-दियानत था "मैंने सियाहत शुरू की गोया कि मैं मसीह था। मैं खुरासान से लेकर उस के बे-आबाद और आबाद हिस्सों में गुज़रता हुआ किरमान, से जस्तान, जीलान, तबरिस्तान, अम्मान से होता हुआ सिंध और हिन्दुस्तान पहुंचा वहां से नोबेह और मिस्र, यमन, हिजाज़, मक्का और ताइफ को देखा। मैं बियाबानों और जंगलों में घूमता फिरा। हरारत और आतिश की तलाश में रहा। और गधों के साथ पनाह ली। हत्ता कि मेरे दोनों रुख़्सार काले पड़ गए। और यूं मैं ने क़िस्से कहानियां, लतीफ़े, रिवायत, हज़िल्लीयात, छिछोरों के मशग़लों और इश्क़ ज़दा लोगों के फ़सानों और नीम फ़लसूफियों के हथकंडों, शोब्दे बाज़ों के शोब्दों, अय्यारों की अय्यारियों को, अय्यार हमजोलियों के राज़ व नयाज़ की बातों, नुजूमियों के फ़रेबों, मक्कारों की चालाकियों, ज़नानों के धोकों, फ़रेबियों के हीलों, शयातीन की शैतानियत के किस्सों को जमा किया। इस हद तक कि शाएबी के शरई फ़ैसले, अलज़बी की यादगार और अल-क़ल्बी का इल्म उनके सामने हीच था। मैंने तोहफ़े तलब किए और इनाम मांगे। मैं अमीरों और फ़क़ीरों दोनों से वाक़िफ़ हुआ मैंने मदह और हजू दोनों से काम लिया। यहां तक कि मैं साहिबे जायदाद हो गया। हिन्दी तलवारें और यमनी ख़ंजरें, सुबूर के ज़िरह बक्तर, तिब्बत की चरमी ढालें, उलख़त के नेज़े और बरबरी के भाले, निहायत तेज़-रू घोड़े, अर्मनी खच्चरें और मरी गधे रुम के रेशमी कपड़े और सूस की ऊनी अश्या मेरे हाथ आएं।"

लेकिन अल-ग़ज़ाली जैसे दियानतदार सय्याह के लिए ऐसी ज़िंदगी आसान ना थी। ना सिर्फ सफ़र की सख़्ती और तन्हाई की मुसीबत थी बल्कि गदा और मुसाफ़िर की तंग-दस्ती का सामना था। हरीरी लिखता है कि :-

> "ऐसी हालत में से हमको गुज़रना पड़ा। कभी तो बख़्तावरी करता। कभी मोहताजी से पाला पड़ता। पांव के तलवों में छाले पड़ गए। भूक व प्यास के मारे गला सूख गया। शिकम में दर्द का दौरा था और अंतड़ियां भूक से निकली जाती थीं। बेदारी का सुर्मा आँखों में लगा था और ग़ार हमारा वतन था और कांटे हमारा बिस्तर। अपनी ज़ीनों को हमने फ़रामोश किया और मौत को हमने शीरीनी समझा और यौम-उल-हिसाब की इंतिज़ारी में हमारी आँखें थक गईं।"

ये क़रीन-ए-क़ियास है कि अल-ग़ज़ाली जैसा मुशाहिदा पना-ब्याज़ अपने सफ़रों में अपने साथ रखता होगा। बिलाशक वो उस वक़्त के जुग़राफ़िया की किताबों से वाक़िफ़ होगा। उनमें से बाअज़ किताबों में नक़्शे और तस्वीरें भी होंगी। उनमें सबसे मशहूर और अहम किताब अबू अब्दुल्लाह अल-मकदसी की तस्नीफ़ थी। जिसने अपनी ज़िंदगी का बड़ा हिस्सा इस्लामी सल्तनत में सैर व सियाहत में सर्फ किया। शायद हिन्दुस्तान और हसपानीया में वो नहीं गया। उस की किताब का नाम "मौसमों के इल्म की बेहतरीन तक़्सीम था" ये किताब (985 ई॰) में लिखी गई। अल-ग़ज़ाली के एक हम-अस्र बनाम अबू उबैद अल-बकरी साकिन कार्डोवा ने इस्लामी दुनिया की सारी शाहराहों और इलाक़ों का जुग़राफ़िया आम लिखा।

अगरचे अल-ग़ज़ाली के सफ़रों की तफ़्सील हमारे पास नहीं लेकिन फिर भी हम ये दर्याफ़्त कर सकते हैं कि वो किन-किन शहरों में गया और उस वक़्त उनकी क्या हालत थी, मालूम होता है कि वो बग़दाद से रवाना हो कर दमिश्क़ को गया जो तक़रीबन पाँच सौ मील के फ़ासले पर था और दमिश्क़ से यरूशलेम और हिब्रून को। वहां से मुहम्मद साहब के मौलिद मक्का को और फिर मदीना को जहां नबी की क़ब्र थी। फिर क़ाफ़िले के साथ हज़ारों मील का सफ़र कर के वापिस आया।

उस की ज़िंदगी के इस सारे अर्से में दमिश्क़ में जंग व जदल (लड़ाई, फसाद) हो रही थी। उस के ज़माने से थोड़ा अर्से पेश्तर करमातियों ने इस शहर को फ़तह किया और इस का बहुत सा हिस्सा आग से जला दिया। यहां के गवर्नरों की बार-बार तब्दीली होती रही और ग़दर व हंगामे बरपा रहे। (1068 ई॰) में जामा मस्जिद आग से जला दी गई।

(1076 ई॰) में सल्जूक़ जरनलों ने शहर को तसख़ीर (फ़त्ह) किया। क़िले की अज सर-ए-नव तामीर की और दीगर इमारात बनाईं। इनमें से एक मशहूर हस्पताल था। बग़दाद से दमिश्क़ पहुंचने से तक़रीबन पंद्रह साल पेश्तर ये सारे माजरे वक़ूअ में आए।

कहते हैं कि दमिश्क़ की आलीशान उम्मय्या मस्जिद सारी इमारतों से अज़ीमुश्शान थी। उस में 20 हज़ार नमाज़ियों के लिए जगह थी और शाम के इलाक़े के सैंतालिस (47) साल का सारा ख़राज उस की तामीर में सर्फ़ हुआ। कप्रस से जो 18 जहाज़ सोने और चांदी से लदे हुए आए थे। वो इस के इलावा थे। "जब ये आलीशान इमारत ख़त्म हुई और उस के हिसाब की किताबों से 18 खच्चरें लदी हुई ख़लीफ़ा के सामने पेश हुईं तो उसने उन पर निगाह भी ना की और उनके जला देने का हुक्म दिया और हुजूम से मुख़ातब हो कर यूँ कहा "ऐ अहलियाने दमिश्क़ तुम्हारे पास दूसरे लोगों की निस्बत चार अजाइबात बाइस-ए-फख्र हैं। तुम्हारा पानी, तुम्हारी हवा, तुम्हारे फल, तुम्हारे हमाम, अब पांचवां अजूबा बाइस-ए-फख्र ये मस्जिद होगी।"

इस्लामी इबादत की दीगर मशहूर जगहों की तरह ये मस्जिद एक मसीही गिरजा की जगह तामीर हुई जो युहन्ना इस्तिबाग़ी के नाम पर मख़्सूस था और अब तक इस की यादगार में एक ख़ानक़ाह पाई जाती है। चंद सालों तक तो मसीही और मुहम्मदी दोनों इस इमारत को इस्तिमाल करते रहे। लेकिन (708 ई॰) में मसीही यहां से निकाल दिए गए। आज तक इस के तीन मीनारों में से एक ईसा के नाम मौसूम है और एक फाटक पर जो अब मुद्दत से बंद पड़ा है यूनानी में ये कुतबा लिखा हुआ है <u>"ऐ मसीह तेरी सल्तनत अबदी सल्तनत है और तेरी बादशाही पुश्त दर पुश्त क़ायम है।"</u>

अल-ग़ज़ाली ने बहुत सालों तक कई घंटे इस आलीशान इमारत के साये में गुज़ारे और यसूअ नामे मीनारे में वो देर तक ध्यान-ए-इलाही में लगा रहा। बक़ौल सलाह उद्दीन :-

> "ये मीनारा अल-ग़ज़ाली के वहां जाने से कुछ देर पहले (11) ग्यारहवीं सदी में तामीर हुआ था। क्या कभी उसने इस कुतबे को देखा या पढ़ा और इस नबी के बारे में सोचा जिसकी सल्तनत का ना कोई आख़िर और ना कोई हद है?"

क़दह असग़र बमदीज़ अक़्दस अल-शरीफ़

قدۃ اصغرۃ بمدیذۃ اقدس الشریف

बाब चहारुम

सियाहत, माबाअ्द अय्याम और वफ़ात

अल-ग़ज़ाली की ज़िंदगी की तवारीख़ ऐन उनके लिए भी एक मुअम्मा (उलझा हुआ मसअला) था जिन्हों ने उस की ज़िंदगी का हाल उस की वफ़ात से एक सदी बाद लिखा। ना सिर्फ उस की मुख़्तलिफ़ सियाहतों के औक़ात बल्कि उनकी तर्तीब के बारे में भी बहुत शकूक हैं। बल्कि जिन जिन मुक़ामात की उसने सैर की उनके बारे में भी अब तक बह्स होती है। हमें ये मालूम है कि उस की ये दिली तब्दीली (488 हिज्री) में वक़ूअ पज़ीर हुई। (1095 ई॰) जब कि उस की उम्र 38 साल की थी और इस से थोड़े ही अर्से के बाद वो परदेस को चला गया। (498 हिज्री, 1104 ई॰) में उसने फिर काम करना शुरू किया और दो साल तक शाम में गोशा नशीन रहा। दीगर तारीखें बिल्कुल ग़ैर-यक़ीनी हैं। सबसे मोअतबर तसानीफ़ ख़ासकर उस की किताब बनाम “इक़रारात” के मुताबिक़ हम उस की कहानी वहां से शुरू करेंगे जहां हमने पिछले बाब में छोड़ी थी।

बक़ौल अल-ग़ज़ाली “मैं दमिश्क़ से रवाना हो कर यरूशलेम को गया और हर रोज़ चट्टान के मुक़द्दस में एतिकाफ़ में बैठा करता था। इस के बाद मेरे दिल में हज की तमन्ना पैदा हुई ताकि मक्का पहुंच कर और मदीना जाकर मस्जिद नबी की ज़ियारत कर के मैं कस्रत से बरकत हासिल करूँ। ख़लील-उल्लाह (इब्राहिम) के मक़बरे की ज़ियारत करके मैं हिजाज़ को गया। आख़िरकार मेरे दिल की आरज़ू और मेरे बच्चों की दुआएं मुझे अपने वतन की तरफ़ खींच लाईं। अगरचे शुरू में ये मेरा अज़्म-बिल-जज़म (पक्का इरादा) था कि मैं वहां कभी वापिस ना जाऊंगा। कम-अज़-कम मेरा ये इरादा था कि अगर मैं वहां वापिस गया भी तो आलम-ए-तन्हाई और ज़िक्र इलाही में मसरूफ़ रहूंगा। लेकिन वाक़ियात ख़ानदानी तफ़क्कुरात (तफ़क्कुर की जमा, सोच व बिचार) और इन्क़िलाबात ज़िंदगी ने मेरा इरादों को बदल डाला और ज़िक्र इलाही में जो इत्मीनान ख़ातिर हासिल था इस में ख़लल आया। गो ग़ैर-मुक़र्ररा औक़ात पर ज़िक्र इलाही में मसरूफ होने लगा। लेकिन इस पर मेरा एतबार किसी तरह कम ना हुआ। जिस क़द्र रुकावटों ने ख़लल डाला उसी क़द्र ज़्यादा में उन की तरफ़ रुजू हुआ। इस तरह से दस साल गुज़र गए।”

इस बयान के मुताबिक़ यरूशलेम और हिब्रून और मदीना और मक्का की तरफ़ उस का हज करना एक ही सियाहत के वक़्त हुआ और बग़दाद से इस्लाम की विलादत-गाह तक यही तबई रास्ता है। बाअज़ मुसन्निफ़ों का ये बयान कि वो पहले दस साल तक दमिश्क़ में रहा ग़ालिबन ना दुरुस्त है। अगर हम अल-असनवी के बयान का एतबार करें तो वाक़ियात का सिलसिला ये होगा, वो (1095 ई॰) में हिजाज़ की तरफ़ रवाना हुआ। हज से वापिस आने पर उसने दमिश्क़ का सफ़र किया और वहां जामा मस्जिद में चंद सालों तक रहा और कई किताबें तस्नीफ़ कीं जिनमें से "किताब अहया" एक है। फिर यरूशलेम और शायद काहिरा और सिकंदरीया को देखने के बाद वो अपने वतन तूस को गया।

एक अरबी मुसन्निफ़ के मुताबिक़ जब अल-ग़ज़ाली दमिश्क़ से अपनी सियाहत के लिए रवाना हुआ तो उस वक़्त एक शागिर्द उस के हमराह गया जिसका नाम अबू ताहिर इब्राहिम था। जिसने नीशापूर में बुज़ुर्ग इमाम से तालीम की थी। लेकिन पीछे वो अपने वतन जुरजान को चला गया और (513 हिज्री) में जाम शहादत नोश किया। दमिश्क़ में उस के दूसरे शागिर्दों का ज़िक्र भी आया है लेकिन मोअर्रिखों का इस में इत्तिफ़ाक़ नहीं।

यरूशलेम में जो बहुत ज़ियारत-गाहें थीं उन में से अल-ग़ज़ाली ने उमर की मस्जिद और चट्टान के गुम्बद की ज़ियारत की। (सूरह 17:1) में ज़िक्र है कि मुहम्मद साहब मक्का से यरूशलेम को गए "वो पाक है जो अपने बंदे को रातों रात मस्जिद हराम से मस्जिद अक़्सा तक ले गया। जिसके गिर्द हम ने बरकतें दे रखी हैं।"

अल-सियूती का क़ौल है कि :-

> "अहले इस्लाम में यरूशलेम की इज़्ज़त ख़ास कर इस लिए है कि यहां हज़रत दाऊद और हज़रत सुलेमान ने तौबा की। वो जगह जहां खुदा ने अपना फ़रिश्ता हज़रत सुलेमान के पास भेजा और ज़करियाह को युहन्ना की खूशख़बरी दी और दाऊद को हैकल का नक़्शा दिखाया और ज़मीन के सारे चरिंद और हवा के सारे परिंद उस के मातहत कर दिए। यरूशलेम ही में अम्बिया क़ुर्बानी चढ़ाया करते थे। वहां ही यसूअ पैदा हुआ और गहवारे में बातें करता रहा और यरूशलेम ही से यसूअ ने आस्मान पर सऊद

> किया और इसी जगह वो आस्मान से नुज़ूल कर गया। जोज माजूज दुनिया के हर मुक़ाम को फ़त्ह कर लेंगे लेकिन वो यरूशलेम पर ग़ालिब ना आएंगे और इसी जगह ख़ुदा क़ादिर-ए-मुतलक़ उन को नेस्त करेगा। यरूशलेम ही की मुक़द्दस सर-ज़मीन में आदम इब्राहिम, इस्हाक़ और मर्यम मदफ़ून हैं और आख़िरी अय्याम में लोग यरूशलेम ही की तरफ़ भागेंगे और उस वक़्त तो अहद का संदूक़ और सकीना हैकल में बहाल होगा। इसी जगह रोज़-ए-क़यामत को अदालत के लिए कुल नूअ-ए-इन्सान जमा होंगे और ख़ुदा अपने फ़रिश्तों के साथ हैकल में दाख़िल होगा जब कि वो दुनिया का इन्साफ़ करने आएगा।"

यहां अल-ग़ज़ाली ने इस चट्टान पर मुहम्मद साहब के नक़्श-ए-क़दम देखने की आरज़ू की होगी। जहां से उस ने आस्मान की तरफ़ मेअराज किया। जिन मुक़ामात में इब्राहिम और एलियाह ने दुआएं मांगी थीं वो लोगों ने उसे दिखाई होगी और चट्टान का वो गोल सुराख़ जिसमें से मुहम्मद साहब गुज़रकर आस्मान पर गए और मुक़द्दस मुक़ाम ग़ार की छत में जो ऊंचा हो गया था ताकि वो सीधे खड़े हो कर दो गाना (नमाज़ शुक्राना) करें। जिस ज़बान से इस मुक़ाम ने कलाम किया और जिब्राईल फ़रिश्ते की उंगली के निशान जहां से आगे जाने की उस को इजाज़त ना हुई। मुसलमान वो जगह भी आज तक दिखाया करते हैं जहां सुलेमान जिन्नात को सज़ा दिया करते थे और मिश्र की दीवार जिसके नज़्दीक वो तख़्त था जहां वो मरने के बाद बैठा नज़र आया उस की लाश असा के सहारे पर रही ताकि जिन्नात को उस की मौत का पता ना लगे। हत्ता कि कीड़ों ने इस असा को खा लिया और लाश औंधे मुँह गिर पड़ी। इन सब बातों का ज़िक्र मुसलमान की हदीसों में आया है इस से अल-ग़ज़ाली को ज़ोर एतिक़ादी या बे-एतिक़ादी में मदद मिली होगी। अपनी एक तस्नीफ़ में उस ने ये ज़िक्र कि :-

> "आख़िरी रोज़ इस्राफ़ील जो जिब्रईल और मीकाईल के साथ दुबारा ज़िंदा किया जाएगा। यरूशलेम की हैकल की चट्टान पर खड़े हो कर ख़ुदा के हुक्म से दुनिया के सारे हिस्सों से अर्वाह (रूहों) को जमा करेगा। ईमानदारों की रूहों को फ़िर्दोस से और बेईमानों की रूहों को दोज़ख़ से और अपने सूर में उन्हें डाल

देगा। वहां वो छोटे-छोटे सुराख़ों में ऐसे जमा होंगे जैसे छत्ते में शहद की मक्खियां होती हैं और जब वो आख़िरी सूर फूंकेगा, तो शहद की मक्खीयों की तरह निकल भागेगें और ज़मीन व आस्मान के सारे मकामात को भर देंगा। फिर वो अपने अपने जिस्मों में दाख़िल होगी। उस वक़्त ज़मीन एक वसीअ मैदान होगा और कोई पहाड़ी या गांव ना होगा और मुर्दे जी उठने के बाद अपनी-अपनी क़ब्रों में जा बैठेंगे और जो कुछ उन पर वार होने को है उस की इंतिज़ारी बड़ी फ़िक्र से करेंगे।"

इस मस्जिद के बारे में जो दीगर मुहम्मदी रिवायत हैं उनका बयान एक ज़माना हाल के सय्याह ने लिखा है :-

"कुर्सी के ज़ीने पर जो मेहराबें बनी हुई है उनका नाम "मीज़ान" इसलिए रखा गया है क्योंकि उस रोज़े-अज़ीम को अदालत का तराज़ू वहां लटकाया जायेगा। ज़ंजीर के गुम्बद के नाम वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) ये है कि दाऊद की अदालत गाह में एक सोने की ज़ंजीर लटकी हुई थी और गवाह शहादत देते वक़्त उस को पकड़ते अगर उन की गवाही झूटी होती तो उस ज़ंजीर में से एक कड़ी गिर पड़ती थी। बैरूनी दीवार में एक मुक़ाम दिखाया जाता है जिसकी निस्बत ये रिवायत है कि यौमे-अदालत को वहां एक तार लटका दी जायेगी जिस तार का दूसरा सिरा कोह ज़ैतून से बंधा होगा। मसीह आन कर दीवार पर बैठेगा और मुहम्मद साहब उस पहाड़ी पर इस तार पर से सारे आदमी गुज़रेंगे। लेकिन सिर्फ नेक ही उस पर से उबूर कर सकेंगे और सारे बदकार नीचे वादी में जा कर गिरेंगे। मस्जिद अक़्सा में दो सुतून एक दूसरे के बहुत मुत्तसिल (नज़दीक) खड़े हैं और वो ऐसे घुस गए हैं कि उनका पतलापन साफ़ ज़ाहिर होता है। जो फ़ासिला उन के माबैन है उस में तुरही की सी आवाज़ आती है और अब एक नोकदार लोहे का टुकड़ा उन के दर्मियान लगा दिया गया। आख़िरी अज्र के दर्याफ़्त करने का ये मज़ीद मेयार हैं। जो

आदमी सुकड़ कर उन के बीच में से गुज़र सके उसी को बहिश्त में जाने की तंग राह दस्तयाब हुई है।"

मुसलमान मोअर्रिखों ने भी येरूशलेम का बयान लिखा है। एक ने दसवीं सदी के आख़िर में और दूसरे ने ग्यारवीं सदी के वस्त में इसी मोअख़्ख़र-उल-ज़िक्र ने वहां की आबादी का अंदाज़ा बीस हज़ार लगाया और उस के ख़याल में इसी क़द्र मुसलमान हाजी हज के महीने वहां जाते थे। मसीही और यहूदी भी वहां ज़ियारत के लिए वैसे ही जाते थे जैसे आजकल जाते हैं। इन दोनों मुसन्निफ़ों ने वहां की सफ़ाई तारीफ़ की है। जिसकी वजह उन्होंने जगह के मौक़े और क़ुदरती बद्ररु से मन्सूब की। तो भी इस सारी सदी में येरूशलेम की तारीख मसीही और मुस्लिम मुक़द्दस जगहों की तबाहियां और मुरम्मत की तारीख है। (1010 ई॰) में मुक़द्दस क़ब्र (Holy Sepulchre) के गिरजा को दीवाना सुल्तान हकीम ने पामाल किया। इलावा अज़ीं मसीही हाजियों को और बहुत सी तक्लीफ़ें और ईज़ाएं दी गईं। हत्ता कि पीटर फ़क़ीर (Hermit) ने इस के ख़िलाफ़ सदा-ए-एहतिजाज बुलंद की और सलीबी जंगों का आग़ाज़ हुआ।

हमें कुछ मालूम नहीं कि इस ज़ियारत के वक़्त अल-ग़ज़ाली ने अपना वक़्त यरूशलेम में कैसे काटा। सलीबी जंग की इब्तिदा से ज़रा पेश्तर शाम-भर में जंग व हंगामा बरपा थे इस का सिर्फ क़ियास कर सकते हैं कि अल-ग़ज़ाली ने इस सारी हालत में कैसी दिलचस्पी ली होगी और मुस्लिम अक़ीदे के ऐसे जोशीले हामी ने इन आइन्दा वाक़ियात में कैसी सर-गर्मी दिखाई होगी जो उस के येरूशलेम में जाने के वक़्त मुक़द्दस ज़मीन वाक़ेअ हो रहे थे। हम ये तो जानते हैं कि उस ने सूफ़ी ज़िंदगी बसर की और दुआ और रोज़े में मसरूफ़ रहा। हर साहिबे ज़मीर मुसलमान की ज़िंदगी में नमाज़ का बड़ा हिस्सा है ना सिर्फ पाँच मुक़र्ररा रस्मी नमाज़ें हैं, बल्कि नमाज़ तहज्जुद जो बक़ौल ग़ज़ाली आधी रात और तड़के से पेश्तर पढ़नी चाहीए ये अंदाज़ा लगाया गया है कि जो मुसलमान दुरुस्त तौर से अपनी नमाज़ें अदा करे तो वो एक ही क़िस्म की दुआओं में कम अज़ कम पेछतर (75) दफ़ाअ पढ़ता है। नमाज़ों के इलावा वित्र की नमाज़ है इशा के बाद पढ़ी जाती है। नमाज़ ज़ुहा जो दोपहर से पेश्तर अदा होती और रात के अर्फो की नमाज़ जो शाम की आख़िरी नमाज़ और आधी रात की नमाज़ के माबैन पढ़ी जाती है। मज़्कूर बाला सारी नमाज़ों के इलावा जो लोग कमाल का आला दर्जा हासिल करना चाहते हैं उन्हें बक़ौल अल-ग़ज़ाली अपने अमल के मुताबिक़ चंद दीगर नमाज़ें भी अदा करनी

चाहीए जिनको वित्र कहते हैं। इस सूफ़ी इबादत की हक़ीक़त को हम याद रखें जिनमें दिन और रात उस ने गुज़ारे उस के लिए हम उस की "अहया" में से नक़्ल करते हैं।

"क़ुरआन की बहुत आयात से ये ज़ाहिर होता है कि ख़ुदा से वस्ल (मुलाक़ात) पाने का वाहिद तरीक़ा उस के साथ मुतवात्तिर राह व रब्त रखना है। इसलिए जिस इबादत का नाम विर्द है उस का यही मक़्सद है कि ईमानदार लैल-वन्नहार (रात और दिन) इसी में मशग़ूल व मसरूफ़ रहे। दिन के लिए सात विर्द मुक़र्रर हैं। पहला विर्द मुसलमान अला उल-सबाह उठ कर ख़ुदा का नाम ले। उस की हम्द करे। ख़ास मुनाजात पढ़े कपड़ा पहनते वक़्त मुक़र्ररा दुआएं मांगें। मिस्वाक से दाँत साफ़ करे। वुज़ू अदा करे और तुलू-ए-आफ़्ताब के लिए दो सुन्नत रकअत अदा करे। इस के बाद एक और दुआ पढ़ना है और ख़ातिर जमुई के साथ मस्जिद को जाये। मस्जिद में बड़ी संजीदगी और अदब के साथ अपना क़दम रखे और दाख़िल होते और वहां से निकले वक़्त मुक़र्ररा दुआएं पढ़े। अगर जगह होतो नमाज़ियों की पहली सफ़ में जा शामिल हो और इशराक़ (रोशन ज़मीरी) के लिए दो रकअत पढ़े बशर्ते के घर में ये ना पढ़ चुका हो। फिर मस्जिद को सलाम करके दो रकअत अदा करे और दुआएं और हम्दें पढ़े और जमाअत के जमा होने का इंतिज़ार करे और इशराक़ की लाज़िमी नमाज़ अदा करे तुलू-ए-आफ़्ताब तक मस्जिद में बैठा रहे और ज़िक्र करता और ख़ास दुआएं मांगता रहे। एक मुक़र्ररा तादाद पर हम्द पढ़े और तस्बीह पर गिनता जाये और क़ुरआन की सूरतें पढ़ता रहे।" हमें मालूम है कि तस्बीह का इस्तिमाल आम था क्योंकि अल-हरीरी की "मजालिस" में और अल-ग़ज़ाली की "कीमिया सआवत" (کیمیاے سعاوت) में इस का ज़िक्र पाया जाता है।

दूसरा विर्द और नमाज तुलू-ए-आफ़्ताब से लेकर क़ब्ल अज़ दोपहर तक है। ईमानदार दो रकअत अदा करता है और जब सूरज एक नेज़ा भर बुलंद होता है तो दो और रकआतें पढ़ ही जाती हैं। ये वो वक़्त है कि जब ईमानदार नेक-आमाल मसलन बीमारी पुरसी वग़ैरह में मसरूफ़ हो और जब कोई ख़ास अम्र क़ाबिल-ए-तवज्जोह ना होतो वो मुनाजात-ए-ज़िक्र, याद-ए-इलाही और क़ुरआन की तिलावत में मसरूफ़ रहे। तीसरे विर्द का वक़्त सुबह से आफ़्ताब के बुलंद होने तक है। जब कि मोमिन अपने दुनियावी कारोबार से फ़ारिग़ हो कर मज़्कूर बाला रियाज़त इलाही में मशग़ूल होता है। आफ़्ताब के बुलंद होने और नमाज़ क़ब्ल अज़ दोपहर के दर्मियान आज़ान और इक़ामत के माबैन चार रकअत और क़ुरआन की सूरतें पढ़ी जाती हैं। ये चौथा विर्द है। नमाज़ मग़रिब तक

पांचवां, छटा और सातवाँ विर्द आते हैं। आख़िरकार रात के विर्द हैं और वो शुमार में पाँच हैं और उन की तक़्सीम इस तरह से है। अव्वल रात का विर्द ग़ुरूब-ए-आफ़्ताब के बाद जब की नमाज़ अदा हो चुकती है इस तक कि अंधेरा हो जाए मोमिन दो रकातें पढ़ता है जिनमें क़ुरआन के चंद मुक़ामात पढ़हे जाते हैं। फिर चार तवील रकातें अदा होती हैं और जिस क़द्र वक़्त की गुंजाइश हो क़ुरआन में से पढ़ा जाता है। ये विर्द घर में अदाकर सकते हैं लेकिन मस्जिद में अदा करने को तर्जीह दी गई है। रात का दूसरा विर्द इस का वक़्त-ए-आख़िरी इशा की तारीकी से लेकर उस वक़्त तक है कि लोग सोने को जाएं। इस विर्द में तीन बातें हैं (1) अव्वल तो लाज़िमी इशा दस रकातें यानी चार इस से पहले और छः इस बाद (2) तेराह रकातों का अदा करना जिनमें से आख़िरी वित्र की नमाज़ कहलाती हैं। इस में क़ुरआन की तक़रीबन तीन सौ आयात पढ़ी जाती हैं। (3) सोने से पेश्तर वित्र की नमाज़ बशर्ते के रात को उठने की उसे आदत ना हो और रात को उठकर पढ़ने में ज़्यादा सवाब है। रात का तीसरा विर्द इस में नींद शामिल है और नींद भी अगर मुनासिब तौर से होतो इबादत में दाख़िल है रात का चौथा विर्द ये उस वक़्त शुरू होता है जब निस्फ़ रात गुज़र जाती है और उस वक़्त तक रहता है जब रात का छटा हिस्सा बाक़ी रह जाये उस वक़्त मोमिन को नींद से बेदार होना चाहीए और तहज्जुद की नमाज़ पढ़ना चाहीए इस नमाज़ को नमाज़ तहज्जुद भी कहते हैं। मुहम्मद साहब अक्सर इस नमाज़ में तेराह रकातें पढ़ा करते थे। रात का पांचवां विर्द ये रात के बाक़ी छुटे हिस्से से शुरू होता है और उसे सहर कहते हैं यानी पौ फटने से पेश्तर शुरू करके पौ फटने तक।"

इन रियाज़तों पर जिनका ज़िक्र किताब "अहया" में हुआ चार मज़ीद अफ़आल को ईज़ाद करना अम्र तवाब गिना जाता था यानी रोज़ा, ज़कात, तीमारदारी, जनाज़े के साथ जाना और इन सब के इलावा ज़िक्र ख़ुदा की भी ताकीद थी। सूफ़िया किराम इबादत के एक ख़ास तरीक़े को ज़िक्र कहते हैं।

अल-ग़ज़ाली ने इस अमल के तरीक़े और नतीजों का ज़िक्र एक मुक़ाम में किया जिसका ख़ुलासा मैक्डानल्ड साहब ने यूं दिया है :-

> "मोमिन अपने दिल को ऐसी हालत में मुंतक़िल कर दे जिसमें उस के नज़्दीक अदम और वजूद एक हो जाएं फिर वो तन्हा हो कर किसी गोशे में बैठे और मुतलक़ ज़रूरी दीनी

फ़राइज़ ही में मसरूफ़ हो ना क़ुरआन की तिलावत में ना उस के माअनी समझने में ना दीनी हदीसों वग़ैरह के पढ़ने में और वो ख़बरदार रहे कि ख़ुदा तआला के सिवा कोई और शैय उस के दिल में दख़ल ना पाए जब वो इस तरह से आलम तजर्रुद में बैठा हो तो इस की ज़बान से अल्लाह अल्लाह का ज़िक्र मौक़ूफ़ ना हो और वो अपना सारा तसव्वुर इस पर जमाए रखे। आख़िरकार उस की ये हालत होगी कि इस ज़बान की हरकत बंद हो जाएंगी और ऐसा मालूम होगा, कि वो लफ़्ज़ ख़ुद बख़ुद ज़बान से सादिर है। वो ऐसी हालत में मुस्तक़िल तौर से रहे हत्ता कि इस की ज़बान की हरकत बिल्कुल जाती रहे और इस का दिल इस ख़याल में मुस्तक़िल हो जाये। अब भी वो इसी हालत में रहे हत्ता कि लफ़्ज़ की सूरत, हुरूफ़ और उनकी सूरत इस के दिल से महक हो जाये और सिर्फ तसव्वुर ही इस के दिल में बाक़ी रह जाये। यहां तक तो सब कुछ इस के इरादे और इस की मर्ज़ी पर मौक़ूफ़ है लेकिन रहमत इलाही का वारिद करना इस के इरादे और मर्ज़ी में नहीं। अब मोमिन ख़ाली हो कर उस की रहमत के तनफ़्फ़ुस के लिए पड़ा है और वो मुंतज़िर है कि ख़ुदा इस पर वो बातें मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) करे जो ख़ुदा ने इस तरीक़े पर अम्बिया और औलिया पर कश्फ़ की थीं। अगर वो इस मज़्कूर बाला तरीक़े पर अमल करेगा तो वो यक़ीन जाने कि उस अल-हक़ का नूर इस के दिल पर तुलूअ होगा। पहले तो वो बर्क़ की चमक की तरह मुतज़लज़ल (काँपने वाला, डगमगाने वाला, जुंबिश करने वाला) नज़र आएगा। अभी दिखाई दिया, अभी ग़ायब हो गया और कभी देर तक दिखाई ना दिया और जब फिर दिखाई दे तो कभी देर तक रहता है और कभी आरिज़ी जलवा होता है और जब ये ठहरता है तो कभी अर्सा दराज़ तक ठहरता है और कभी थोड़े अर्से तक।"

इबादत की हक़ीक़ी ज़िंदगी के बारे में अल-ग़ज़ाली की ये तालीम है और हमें यक़ीन है कि जिन अय्याम में वो घर से जिलावतन हो कर यरूशलेम और दमिश्क़ में

रहा। इसी का आमिल रहा होगा। ख़ुदा के असमा-ए-हसना (ख़ूबसूरत नामों) के लाइन्तहा ज़िक्र और "दुआ-ए-बिलानागा में" मसरूफ़ होगा और ये ताज्जुब का मुक़ाम है कि ऐसी औक़ात बसरी में (वक़्त गुज़ारने में) तालीफ़ व तस्नीफ़ (मुख़्तलिफ़ किताबों से पैराए चुन कर तर्तीब देना और किताबें लिखना) के लिए कौन सा वक़्त उसे मिला होगा और किस वक़्त वो दर्स व तदरीस (पढ़ना, पढ़ाना) का काम करता होगा जिसका ज़िक्र हम पढ़ चुके हैं।

यरूशलेम में उस की ज़िंदगी का एक दिलचस्प क़िस्सा इन अल्फ़ाज़ में बयान हुआ है। "एक रोज़ इमाम अबू हमीद अल-ग़ज़ाली और इस्माईल अल-ककीमी, इब्राहिम अल-शबकी, अबुलहसुन अल-बसरी और बहुत से ग़ैर-ममालिक के बुज़ुर्ग ईसा के (सलिमा अल्लाह तआला) मौलिद यरूशलेम में जमा हुए और मालूम होता है, कि अल-ग़ज़ाली ने दो अशआर पढ़े जिनका तर्जुमा ये है :-

> "काश कि मैं तेरा फ़िद्या होता। अगर मुहब्बत दख़ल ना देती तू तो मेरा फ़िद्या देता। लेकिन तेरी जादू निगाह आँखों ने मुझे असीर (क़ैदी) किया और जब मेरे सीने में मुहब्बत भरी थी मैं तेरे पास आया और अगर तुझे मेरे इश्तियाक़ का हाल मालूम होता तो तू मेरे पास आता।"

इस पर अबुलहसुन अल-बसरी हालत वज्द में आ गया। उस की आँखों से आँसू जारी थे और कपड़े फटे थे और मुहम्मद अल-काज़र्दनी हालत वज्द में इस मज्लिस के बीच रहलत कर गया।"

कहते हैं कि यरूशलेम में उसने रिसाला "अल-क़ुददुसिया" लिखा और वहां पहुंचने की तारीख़ (492 हिज्री) से कुछ पहले होगी क्योंकि इस साल मुजाहिदिन सलीब ने यरूशलेम को फ़त्ह कर लिया।

ये अम्र तबई है कि अल-ग़ज़ाली के मिज़ाज का शख़्स अब्रहाम की क़ब्र की ज़ियारत को जाये जिसे अहले इस्लाम "ख़लील-उल्लाह" कह कर ख़ुश होते हैं। क़ुरआन में बराबर इस्लाम दीने इब्राहीम कहलाता है। रिवायत है कि मकफ़ीला का ग़ार ज़माना-ए-हाल के हिब्रून के मशरिक़ी हिस्से में वादी के कराड़े पर है और जो मस्जिद वहां है। कहते

हैं कि वो क़ब्र उस के अंदर है। हिब्रून यरूशलेम से तक़रीबन सत्रह मील जुनूब मग़रिब को है। बारहवीं सदी से पेश्तर लोग मकफ़ीला के ग़ार की ज़ियारत और हज को जाने लगे।

बिनियामीन तोडेला (Tudela) का बयान है कि :-

> "हिब्रून में एक इबादत-गाह बनाम "मुक़द्दस इब्राहिम" है। जो पेश्तर यहूदी इबादतखाना था। वहां के बाशिंदों ने इस जगह छः क़ब्रें बनाईं और ग़ैर-ममालिक के हाजियों को कहने लगे कि वो पत्री-ऑरिकों और उनकी बीवीयों की क़ब्रें हैं और उनकी ज़ियारत के लिए उनसे नक़दी तलब करते थे। अगर कोई यहूदी मामूल से बढ़ कर बख़्शीश देता, तो इस ग़ार का मुहाफ़िज़ एक आहनी दरवाज़ा खोल देता जो हमारे आबाओ अज्दाद के ज़माने का बना हुआ है और शमा रोशन करके वो मुसाफ़िर नीचे उतरता। वो दो ग़ारों से गुज़र कर तीसरी ग़ार में छः क़ब्रें देखता। जिन पर इन तीन पत्री-ऑरिकों और उनकी बीवीयों के नाम इब्रानी हुरूफ़ में लिखे हैं वो ग़ार मटकों से भरा है जिनमें मुर्दों की हड्डियां भरी हैं, जिनको लोग इस मुक़द्दस जगह में ला कर धरते हैं। मकफ़ीला के खेत के सिरे पर इब्राहिम का घर है जिसके सामने एक चश्मा है।"

हिब्रून में इब्राहिम की क़ब्र पर जो मस्जिद बनी है उस की कुर्सी मुस्ततील है इस का तूल सत्तर (70) गज़ और अर्ज़ पैंतीस (35) गज़ है जो क़ब्र इस में छिपी है उसे किसी मसीही ने शाज़ो नादिर (कभी-कभार) ही देखा होगा। मुसलमानों के सिवा किसी दूसरे को इजाज़त नहीं कि मशरिक़ी दीवार के सातवें ज़ीने से आगे क़दम रखे।[1]

---

1 एक हाल के सय्याह ने बयान किया है कि दीवार में एक सुराख है जिस से गार में जा सकते हैं। यहूदी इब्राहिम के नाम ख़त लिख कर उस सुराख में रख देते हैं जिन का मज़मून यह होता है कि, देखिए मुसलमान हम से कैसी बदसुलूकी करते हैं। लेकिन मुसलमान लड़कों को मालुम है कि वह सुराख गहरा नहीं और उन खतों को जला देते हैं इस से (miss printing) देखने पाएं।

हिब्रून दुनिया के निहायत क़दीम शहरों में से है और हज़ारों क़िस्से इस के मुताल्लिक़ मशहूर हैं। अल-ग़ज़ाली के अय्याम में भी ये रिवायत थी कि आदम की पैदाइश और वफ़ात यहीं हुई। हाबिल यहीं क़त्ल हुआ और इब्राहिम ने इसी को अपना वतन बनाया। अल-ग़ज़ाली हिब्रून को देखने के बाद मक्का के हज को गया। हमें ये तो मालूम नहीं कि वो तरी (समुंद्र) के रास्ते गया या ख़ुश्की के रास्ते।

बहरहाल जिस रास्ते गया हो वो उस ज़माने में बड़ा ख़तरनाक था। गुमान ग़ालिब है कि वो क़ाफ़िले की दूर व दराज़ राह से गया हो जिस रास्ते से आजकल हाजी दमिश्क़ जाते हैं। ये मुनासिब समझा जाता था कि पहले मक्का की ज़ियारत करें और वापसी के वक़्त मदीना की ज़ियारत और हज की रसूम की हिदायात में अल-ग़ज़ाली ने ख़ुद इस का ज़िक्र किया है।

जिस रूह से उसने उन रसूम को अदा किया होगा इस का बयान उस के एक रुहानी मुअल्लिम की तस्नीफ़ से मिलता है, जो उसने अल-ग़ज़ाली के बारे में लिखी। “एक शख़्स जो हाल ही में हज से वापिस आया था वो जन्याद के पास आया। जन्याद ने कहा जिस घंटे से कि तू अपने वतन से हज के लिए रवाना हुआ क्या तूने अपने गुनाहों से भी सफ़र किया और जहां कहीं तूने रात के लिए मुक़ाम किया, क्या तू ने उस मुक़ाम से गुज़र किया जो ख़ुदा की राह में है? उसने जवाब दिया। “नहीं” जन्याद ने कहा “तब तूने मंज़िल ना मंज़िल मुसाफ़त नहीं की। जब तू ने मुनासिब जगह पर हज का लिबास पहना। तो क्या तूने जैसे मेले कपड़ों को उतार डालते हैं इन्सानी फ़ित्रत के कामों को उतार फेंका? “नहीं” तब तूने हाजी का लिबास नहीं पहना। जब तू अराफात पर खड़ा हुआ क्या तू एक लहज़ा (लम्हा) के लिए याद इलाही में भी मसरूफ़ हुआ? “नहीं” तब तू अरफात पर खड़ा नहीं हुआ। जब तू मुज़दलफ़ा को गया और अपनी तमन्ना हासिल की तो क्या तूने अपनी सारी शहवात नफ़्सानी को तर्क क्या? “नहीं” तब तो मुज़दलफ़ा को नहीं गया। जब तू ने काअबा का तवाफ़ किया? तो क्या तूने इस बैत-उल-हराम में ख़ुदा के ग़ैर-मुसावी हुस्न (ऐसा हुस्न जिसके बराबर कोई नहीं) को देखा? “नहीं” तब तूने काअबे का तवाफ़ नहीं किया। जब तू सफ़ा और मर्वा में दौड़ा तो क्या तूने सफ़ा और मुरव्वत हासिल किए? “नहीं” तब तू नहीं दौड़ा। जब तो मिना पर गया, तो क्या तेरी सारी तमन्ना (मना) मौक़ूफ़ (बर्ख़ास्त) हो गई? “नहीं” तब तू मिना में नहीं गया। जब तू मज़बह पर गया और क़ुर्बानियां चढ़ाईं तो क्या तू ने दुनियावी आरज़ू की अश्या को

क़ुर्बान कर दिया? “नहीं” तब तूने क़ुर्बानी नहीं चढ़ाई। जब तूने कंकर फेंके तो क्या तूने अपने सारे शहवानी ख़यालात को फेंक दिया? “नहीं” तब तूने अब तक कंकर नहीं फेंके और तूने अब तक हज अदा नहीं किया।”

सूफ़ियों की तालीम के मुताबिक़ मक्का के हज की रसूम के ये रुहानी मअनी थे। जब अल-ग़ज़ाली ने हज किया तो मक्का का शरीफ़ अबू हाशिम था। (1063 ई॰ से 1094 ई॰ तक) इस से निस्फ़ सदी पेश्तर करमती लोगों ने जो मुसलमानों का बड़ा मुतअस्सिब फ़िर्क़ा है। मक्का का मुहासिरा कर के इस को फ़त्ह कर लिया। हज़ारियों हाजियों को तह तेग़ किया (तल्वार से क़त्ल किया) और मशहूर हज्रे अस्वद को उठा कर बहरीन में ले गए जो ख़लीज-ए-फारिस पर वाक़ेअ है। इस खज़ाने को छीन ले जाने से उनका ये मंशा था (मर्ज़ी थी) हज मौक़ूफ़ हो जाये। (बर्ख़ास्त हो जाए) लेकिन इस में उनको मायूसी हुई।

(950 ई॰) में एक बड़ी रक़म मुआवज़े में लेकर वापिस दे दिया चूँकि ख़ुलफ़ा-ए-बग़दाद और ख़ुलफ़ा-ए-मिस्र के दर्मियान हरमेन की हिफ़ाज़त के बारे में मुतवातिर (लगातार, मुसलसल) झगड़ा रहता था। इसलिए उस की हिफ़ाज़त का ज़िम्मा शरीफ़ मक्का (मक्का के मुअज़्ज़िज़ लोग) के हाथ में दिया गया।

अबू हाशिम ज़माना साज़ शख़्स था। दीन की निस्बत रिश्वत की उस को ज़्यादा परवाह थी। (बक़ौल अरबी मुअर्रिख़ीन) (1070 ई॰) में मिस्र के फ़ातिमी ख़ुलफ़ा के नाम की जगह जुमे के ख़ुत्बा में उसने अब्बासी ख़ुलफ़ा का नाम दर्ज किया और इस के लिए उसे बहुत इनाम मिला। (1075 ई॰) में उसने यही हक़ ख़ुलफ़ा-ए-फ़ातमिया के हाथ फ़रोख़्त कर दिया और (1079 ई॰) में फिर ख़ुलफ़ा-ए-अब्बासिया के हाथ। इस से बग़दाद का सुल्तान ऐसा नाराज़ हुआ कि उसने (1091 ई॰) में तीर कमानों का लश्कर मक्का के मोअज़्ज़िज़ीन के ख़िलाफ़ रवाना किया।

इस मुक़द्दस शहर के मोअर्रिखों ने इस अर्से के बारे में ये बयान किया है कि बदू रहज़नों (राह में लौटने वालों) और ख़ुद मक्का के हंगामों की वजह से इन दिनों में हज बहुत ख़तरनाक था। बाज़-औक़ात ये हंगामे ख़ुद अबू-हाशिम की सरकर्दगी में हुए। चुनान्चे (1094 ई॰) में ऐसा ही हुआ।

जिस वक़्त के अल-ग़ज़ाली वहां गया मक्का की बाअज़ इमारात और ख़ुद बैतुल्लाह की इमारत की मुरम्मत हुई और वो आरास्ता पैरास्ता की गईं। हनफ़ी मुसलमानों के जो चार मुक़ामात सलवात (صلوات) हैं वो 1074 ई॰ में तामीर हुए थे और शाफ़ई फ़िर्क़े का मुक़ाम। जिस फ़िर्क़े से अल-ग़ज़ाली का ताल्लुक़ था वो चाह ज़मज़म के ऐन ऊपर है जिसके लिए ये बाला-ए-ख़ाना का काम देता है। जो इमारत 1072 ई॰ में तामीर हुई वो अब तक खड़ी है। सफ़ैद संग मर-मर का बड़ा मिम्बर सुल्तान मिस्र ने 969 ई॰ में मक्का को भेजा था। अब तक वो इस्तिमाल होता है और शायद अल-ग़ज़ाली ने इन ज़ीनों पर से हाजियों को वाअज़ सुनाया हो। 1030 ई॰ में एक सेलाब शदीद मक्का में आया और काअबे को तक़रीबन तबाह ही कर दिया था। 1040 ई॰ तक इस की मुरम्मत ख़त्म ना हुई।

मक्का व मदीना के हज करने के बाद ऐसा मालूम होता है कि अल-ग़ज़ाली की गोशा-नशीनी ख़त्म हुई। सिवाए इस के कि वो सिकंदरीया और इस से आगे तक गया और शायद उस का इरादा था कि हसपानीया को जाये और मग़रिब के सुल्तान यूसुफ़ बिन तशफ़ीन से मुलाक़ात करे जिसकी हिदायत से उसने चंद शरई फ़तवे सादिर किए थे। लेकिन इस सुल्तान की वफ़ात की ख़बर सुनकर बक़ौल बाअज़ मुअर्रिख़ीन के उस की तजावीज़ दरहम-बरहम हो गईं। बाअज़ कहते हैं कि उस को हुक्म हुआ कि नीशापूर में जा कर दर्स व तदरीस का काम शुरू करे।

इस दस साल की सियाहत की तफ़ासील अक्सर एक दूसरी के नक़ीज़ (मुख़ालिफ़) हैं। अब्दुल ग़फ़ीर ने जो ग़ज़ाली का शख़्सी दोस्त था ये बयान किया है कि वो दुबारा मक्का को गया और वहां से शाम को और फिर दस साल तक जगह-जगह की ज़ियारतों में मसरूफ़ रहा। उस की सवानिह उम्री के बारे में "इक़रारात" के बाद दुवम दर्जा की सनद यही अब्दुल ग़फ़ीर है। उसने ग़ज़ाली के बारे में जो कुछ बयान किया अपनी शख़्सी वाक़फ़ीयत से किया होगा या ख़ुद अल-ग़ज़ाली से सुना होगा। "उस के बयान के मुताबिक़ अल-ग़ज़ाली मक्का के हज को गया और वहां से शाम को और वहां से जगह-जगह की सियाहत और मुक़द्दस जगहों की ज़ियारत दस साल तक करता रहा। इस अर्से में उसने बहुत सी किताबें तस्नीफ़ कीं। मसलन "अहया" और जो किताबें इख़्तिसार के साथ (मुख़्तसर तौर पर) उस से अख़ज़ की गईं। मसलन "अरबईन और रसाइल" इलावा इस मेहनत के जो उसने अपनी रुहानी तरक़्क़ी और सूफ़ी रियाज़त इलाही में की। फिर वो

अपने वतन को वापिस आया और कुछ अर्सा तक तजर्रुद (तन्हाई) की ज़िंदगी बसर की और ज़िक्र इलाही में मुसतग़र्क़ि रहा (ग़र्क़ रहा, डूबा रहा) लेकिन तालीम और रुहानी ज़िंदगी की हिदायत के लिए उस की तलाश ज़्यादा ज़्यादा होने लगी। आख़िरकार फ़ख़्र उल-मुल्क अली बिन निज़ाम-उल-मुल्क जमाल अल-शहदा जो पेश्तर बर्क़ी या रोक का वज़ीर रह चुका था अब बुख़ारा बिन मुल्क शाह का वज़ीर नीशापूर में हो गया और उसने अल-ग़ज़ाली पर ऐसा ज़ोर डाला कि आख़िरकार मज्बूर होकर उसने मैमूना निज़ामीया मदरिसा में तालीम देना मंज़ूर कर लिया।"

मग़रिब में क़ाहिरा इमारात और इल्म व अदब का बड़ा इस्लामी मर्कज़ था। जैसे बग़दाद मशरिक़ में था। लेकिन अल-ग़ज़ाली के वहां जाने का कोई मुफ़स्सिल बयान हमें नहीं मिला और ना उस की तस्नीफ़ में इस का ज़िक्र है। शायद इस की वजह ये हो कि उस ज़माने में अज़हर दार-उल-उलूम के दीनी पेशवाओं ने उसे बहुत इज़्ज़त व क़द्र से क़ुबूल नहीं किया। लेकिन इस की शौहरत उस वक़्त आलमगीर थी और बग़दाद और नीशापूर में उस के बहुत से शागिर्द मिस्र और शुमाली अफ़्रीक़ा से थे। जब अल-ग़ज़ाली क़ाहिरा को गया, उस वक़्त वो शहर अरबी तहज़ीब का बड़ा मर्कज़ था और फ़ातमाई ख़ानदान के ख़ुलफ़ा ने उसे बड़ी शान व शौकत का बना दिया था। ख़लीफ़ा के आलीशान महल इस शहर के वस्त में थे।

तीन बड़े आहनी फाटक (लोहे के फाटक) जिनकी तारीफ़ आज तक होती है। यानी बाब-अल-फ़तुह, बाब अल-अंसर और बाब अल-ज़वीला के रास्ते शहर में दाख़िल होते थे। 1087 ई॰ में फ़सीलों की अज़ सर-ए-नव तामीर हुई और ये हसीन फाटक मए दूसरों के जो अब मौजूद नहीं उस वक़्त तामीर हुए थे। उनकी मेहराबों के गुम्बद दो कमरे होते थे। जहां से मिस्री बादशाह मुख़्तलिफ़ नज़ारों का तमाशा करते थे। मसलन मुक़द्दस क़ालीन की रवानगी और वापसी का।

शहर की अक़्ली और दीनी ज़िंदगी का सदर मुक़ाम अल-ज़हर की जामा मस्जिद थी जो 1012 ई॰ में तक्मील को पहुंची। इस वक़्त तक क़ाहिरा सारे मिस्र का तिजारती मर्कज़ ना था। ये वो बाद में हुआ। लेकिन यहां आलीशान दरबार और जंगी नज़ारा था इलावा उलूम दीनी का मर्कज़ होने के। इब्ने तवीर और दूसरे मुसन्निफ़ों ने यहां के पुर

तकल्लुफ़ जलूसों और तहवारों, बारूद ख़ानों, मख़ज़नों (खज़ाने की जगहों), अस्तबलों और शाही घराने का मुफ़स्सिल दिलचस्प बयान किया है।

सिकंदरीया जहां ग़ज़ाली ने शाम को वापिस जाने से पेश्तर कुछ अर्सा क़ियाम किया इन दिनों इल्मी शौहरत ना रखा था। ये तो सिर्फ तिजारती बंदरगाह था जहां से गुज़र कर मुसाफ़िर मिस्र को (क़ाहिरा) जाते या यहां से समुंद्र की राह शाम को जाया करते थे।

हमदानी ने एक के मुँह में वो अल्फ़ाज़ डाले। जिनका तर्जुमा ये है :-

> "मैं सिकंदरीया का बाशिंदा हूँ वहां के नजीब (भला मानस) और शरीफ़ ख़ानदान से जिनकी उम्रा और लोग अहमक़ हैं। इसलिए मैं अहमक़ को अपना मुरक्कब बनाता हूँ।"

लेकिन इस्लामी रिवायत में सिकंदरीया की बड़ी इज़्ज़त है। मुसलमान वहां दानियाल नबी की क़ब्र बताते हैं और सिकंदर आज़म की क़ब्र जिसका ज़िक्र कुरआन में आया है। सिकंदरीया दो वलीयों के बाइस भी मशहूर है जो वहां गुज़रे। इनमें से एक का नाम मोहम्मद अल-बसीरी है और दूसरे का नाम अबू अब्बास अल-अंदलूसी जिसकी क़ब्र पर अगर दुआ मांगी जाये तो कभी ख़ाली नहीं जाती और ये पेशीनगोई भी है कि जब मक्का कुफ़्फ़ार के हाथ में पड़ेगा तो सिकंदरीया को वो इज़्ज़त हासिल होगी।

सिकंदरीया से अल-ग़ज़ाली दमिश्क़ को गया वहां से नीशापूर को। फिर बग़दाद को, या दमिश्क़ से सीधा बग़दाद को, जहां उसने "अहया" की तालीम दी और वाज़ किए। अल-सबक़ी का बयान है कि :-

> "लोग कस्रत से उस का वाज़ सुनने को जमा होते थे और सामईन में से एक ने उस के वाज़ों के 183 नोट लिए और उनको शाएअ करने से पेश्तर उसने वो अल-ग़ज़ाली को पढ़ कर सुनाए।"

उस ज़माने की उस की ज़िंदगी का एक ये क़िस्सा बयान हुआ है कि एक दफ़ाअ जब वो बग़दाद में "अहया" की तालीम दे रहा था उसने इक़्तिबास करना शुरू किया।

“उसने आदमीयों के वतन को ऐसा अज़ीज़ बनाया है। जैसे तमन्ना का घर जो दिल का मर्ग़ूब (पसंद) है। जब कभी उनको वतन की याद आती है तो उनको लड़कपन के अहदो पैमाँ याद आते हैं और उनका शौक़ अफ़रोज़ होता है।” ये पढ़ कर वो रो पड़ा और सब हाज़िरीन रो पड़े। इस के बाद किसी ने उसे परदेस में देखा कि दरवेशों के से फटे पुराने कपड़े पहने है और पानी पीने का पियाला और लोहे की सम् चढ़ा असा उस के हाथ में था और जिस शान व शौकत में उसने उस को पहले देखा था इस से ये हालत कैसी मुतफ़र्रिक़ थी। जिस वक़्त तीन सौ शागिर्द जिनमें एक सौ बग़दाद के शरिफा में शामिल थे। उस के इर्द-गिर्द बैठे होते थे। सो उस ने कहा “या इमाम क्या साईंस की तालीम ज़्यादा मुनासिब ना थी।” लेकिन अल-ग़ज़ाली ने सुर्ख़ आँखों से उसे देखा और कहा “जब ख़ुशहाली का बद्र (चौधवीं रात का चांद) चांद इरादे के उफ़ुक़ में तुलूअ होता है तो ग़ुरूब का आफ़्ताब वस्ल के मशरिक़ को चला जाता है।” तब उसने ये पढ़ा, मैंने लैला का इश्क़ छोड़ा और मेरी ख़ुशी दूर थी और मैंने अपनी पहली मंज़िल की रिफ़ाक़त फिर हासिल की और मेरी आरज़ूओं ने ये आवाज़ मेरे कान में डाली “ख़ुश-आमदीद ये उस की मंज़िल है जिससे तू इश्क़ रखता है। अस्बाब (सामान) उतार और उतर कर यहां मुक़ाम कर (रिहाइश) कर।”

उस के तारिक-ऊद-दुनिया (दुनिया छोड़ने) होने और सियाहत के दस साल के अर्से में उस को जो रुहानी तजुर्बात हुए और माबाअ्द सालों में जब वो दूसरों को तसव्वुफ़ की तालीम दिया करता था उनका ज़िक्र हम बाद में करेंगे।

हम जानते हैं कि वो बग़दाद से रवाना हो कर अपने वतन तूस को वापिस गया और वहां वो मुतालआ और ग़ौर व ख़ौज़ में मसरूफ़ रहा। ये अजीब बात है कि उस की ज़िंदगी के इस अर्से में अहादीस के मुताले ख़ासकर बुख़ारी और मुस्लिम के मुताले से उस को आला दर्जा की ख़ुशी हासिल हुई। उस की सवानिह उम्री लिखने वाले सब के सब इस पर मुत्तफ़िक़ हैं। उस वक़्त उस के सपुर्द एक मदरिसा और सूफ़ियों की एक ख़ानक़ाह थी। हर लहज़ा (हर लम्हा) मुतालआ और इबादत में गुज़रा। आख़िरकार पच्चीस साल की (क़मरी शुमार के मुताबिक़) में उसने वफ़ात पाई।

इस सियाहत के अर्से में रियाज़त और इफ़्लास (ग़रीबी) ने उस की क़ुव्वत ज़ाइल कर दी। जिसको दीनी उमूर में ऐसा आला रुत्बा हासिल हुआ हो। जिसने अपने

मुख़ालिफ़ों के साथ बहस करने में ऐसा बड़ा हिस्सा लिया हो उस से लोगों को हसद और कीना और बुग्ज़ भी बहुत होगा और उन्हों ने उस से इंतिक़ाम लेने की कोशिश की होगी। बक़ौल मेकडोनल्ड साहब शायद यही वजह थी कि वो नीशापूर को छोड़कर तूस चला गया। जो लोग उस की तालीम के मुख़ालिफ़ और उस के रसूख़ पर रश्क खाते थे। उनसे जो सुलूक ग़ज़ाली ने किया इस का ज़िक्र उस के दोस्त ने किया है।

> "ख़्वाह उस की मुख़ालिफ़त हजव (बदगोई) और उस पर हमले कस्रत से हुए लेकिन इस का उस पर कुछ असर ना हुआ और उन के हमलों का जवाब देने की कुछ परवाह ना की। मैं उस के मिलने को कई बार गया और यह मेरा महज़ क़ियास ही नहीं कि बावजूद इस के जो मैंने उस की ज़िंदगी में पेश्तर मुशाहिदा किया था कि वो लोगों से कैसा हसद रखता और दुरुश्ती (सख़्ती) से कलाम करता था और जो कुछ ख़ुदा ने उसे कलाम व ख़याल व बलाग़त (हसब मौक़ा गुफ़्तगु) की बरकत दी थी इस की वजह से वो दूसरों को नज़र हिक़ारत से देखा करता था। इस रुतबे और ओहदे की तलाश में दूसरों को ख़ातिर में ना लाता था। अब वो बिल्कुल उस के बरअक्स था और उन सारे दाग़ों से पाक गया था और मैं पहले तो ये ख़याल करने लगा कि ये उस का बहाना था लेकिन तहक़ीक़ात से मुझ पर साबित हो गया कि ये तो मेरे क़ियास के बिल्कुल ख़िलाफ़ वाक़िया था और सौदा होने के बाद अब वो नौ बर नौ (नया नया) हो गया था।"

ग़ज़ाली ने 14 जमादी अल-सानी (505 हिज्री, बमुताबिक़ 18, दिसंबर 1111 ई॰) पीर के रोज़ वफ़ात पाई। इस के भाई अहमद ने जिसका हवाला मुर्तज़ा ने इब्ने जोज़ी की किताब बनाम "किताब-उल-साबित इंदल-मामित" से दिया है। उस की वफ़ात का ये बयान दिया है।

> "पीर के रोज़ अलस्सबाह (सुबह सुबह) मेरे भाई ने वुज़ू कर के नमाज़ अदा की। तब उसने कहा, मेरा कफ़न लाओ और इसने उस को लेकर चूमा और अपनी आँखों पर रखकर कहा, मैं

सुनता हूँ और हुक्म मान कर अपने बादशाह के पास जाता हूँ। इस के बाद उसने मक्का की तरफ़ अपने पांव फैलाए और रज़ाए इलाही को क़ुबूल किया। तूस के क़िला तबरान में या उस के बाहर दफ़न हुआ और इब्ने उस्मानी ने उस की क़ब्र की ज़ियारत की।"

माबाअ्द (उस के बाद) मोअर्रिखों को उस की वफ़ात के ख़ाली बयानात से तश्फ़ी ना हुई। मुर्तज़ा ने बहुत दिलचस्प क़िस्सा बयान किया है। "इमाम अबू हमीद अल-ग़ज़ाली की वफ़ात का वक़्त क़रीब पहुंचा। तो उसने अपने ख़ादिम को जो बहुत उम्दा और दीनदार शख़्स था। हुक्म दिया कि उस के घर के वस्त में उस के लिए क़ब्र खोदे और क़ुर्ब व जवार (दूर व नज़्दीक) के दिहात के लोगों को उस के जनाज़े के लिए बुलाए कि कोई उस की लाश को ना छूए। इराक़ के इलाक़े के तीन नामालूम अश्ख़ास ब्याबान से आएँगे। उनमें से दो उस की मय्यत को ग़ुस्ल देंगे और तीसरा बिला किसी के हुक्म या इशारे के नमाज़ जनाज़ा पड़ेगा। उस की वफ़ात के बाद उस के ख़ादिम ने अपने आक़ा के हुक्म के मुताबिक़ अमल किया और लोगों को बुलाया और जब लोग जनाज़े के लिए जमा थे तो उन्होंने तीन अश्ख़ास को ब्याबान से आते देखा। उनमें से दो मय्यत को ग़ुस्ल देने लगे और तीसरा ग़ायब हो गया और दिखाई ना दिया लेकिन जब वो ग़ुस्ल दे चुके और कफ़न पहना चुके और उस की लाश को उठा कर क़ब्र तक ले गए तो तीसरा शख़्स जुब्बा (चोग़ा) पहने जिस का किनारा दोनों तरफ़ से स्याह था और ऊनी पगड़ी पहने था ज़ाहिर हुआ उसने नमाज़ जनाज़ा पढ़ी और लोगों ने उस के पीछे। फिर उसने बरकत का कलिमा कहा और चला गया और लोगों की नज़रों से ग़ायब हो गया और अहले-इराक़ के बाअज़ शरिफा (शरीफ़ लोगों) ने जो जनाज़े के वक़्त हाज़िर थे उस को ख़ूब गौर से देखा। लेकिन उस को ना पहचाना हत्ता कि रात के वक़्त हातिफ़ ने ये आवाज़ दी "जिस शख़्स ने नमाज़ जनाज़ा पढ़ी वो अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन इस्हाक़ अस्फ़र शरीफ़ है। वो बईद मग़रिब ऐन अल-क़तर से आया और जिन्हों ने मय्यत को ग़ुस्ल दिया वो उस के रफ़ीक़ अबू शुऐब अय्यूब बिन सईद और अबू ईसा वजिया थे और जब उन्होंने ये सुना कि वो इराक़ से सफ़र कर के मग़रिब बईद के संजा को गए और जब वो उनके पास गए और उनसे दुआ की दरख़्वास्त की तो वो वापिस आए और सूफ़ियों से इस का बयान किया और इस करामात को मशहूर किया। फिर उनके एक गिरोह ने जब ये बात सुनी तो वो उनको देखने गए और उन्होंने मालूम किया कि ये वही

शख़्स थे जिनको उन्होंने ख़ूब ग़ौर से देखा था और उनसे दुआओं की दरख़्वास्त की और ये अजीब क़िस्सा है।"

फ़ारसी सूफ़ियों की किताबों में ऐसा ही एक अजीब क़िस्सा अल-ग़ज़ाली के छोटे भाई की वफ़ात के बारे में बयान हुआ है। जिन शेरों में इस का बयान है वो अल-ग़ज़ाली पर और ज़िंदगी और मौत के बारे में जो उस की राय थी उस पर भी सादिक़ आ सकता है। "कादरी रिवायत की सनद पर मुग़ीस ने बयान किया है कि किसी तरह अहमद अल-ग़ज़ाली तूस वाक़ेअ फ़ारस के बाशिंदे ने एक दिन अपने शागिर्दों से कहा "जाओ मेरे लिए नया सफ़ैद कपड़ा लाओ।" वो गए और अश्या-ए-मतलूबा लाए और आन कर अपने उस्ताद को मरा हुआ पाया। उस के पास एक काग़ज़ पड़ा था जिस पर ये शेअर लिखे थे जिनका तर्जुमा ये है :-

> "मेरे दोस्तों से कहो जो मुझे मुर्दा देखकर मेरे मरने पर कुछ देर तक गिर्ये व मातम (रोना धोना) करेंगे जो लाश तुम्हारे सामने पड़ी है वो मैं नहीं हूँ वो लाश तो मेरी है पर वो मैं नहीं। मेरी ज़िंदगी तो ग़ैर-फ़ानी है और ये मेरा बदन नहीं। बहुत सालों तक ये मेरा घर था और बदलने का मेरा कपड़ा। मैं तो परिंद (परिंदा) हूँ और ये मेरा क़फ़स (पिंजरा) था मैं तो परवाज़ कर के किसी और जगह चला गया और मेरी ये निशानी बाक़ी रही। मैं तो गौहर (क़ीमती) मोती हूँ। ये मेरा सदफ़ (सीप) है। मैं इसे तोड़ कर निकल गया और ये निकम्मा छिलका बाक़ी है। मैं तो ख़ज़ाना हूँ और ये तिलिस्म है। ये मुझ पर रखा हुआ था। हत्ता कि ख़ज़ाना को फ़िल-हक़ीक़त रिहाई हुई। ख़ुदा का शुक्र हो जिसने मुझे मख़लिसी दी और आलम-ए-बाला में मुझे अबदी मकान बख़्शा अब मैं वहां हूँ जहां ख़ुशहालों (अच्छे हाल वालों) से मेरा बोल-चाल है। जहां मैं ख़ुदा का चेहरा बे-नक़ाब देखा करता हूँ और शीशे पर ग़ौर करता हूँ जिसमें सब कुछ नज़र आता है माज़ी और हाल और इस्तिक़बाल। अकल (अकेला, तन्हा) व शर्ब (पीने की चीज़) भी मेरे हैं फिर भी वो एक हैं। जो जानने के क़ाबिल है वह इस राज़ को समझता है और जो शराब मैं पीता हूँ वो शिरीं

> ज़ायक़ा शराब नहीं ना ये पानी है, बल्कि माँ का ख़ालिस दूध है। मेरे मअनी ठीक तौर से समझो क्योंकि ये राज़ निशान और इस्तिआरे के अल्फ़ाज़ में बयान हुआ है। मैं तो सफ़र में आगे निकल गया और तुमको पीछे छोड़ गया। मैं तुम्हारे मुक़ाम की मंज़िल को अपना मस्कन कैसे बनाऊँ मेरे घर को बर्बाद करो और मेरे पिंजरे को टुकड़े टुकड़े और सदफ़ मए दीगर सराबों को नेस्त होने दो। मेरे लिबास को फाड़ो व इस निक़ाब को जो एक वक़्त मुझ पर पड़ा था इन सबको दफ़न कर दो और इनको छोड़ो क्योंकि मैं जाता हूँ मौत को मौत ना समझो बल्कि ये फ़िल-हक़ीक़त ज़िंदगी की ज़िंदगी और हमारी सारी आरज़ुओं का मक़्सद है उस ख़ुदा का ख़याल मुहब्बत से करो जिसका नाम मुहब्बत है जो जज़ा देने में ख़ुश होता है और ख़ौफ़ से महफ़ूज़ रखता है। जहां मैं हूँ वहां से मैं तुम ग़ैर-फ़ानी रूहों को अपनी तरह देखता हूँ और मैं जानता हूँ कि तुम्हारा और मेरा दोनों का अंजाम एक ही है।"

तूस के खन्डरात और अल-ग़ज़ाली की जो क़ब्र बताई जाती है उनके फ़ोटो के लिए हम पादरी डवाइट। ऐम॰ डोनल्ड सन साकिन मशहद वाक़ेअ फ़ारस के मशकूर हैं। ये मस्जिद बहुत क़दीम है। शायद ग़ज़ाली के ज़माने की है और तस्वीर में जो क़ब्र नज़र आती है वो शायद इमाम ग़ज़ाली सूफ़ी की ना हो, बल्कि किसी दूसरे ग़ज़ाली की हो। क्योंकि अल-सबक़ी (जिल्द सोम, सफ़ा 36) का बयान है कि :-

> "एक शख़्स बनाम अहमद बिन मुहम्मद अबू हमीद अल-ग़ज़ाली कलां था और इस से पहले था।"

वो कहता है कि लोगों ने उस की ऐन हस्ती पर ही शक डाला है। लेकिन बहुत दर्याफ़्त के बाद इस आदमी का ज़िक्र कई किताबों में पाया गया मसलन किताब "अला-अंसब तस्नीफ़ इब्ने अल-समअनी" में। उसने ये भी बयान किया कि :-

> "ये शख़्स भी खुरासान में रहा करता था और अपने इल्म के बाइस मशहूर था। इल्म इलाही के मसाइल पर उसने बाअज़

> रिसाले लिखे तूस में दफ़न हुआ जहां उस की क़ब्र मशहूर थी और इस की वजह से इस को ग़ज़ाली कलां कहा करते थे और अपनी दुआओं का जवाब हासिल करने के लिए इस क़ब्र पर जाया करते थे।"

इस के ख़याल में ये ग़ज़ाली इमाम ग़ज़ाली का चचा था या उस के दादा का भाई। जिसकी सवानिह उम्री हमने लिखी। अल-सबक़ी के इस बयान से ये नतीजा भी निकलता है कि अल-ग़ज़ाली को ये नाम इसलिए नहीं दिया गया था कि उस का बाप ऊन बुनने वाला था। ग़ालिबन ये क़दीम ख़ानदानी नाम था।

मिस्टर डोनल्ड सन ने ये दिलचस्प हाल लिखा :-

> "तूस के क़दीम शहर की फ़सीलें अब तक मौजूद हैं उनका अहाता एक फ़र्सग या साढे तीन मील है। बुर्जों के बहुत खन्डरात और नौ मुक़ामात में फाटकों के निशान बाक़ी हैं। इस निहायत वसीअ क़ब्रिस्तान में अहमद ग़ज़ाली की क़ब्र का पत्थर उन तक नज़र आता है। ये क़ब्रिस्तान शहर के जुनूब मग़रिब में वाक़ेअ है और इस का बड़ा हिस्सा इन ज़ेर काश्त आ गया है और वो आख़िरी हिस्सा जो नाला से परे ऊंची ज़मीन पर है वो अब तक क़ब्रिस्तान है।"

अल-ग़ज़ाली की कब्र की तस्वीर मेरी हस्ब-ए-मंशा नहीं। इस तस्वीर में ये दिखाया गया है कि क़ब्र के कोने से एक बड़ा टुकड़ा कट गया है। वो पत्थर तक़रीबन दो गज़ लंबा है और एक फुट चौड़ा और एक फुट ऊंचा है। इस अम्र के साफ़ निशान पाए जाते हैं कि जिस हिस्से पर अहमद ग़ज़ाली का नाम लिखा था उस को कोशिश कर के किसी ने काटा। तस्वीर में यही कटा हिस्सा नज़र आता है। जिस जगह से ये कटा टुकड़ा शुरू होता है वहां से एक ख़त-ए-मुस्तक़ीम एक इंच गहिरा खुदा हुआ दिखाई देता है। ये ख़त पत्थर के ऊपर के हिस्से में है।

जो सड़क जुनूब मग़रिबी फाटक से शहर में हो कर गुज़रती है। उस पर इस क़दीम मस्जिद के खन्डरात नज़र आते हैं और इस बर्बाद शूदा हालत में भी उस के शान

व शौकत की झलक पड़ती है। ये अठारह गज़ बुलंद है और उस की अंदरूनी पैमाइश से पता लगता है कि एक मुरब्बा कुर्सी पाँच गज़ बुलंद है और फिर एक मुसम्मन (हश्त पहलू, आठ पहलू) इमारत आठ गज़ बुलंद है। (तस्वीर को देखो)।

जुनूब मग़रिबी फाटक के बाहर की तरफ़ एक क़दीम पुल है जो आज तक मुस्तअमल है। (इस्तिमाल में) क्योंकि मशहद से क़ाफ़िले तूस के क़दीम शहर में से हो कर गुज़रते हैं इस पुल की आठ मेहराबें हैं और हर एक मेहराब साढे चार गज़ चौड़ी है। इस नदी का नाम कश्फ़ रूद है।

"क़िला भी दिलचस्प है। ये एक ख़ंदक़ और फ़सील से मुहीत है। इस फ़सील के अंदर एक वसीअ सिहन है और इस से अंदरूनी क़िले की राह जाती है। ज़माना-ए-हाल में हम इस फ़सील के गर्द चल कर अक़ब की राह से क़िले के अंदर जा सकते हैं। इस सिहन में आजकल तरबूज़ बोए जाते हैं और हमने फ़ारस भर में ऐसे उम्दा तरबूज़ नहीं खाए। इस क़िले के चारों कोनों के अज़ीम खन्डरात अब तक बाक़ी हैं। इस चार दीवारी के अंदर ईंटों के ढेर में मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े हमको मिले।"

मशहद वाक़ेअ फ़ारस से जो दूसरा ख़त (17 जनवरी 1917 ई॰) में पादरी डवाइट, ऐम॰ डोनल्ड सन ने लिखा उस में ये ज़िक्र किया :-

> "इस हफ़्ते मैं फिर तूस को गया और ग़ज़ाली की क़ब्र के पत्थर को बड़ी एहतियात से इम्तिहान किया। जैसा मैंने पेश्तर लिखा ये पत्थर बहुत घिस किया है और इलावा इस के इस का कुछ हिस्सा शिकस्त हो चुका है। पहले जो ये शक था कि आया ये फ़ोटो मुहम्मद अल-ग़ज़ाली की क़ब्र की है या दूसरे अहमद अल-ग़ज़ाली की। अब वो शक नहीं रहा और मैं यक़ीन से कह सकता हूँ कि ये क़ब्र अबू हमीद इब्ने मुहम्मद इब्ने मुहम्मद इब्ने मुहम्मद अल-ग़ज़ाली की है। क्योंकि अब हम पत्थर की चोटी के कोने पर सफ़ाई से पढ़ सकते हैं। किसी ने अय्याम गुज़श्ता में इस सिरे के काटने की कोशिश की। यानी इमाम ग़ज़ाली और बो हा के काटने की और पत्थर को ग़ौर से देखने से तक़रीबन सफाई से ये नाम पढ़ा जाता है सिवाए शुरू के हर्फ़

> अलिफ़ के इस में कुछ शक नहीं कि सारा पत्थर घिसा हुआ है और जिस लफ़्ज़ को मेरे मिर्ज़ा ने पहली दफ़ाअ अहमद पढ़ा। वो यक़ीनन अहमद तो नहीं। लेकिन हम ये नहीं कह सकते कि क्या है। इस नुक़्सान की तलाफ़ी नहीं हो सकती। ये भी क़ाबिल-ए-ग़ौर है कि पत्थर के इस कुतबे पर अल-ग़ज़ाली के लहजे तश्दीद के साथ हुए लेकिन जिसको हम तश्दीद पढ़ते हैं वो उस की मामूली सूरत नहीं। (लाज़िमा)"

इस तहक़ीक़ात से दो बातों का तो फ़ैसला हो जाता है कि तूस में इस बड़े बुज़ुर्ग सूफ़ी और आलिम इलाहिय्यात अल-ग़ज़ाली की क़ब्र पर ज़ तश्दीद साथ है। लेकिन आम रिवाज के और ख़ुद मुसलमान मुसन्निफ़ों के लिहाज़ से हमने ज़ तश्दीद के साथ नहीं लिखा।

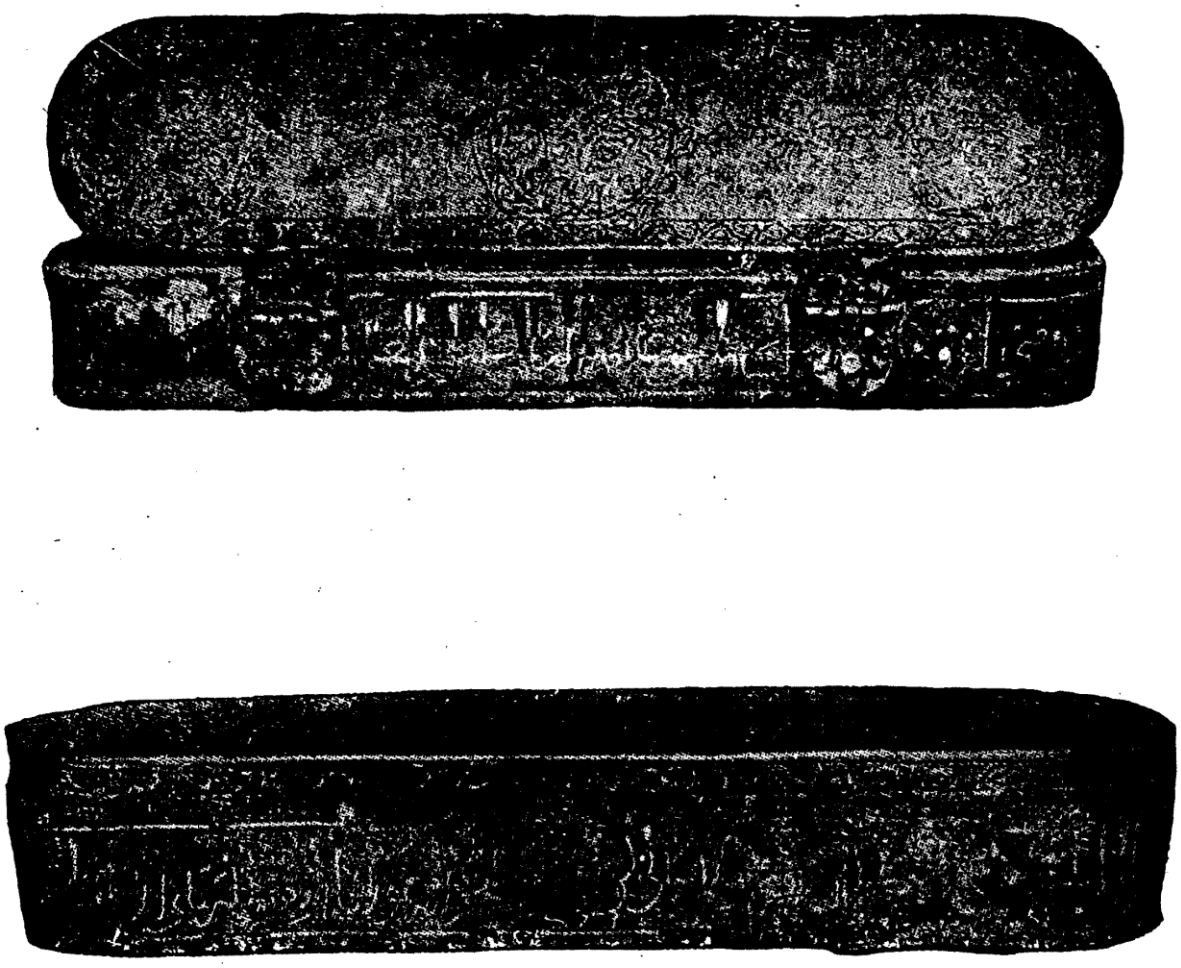

مقلة لاغزالى محفوظة بدار التحف العربية بالقاهرة

मक़लतुल ग़ज़ाली महफ़ूज़ बदार-उल-तहफ़ अल-अरीबा बालकाहर

बाब पंजुम

बाब पन्जुम

उस की तस्नीफ़ात

अल-ग़ज़ाली का इतना हाल उस की सवानिह उम्री से ज़ाहिर नहीं होता जितना उस की तस्नीफ़ात से मालूम होता है। इस के मोअर्रिखों ने जो सादा वाक़ियात का और उस के नाम के हजूँ का बयान लिखा है इस पर तकरार होता रहा है जैसा कि हम पेश्तर ज़िक्र कर चुके हैं। मगर उस की क़लम से इतनी किताबें निकलीं कि अब तक उनमें से बाअज़ को शाएअ होने का मौक़ा भी नहीं मिला और सिर्फ क़लमी नुस्खे और मुसव्वदे पड़े हैं। मुसलमान मोअर्रिखों ने उस की तस्नीफ़ात की तादाद निनान्वें बताई है और बुराकिल मीन ने अपनी किताब (History of Arabic Literature) में उनका शुमार उनहत्तर (69) दिया है जो अब तक मौजूद हैं। ये तस्नीफ़ात इल्म इलाहयात, अहवाल अल-आख़िरत, इल्म-ए-फ़ल्सफ़ा पर और बाअज़ रिसाले तसव्वुफ़, अख़्लाक़ और शरीअत पर हैं।

बाज़ों ने अल-ग़ज़ाली को सब मुसलमान मुसन्निफ़ों पर फ़ौक़ दिया (बढ़ा कर) पेश किया है। इस्माईल इब्ने मुहम्मद अल-हज़रि का बयान है :-

> "मुहम्मद इब्ने अब्दुल्लाह सरवर अम्बिया था। मुहम्मद इब्ने इदरीस अल-शाफ़ई सरवर अमान था। लेकिन मुहम्मद इब्ने मुहम्मद इब्ने मुहम्मद अल-ग़ज़ाली सरवर मुसन्निफ़ीन था।"

हमने जो तस्वीर दी है उस से ज़ाहिर है कि अपने ज़माने ही में बहैसीयत मुसन्निफ़ के उस का दर्जा कैसा बड़ा था। मिस्र के अरबी अजाइब घर में एक मुक़लमा (क़लम-दान) है जो अल-ग़ज़ाली का था। ऐम॰ कीटैक्स (M.Kyticas) ने ये तोहफ़ा अजाइब घर की नज़र किया। ये पीतल का बना है और उस पर चांदी का पानी चढ़ा हुआ है। उस पर ये कुतबा लिखा है :-

> "हमारे उस्ताद। निहायत अज़ीमुश्शान इमाम हमारे मुअज़्ज़िज़ पेशवा, सदाक़त तर्जुमान। अल्लामा अस्र। सुल्तान इला

क्लीन। सब ज़िंदों की पनाह रास्ती का मख़ज़न। अपने हम-अस्रों में शहरा आफ़ाक़। फ़रोग़ देन। हुज्जत इल्ला सलाम। मुहम्मद अल-ग़ज़ाली के लिए बनाया गया।"

दमिश्क़ बिरनजी सनअत का ये सबसे क़दीम बक़ीया है और उस ज़माने के नुस्खे किताबत का वाहिद नमूना है। जो इस अजाइब घर में पाया जाता है। ये तो साबित है कि ग़ज़ाली की वफ़ात के बाद ये ना बताया गया था कि कुतुब ख़ाने की नज़र किया जाये क्योंकि दस्तूर ये था कि कुतुब ख़ाने को कोई किताब या आस्मानी कर्राह नज़र दिया जाता था ना क़लम-दान, या दवात और लफ़्ज़ "अल-मरहूम" (बमाअनी मुतवफ़्फ़ी) इस पर नहीं लिखा जैसा कि दूसरी अश्या पर जो मुतवफ़्फ़ी शख़्स की यादगार में नज़र की जाती हैं ये लफ़्ज़ "मरहूम" लिखा होता है। पीतल के असली होने पर ये एतराज़ हुआ है कि उस पर चांदी का पानी फिरा हुआ है जो सूफ़ी आलिम के इस्तिमाल की शैय नहीं हो सकती जिसने इफ़्लास (ग़रीबी) और फ़क़ीराना ज़िंदगी बसर करने का अहद किया हो। लेकिन इस एतराज़ का ये जवाब हो सकता है कि ख़ुद अल-ग़ज़ाली ने ऐसा क़लम-दान ना बनवाया था लेकिन उस के शागिर्दों ने उस की ख़ुशनुदी मिज़ाज और इनायत हासिल करने के लिए।

इलावा अज़ीं (इस के इलावा) ये ताज्जुब की बात नहीं कि जो कुतबा इस पर कनुंदा है वो संजीदगी से मुअर्रा (पाक) है। उस के ज़माने के दूसरे कामों से मुक़ाबला कर के ये कह सकते हैं कि ख़ुद अल-ग़ज़ाली ने ये कुतबा लिखवाया हो। अल-ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात और उस की जिन किताबों का तर्जुमा दीगर ज़बानों में हुआ ख़ासकर इब्रानी, लातीनी, फ़्रांसीसी, जर्मनी और अंग्रेज़ी में उनकी पूरी फ़हरिस्त ततिम्मा (ज़मीमा, ख़ातिमा, किताब का वो ज़ाइद हिस्सा जो अख़ीर में लगा देते हैं) में दी गई है। उस की ज़्यादा मशहूर किताबों का ज़िक्र करने से पेश्तर उनका ख़ुलासा देना नाज़रीन के लिए ख़ाली अज़ लुत्फ़ ना होगा।

"जवाहर अल-क़ुरआन" क़ुरआन की उन चंद आयात की तशरीह है जो ख़ास क़द्र रखती हैं। किताब "अक़ीदे में मुसलमानी" ईमान के मसाइल का बयान है और पाकाक (Pococke) ने अपनी किताब (Specimen) में इस को शाएअ किया। "अल-दरात अल फ़ाखिरा" (الدرات آل فاخرہ) रोज़ अदालत और दुनिया के आख़िर के बयान में है और

तसव्वुफ़ के अख़्लाक़ और इलाहयात का बयान "अहया-उल-उलूम उद्दीन" (احیاالعلوم الدین) में पाया जाता है। "मीज़ान अल-आमाल" का तर्जुमा इब्रानी में बरसलोना के इब्राहिम बिन हसदी ने किया और गोल्डन थल (Goldenthal) ने इसे शाएअ किया। "कीमया-ए-सआदत" (کیمیائے سعادت) तसव्वुफ़ के बारे में एक मशहूर लैक्चर है। ये किताब पहले-पहल फ़ारसी में लिखी गई और दो दफ़ाअ (1873 ई॰) में इस का तर्जुमा अंग्रेज़ी में हुआ और फिर हाल ही में क्लॉड फ़ील्ड (Claud field) ने फिर इस का तर्जुमा अंग्रेज़ी में किया। "अहवाल अल-वलद" (احوال الولد) एक मशहूर अख़्लाक़ी रिसाला जिसका जर्मन में तर्जुमा हो चुका है। फ़िक़्ह पर जो किताबें उसने लिखीं इनमें वो रिसाले मशहूर हैं जो "शाफ़ई शरीअत" पर हैं। "बसीत वसीत" (بسیط۔وسیط) वजज़ इन का ख़ुलासा हैं। फ़लसफ़े में "तौहफतुल फ़ल्सफ़ा" (تحفتہ الفلسفہ) यूनानी फ़ल्सफ़ा मानने वालों पर हमला है। "मक़्सद अल-फ़ल्सफ़ा" (مقصد الفلسفہ) मुक़द्दम-उल-ज़िक्र किताब का दीबाचा है। इस का लातीनी तर्जुमा जो (1506 ई॰) में शाएअ हुआ था अब तक मौजूद है। "अल-मनक़दह मिन अल-ज़लल" (المنقدح من الضلل) उस वक़्त लिखी गई जब ग़ज़ाली ने नीशापूर में दूसरी दफ़ाअ दर्स व तदरीस का काम शुरू किया इस में उसने अपने फ़ल्सफ़े का बयान किया। हाल ही में इस का तर्जुमा शाएअ हुआ बनाम...(The Confession of Alghazali) ये उस की सबसे मुख़्तसर और मशहूर किताब है जो "मुक़द्दस आगस्तीन के इक़रारात" या जान बैनीन... (John Bannyons) की किताब (Grace Abounding to the Chief of Sinners) की किताब के मुशाबेह है। ग़ज़ाली के बाअज़ रिसाले बहुत ही मुख़्तसर हैं वो बतौर ख़त या रिसाले के हैं।

उस की मुख़्तसर किताबों में से मुफ़स्सला-ए-ज़ैल का ज़िक्र होगा :-

"अल-अदब फ़ीद्दीन" (الادب فی الدین) अदब आदाब के बारे में जिसे उसने अपने शागिर्दों के लिए लिखा। उस में कामिल शागिर्द, कामिल उस्ताद का अक्ल व शर्ब निकाह और दीनी ज़िंदगी का बयान है एक और छोटी किताब बनाम "एवह अल-वलद" (ایوہ الولد ऐ बच्चे) है जिसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है। इस में उसने ईमान और आमाल की तारीफ़ की है और उनमें इम्तियाज़ किया है दीबाचे में एक अजीब सी इबारत आई है जिससे ग़ज़ाली की सदाक़त पर कुछ शक पड़ता है या कम अज़ कम ये सवाल पैदा होता है कि उसने

किस "इन्जील" की तरफ़ इशारा किया। चुनान्चे उस का बयान है "ऐ मेरे बच्चे जैसा तू चाहे वैसे ज़िंदगी बसर कर क्योंकि तू तो मुर्दा है जिस को चाहे प्यार कर क्योंकि जुदाई अटल है और जो चाहे कर क्योंकि इस के लिए ज़रूर तुझे हिसाब देना पड़ेगा। फ़िल-हक़ीक़त मैंने ईसा (सलातो अस्सलाम अलैहि) की इन्जील में देखा कि उस (ईसा) ने कहा जिस साअत से (लम्हा से, वक़्त से) कि लाश चारपाई पर रखी जाती है उस वक़्त तक कि वो क़ब्र के किनारे रखी जाये ख़ुदा उस से चालीस सवाल पूछेगा, जिनमें से पहला सवाल ये होगा, ऐ मेरे ख़ादिम तू ने आदमीयों के सामने जाने के लिए बहुत सालों तक अपने तईं पाक-साफ़ किया। लेकिन मेरे दरवाज़ों पर हाज़िर होने के लिए एक घंटे के लिए अपने तईं साफ़ नहीं किया और हर रोज़ ये आवाज़ तेरे कानों में डाली जाती थी। जो कुछ तुम दूसरों के लिए करते हो क्यों तुम मेरे लिए नहीं करते जो तुम्हें रहमत से अहाता किए हुए थे लेकिन तुम बहरे बने रहे और सुनने पर राज़ी ना थे।

इस की किताब "कीमया-ए-सआदत" (کیمیائے سعادت) में एक मशहूर बाब दरबारा "अपने तईं जान" है। आदमी की रूह और उस के दुश्मनों के बारे में जो इस का मुहासिरा किए हैं एक तम्सील आई है जो बैनीन की किताब "जंग मुक़द्दस" से मुशाबेह है। जहां तक मुझे मालूम है उस की सबसे छोटी किताब "अल-क़वाइद-अल-शराह" (दस मसाइल) है। ये कई बार शाएअ हो चुकी है। इस में ईमान और अमल के दस उसूलों का ज़िक्र है और मामूली ख़त की तवालत (ख़त की लंबाई, ख़त के बड़े होने) से क़दरे बड़ी है। इसी क़िस्म की दूसरी किताब "रसालत-उल-तीर" (رسالۃ الطیر) है (परिंदों की तम्सील) उस का मशहूर रिसाला अख़्लाक़ और अमल के बारे में "मीज़ान-उल-अमल" (میزان العمل) के नाम से मौसूम है। <u>ये वाइज़ की किताब या अम्साल की किताब के पहले अबवाब की मानिंद है।</u> दीबाचे में अल-ग़ज़ाली ने उन लोगों की हमाक़त को फ़ाश (हमाक़त को ज़ाहिर किया) किया जो अपनी ग़ैर-फ़ानी रूहों की ख़ुशहाली से और उन लोगों की ख़तरनाक हालत से ग़ाफ़िल रहते हैं जो आक़िबत (आख़िरत) पर ईमान रखने को नज़र हिक़ारत से देखते हैं। ख़ुशहाली का सही तरीक़ा हक़ के जानने और करने पर मुश्तमिल है। रूह एक फ़र्द है और इस के मुख़्तलिफ़ क़वा (قویٰ) बाहम वाबस्ता और पैवस्ता हैं। तसव्वुफ़ का तरीक़ा सही ईमान को सही अमल से वाबस्ता करता है। उसने ये भी ज़िक्र किया है कि दीनी इबादत के ज़रीये सीरत का बदलना मुम्किन है और उन नेकियों का उसने ज़िक्र किया

जिनको अमल में लाना चाहिए और उन बदीयों का जिनको ख़ुदा की तरफ़ और ख़ुशहाली की तरफ़ जाने में तर्क करना चाहिए।

ज़िंदगी के कोताह होने और अबदीयत की एहमीय्यत पर ज़ोर देने के लिए अल-ग़ज़ाली ने ये कहा "फ़र्ज़ करो कि कुल जहान ख़ाक से भरा है और एक छोटा परिंदा हर हज़ार साल में एक दफ़ाअ इस ख़ाक का एक ज़र्रा उठा ले जाता है। हम जानते हैं कि इस परिंदे का काम भी ख़त्म हो जाएगा। लेकिन अबदीयत में कुछ फ़र्क़ पैदा ना होगा। इस का कोई अंजाम नहीं।" अगरचे इस किताब की तालीम बहुत उम्दा है। लेकिन फिर भी इस का हसर (मुहासिरा) इस उसूल पर है कि नजात बज़रीये आमाल है। दिल की नई पैदाइश के ज़रीये सीरत के मुबद्दल (तब्दील) होने के इम्कान का कुछ ज़िक्र नहीं। ना वो रास्ता बताया गया जिसके ज़रीये ऐसी क़ुव्वत हासिल हो कि आज़माईश पर फ़त्ह पा कर मुज़फ्फ़राना (फ़त्हमंद) ज़िंदगी बसर करें।

उस की सारी तसानीफ़ में सबसे मशहूर किताब "अहया-उल-उलूम उद्दीन" (احیاالعلوم الدین) है। इस्लामी तालीम व अख़्लाक़ का मुफ़स्सिल बयान इस में आया है और कुल इस्लामी ख़याल पर हावी है। इस किताब की इशाअत कई बार हो चुकी है और कई तफ़्सीरें इस की लिखी गई हैं। इनमें से मशहूर तफ़्सीर मुहम्मद अल-ज़ुबेदी अल-मुर्तज़ा की तस्नीफ़ है ये किताब चार जिल्दों में है और हर एक जिल्द में दस-दस किताबें हैं और कुल एक हज़ार ग़नजान सफ़े होंगे। अगरचे आम तौर पर अस्ल ज़बान में ये किताब पढ़ी जाती है फिर भी इस के कई खुलासे छप चुके हैं। इन इख्तिसारों में से एक का नाम "वाइज़-उल-मोमिनीन" (واعظ المومنین) है जिसे मुहम्मद जमाल-उद्दीन दमिश्की ने तालीफ़ किया और अमरीकन मिशन क़ाहिरा के डोंटी स्कूल में पढ़ाई जाती है।

असली किताब के पहले हिस्से का नाम "इबादत के बारे में" दूसरे हिस्से का नाम "अमल के बारे में" तीसरे हिस्से का नाम "जो अश्या को बर्बाद करती हैं" यानी बदीयाँ। चौथे हिस्से का नाम "जो अश्या रूह को मख़लिसी देती हैं" यानी नेकियां। मज़ामीन मुफ़स्सला-ए-ज़ैल हैं :-

“इबादत के बारे में”

अव्वल, किताब-उल-इल्म, जिसके सात हिस्से हैं

1. इल्म के फ़वाइद
2. किस क़िस्म का इल्म ममनू और किस क़िस्म का जायज़ है
3. इल्म इलाही व फ़हरिस्त अस्मा
4. बहस और मुबाहिसे की शराइत
5. उस्ताद और शागिर्द का रिश्ता
6. इल्म के ख़तरे
7. अक़्ल और उस का इस्तिमाल

दोम, किताब के मसाइल, जिसके चार हिस्से हैं

1. इस्लामी अक़ीदा
2. ईमान के दर्जे
3. ख़ुदा, उस का वजूद, सिफ़ात और काम
4. ईमान और इस्लाम

सोम, किताब अल-इसरार अल-सफा, इस के तीन हिस्से हैं

1. नापाक अश्या से तहारत
2. नापाक हालतों से तहारत

3. नापाक चीज़ों से तहारत जो बदन के मुताल्लिक़ हैं। (मसलन नाख़ुन, कान, वग़ैरह

चहारुम, किताब अल-इसरार अस्सलात, इस के सात हिस्से हैं

1. सलात के फ़वाइद

2. सलात का ज़ाहिरी अमल

3. सलात के शराइत

4. इमाम

5. सलात अल-जुमा

6. मुतफ़र्रिक़ात

7. ख़ास नमाज़ें

पंजुम, किताब अल-इसरार अल-ज़कात, इस के चार हिस्से हैं

1. ज़कात की अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्में)

2. देने की शराइत

3. किस को दिया जाये

4. इन पर कैसे अमल करें

शश्म, किताब अल-इसरार अल-सोम, इस के तीन हिस्से हैं

1. इस की ज़रूरत

2. इस के इसरार

3. सौम के ज़रीये इताअत

हफ़्तुम, किताब अल-इसरार अल-हज्ज, इस के तीन हिस्से हैं

1. इस के फ़वाइद और सीरत

2. तर्बीयत अमल

3. इस के अंदरूनी मअनी

हश्तम, किताब-उल-तिलावत-उल-क़ुरआन

नहम, किताब-उल-ज़िक्र व अल-सलात

दहुम, किताब-उल-ज़िक्र अल-लैल

"उमूर मुताल्लिक़ा अमल"

1. अकल व शर्ब के आदाब

2. निकाह के आदाब

3. तजारे के आदाब

4. अवामिर (अहकामे इलाही, शरई हुक्म) व नवाही (नाजायज़, गैर-शरई)

5. आदाब दोस्ती व क़ील व क़ाल

6. एतिकाफ़ की ज़िंदगी

7. आदाब सफ़र

8. आदाब मौसीक़ी व शायरी

9. इनायात और उताबात के बारे में

10. हक़ीक़ी मुआशरत और नबी की खूबियां

“जो उमूर रूह को बर्बाद करते हैं”

1. दिल के अजाइबात

2. रूह की रियाज़त

3. दो तमन्नाओं के ख़तरे यानी इशतिहा (ख़्वाहिश, भूक) और शहवत (जिन्सी) ख़्वाहिश के

4. ज़बान की बदीयाँ

5. ख़फ़गी और हसद की बुराईयां

6. दुनिया को हक़ीर जानने के बारे में

7. इफ़्लास (ग़रीबी) और लालच की तहक़ीर पर

8. इज़्ज़त की तमन्ना और रियाकारी के तहक़ीर पर

9. बुतलानों की तहक़ीर के लिए

“जो उमूर रूह को मख़लिसी देते हैं”

1. किताब-उल-तौबा

2. किताब-उल-सब्र व अल-शुक्र

3. किताब-उल-ख़ौफ़

4. किताब-उल-इफ़लास व रियाज़त

5. किताब-उल-तौहीद अल्लाह

6. किताब-उल-हुब्ब

7. किताब दरबारा नेक इरादा और ख़ुलूस क़ल्बी

8. किताब अल-इम्तिहान-उल-नफ़्स

9. किताब-उल-ज़िक्र

10. किताब दरिया वल-मौत

इस किताब के तीसरे और चौथे हिस्सों से ख़ासकर ज़ाहिर होता है कि ग़ज़ाली सूफ़ी और रास्तबाज़ी का तल्क़ीन करने वाला था। "उमूर जो रूह को मख़लिसी देते हैं।" किताब के दस हिस्सों में से या मुसालेह (मसालिहत) जमा करना मुश्किल ना होगा कि हर दिन के लिए रुहानी ख़यालात निकालें। ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात से जवाहरात की ऐसी तस्बीह ना सिर्फ मुसलमानों के लिए मुफ़ीद होगी बल्कि मसीहीयों की इबादत के लिए भी।

दूसरी निहायत दिलचस्प किताब मौसूम बह अल-मक़्सद अल-असना शरह अस्मा-ए-अल्लाह व अल हसना (المقصد الاثنا شرح اسمائے اللہ وآل حسنہ) है। आला मक़्सद, ख़ुदा के अस्मा-ए हसना की तशरीह। किताब तीन हिस्सों पर मुनक़सिम (बटी) है जिसके पहले हिस्से में फ़ल्सफ़ाना तौर पर लफ़्ज़ "नाम" की तशरीह की गई है। ये बताया गया है कि किसी शैय के नाम रखने और जिस शैय का नाम रखा जाये उस में क्या इम्तियाज़ है और कैसे ये मुम्किन है कि ख़ुदा के नाम बहुत भी हों और फिर भी ज़ात वाहिद हो। किताब का दूसरा हिस्सा सबसे लंबा है और इस में ख़ुदा के निनान्वें (99) नामों का तर्तीबवार ज़िक्र है और ये ज़ाहिर किया गया है कि कैसे उस की सात सिफ़ात और ज़ात वाहिद में उनको समझ सकते हैं। तीसरा हिस्सा मुख़्तसर है इस में ये बयान है कि फ़िल-हक़ीक़त निन्यानवे से ज़्यादा नाम हैं लेकिन ख़ास माक़ूल वजूहात से ये शुमार ठहराया गया और फिर एक फ़स्ल इस बयान में है कि ख़ुदा का बयान कैसे करना और कैसे ना करना चाहिए।

अल-ग़ज़ाली ने इस किताब में ये तालीम दी कि ईमानदार का आला मक़्सद ख़ुदा की सिफ़ात की तक़्लीद (मानना) है। ख़ुदा के इर्फ़ान में तीन दर्जे हैं। इस के बारे में उसने ये बयान किया "रास्त बाज़ों की नेकियां और औलियाओं के क़सूर हैं।" इस से उस के ये

मअनी हैं कि ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) में जिस क़द्र हम ज़्यादा जाते हैं। हमारी सीरत का मेयार उसी क़द्र बुलंद होता है। इर्फ़ान के तीन दर्जे हैं। (1) अक़्ली (2) तारीफ़ व तक़्लीद की कोशिश (3) ख़ुदा की सिफ़ात की अमली तहसील जैसे फ़रिश्तों को है। ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) के दर्जे हैं। बलिहाज़ मकान या जगह के। जुनैद के मशहूर क़ौल का इक़्तिबास बड़ी पसंदीदगी से किया है।

> "ख़ुदा को सिवाए ख़ुद ख़ुदा-ए-तआला को कोई नहीं जानता। इसलिए उस ने अपनी अशरफ़-उल-मख़्लूक़ात पर सिर्फ अपने नामों ही को मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) किया है। जिनमें वो अपने तईं छुपाता है। उसने बयान किया ख़ुदा के और मोमिन के बारे में दो उमूर दुरुस्त हैं। हर सच्चे मोमिन को यह कहना चाहिए "मुझे ख़ुदा के सिवा कुछ मालूम नहीं" और "मैं ख़ुदा के बारे में कुछ नहीं जानता।"

अल-ग़ज़ाली की आख़िरी किताब "मिनहाज अल-आबिदीन (منہاج العابدین) है। कहते हैं कि ये किताब उन लोगों के लिए लिखी गई है जो "अहया" को ना समझ सकते थे और इस में अज़रूए तसव्वुफ़ इस्लाम के अक़ीदत और रसूम का बयान है। इस के हाशिये में "हिदायत अल-मुबतदीन" (ہدایت المبتدین) मर्क़ूम है जिसका ज़िक्र हो चुका है। अल-ग़ज़ाली की ये दो किताबें बहुत मशहूर हैं और इनकी इशाअत बहुत वसीअ हुई है।

किताब "मिनहाज" से ज़ाहिर होता है कि ग़ज़ाली ने अपनी ज़िंदगी के आख़िरी हिस्से में आम तालीम के लिए भी तसव्वुफ़ की इस्तिलाहात को इस्तिमाल किया। ये मुख़्तलिफ़ अबवाब मनाज़िल कहलाते हैं जो रूह को नजात और इत्मीनान की तरफ़ जाने में तै करनी पड़ती हैं। पहली मंज़िल तो इर्फ़ान की है। फिर तौबा की। ख़ुदा के रास्ते पर चलने में जो रुकावटें हाइल होती हैं उनकी फ़हरिस्त है। रूह की तरक़्क़ी में जो उमूर हारिज (हर्ज का सबब) होते हैं मसलन दुनिया और इस की तहरीसात (लालच, बहकावे), जिस्म, शैतान, हवास और दूसरी रुकावटें ये हैं। रोज़ी कमाने की फ़िक्रें, ज़िंदगी की घबराहटें और तकलीफ़ें और सूफ़ी की राह में आख़िरी मंज़िलें ये हैं मसलन हर हालत में ख़ुदा की हम्द करना और उस की हुज़ूरी की हक़ीक़त तक पहुंचने में दिल व जान से कोशिश करना।

जिस राह का अल-ग़ज़ाली ने ज़िक्र किया वो ऐसी मुश्किल है कि उसने ये बयान किया, "बाअज़ तालिबान इन मंज़िलों को सत्तर साल में तै करते हैं बाअज़ दस में। मगर बाअज़ ऐसे तालिबे इल्म हैं जिनकी रूहें ऐसी मुनव्वर हो चुकी हैं और जो दुनिया के फ़िक्र व अंदेशा से ऐसे मुबर्रा हैं कि वो इस सफ़र को एक साल में, एक महीना में बल्कि एक घंटे में तै कर के मंज़िल-ए-मक़्सूद को पहुंच जाते हैं। वो अस्हाबे कहफ़ (साहिबान-ए-गार, मुसलमानों के अक़ीदे में पाँच या सात या नौ आदमी जो हज़ारों साल कहफ़ यानी ग़ार में सो रहे हैं और क़ियामत के दिन उठाए जाऐंगे उनके साथ एक कुत्ता भी है।) की तरह जागते हैं और जो तब्दीली उनको अपने में और दूसरों में नज़र आती है वो मिस्ल ख़्वाब के है।"

किताब "अहया" में जो तालीम उसने नमाज़ के बारे में दी है वो रस्म परस्तों की नमाज़ से जो ज़ाहिरी रसूम की सख़्त पाबंदी करते हैं कहीं आला है "नमाज़ के तीन दर्जे हैं। इनमें से पहला दर्जा तो वो है जिसमें नमाज़ महज़ होंटों से अदा होती है। दूसरी क़िस्म की नमाज़ें वो हैं जिनको रूह बहुत मुश्किल से और सई बलीग़ (कामिल कोशिश) से अदा करती और इलाही बातों पर बद ख़यालात से मुंतशिर हुए बग़ैर तवज्जोह लगाती है। तीसरी क़िस्म की नमाज़ वो है कि जब रूह ऐसी बातों का ध्यान करने से बमुश्किल रुकती है लेकिन नमाज़ का ये ऐन मग़ज़ है कि (रूह, दिल*) से दुआ मांगी जाती है वो दुआ की रूह पर तसर्रुफ़ कर ले और दुआ मांगने वाले रूह ख़ुदा में महव (गुम) हो जाये जिससे कि वो दुआ मांगता है। जिसका दुआ माँगना बंद हो जाता है और अपनी ज़ात का सारा इल्म जाता रहता है यहां तक दुआ का ऐन ख़याल भी उस की रूह और ख़ुदा के दर्मियान एक हिजाब दिखाई देता है। इस हालत का नाम सूफ़ियों में "मज्ज़ूब" (जज़्ब किया गया, ख़ुदा की मुहब्बत में ग़र्क़) है। इस वजह से कि इन्सान ख़ुदा में ऐसा जज़्ब हो जाता है कि उसे बदन का ख़याल भी नहीं रहता ना किसी और शैय का जो ज़ाहिरा वाक़ेअ हो रही हो और ना अपनी रूह की हरकात का बल्कि वो पहले ख़ुदावंद की तरफ़ जाने में मसरूफ़ होती है और आख़िरकार कुल्लियतन (पूरे तौर पर) ख़ुदा में मज्ज़ूब हो जाता है। अगर ये ख़याल भी पैदा हो कि वो उस मुतलक़ मैं मज्ज़ूब हो गया तो ऐब में दाख़िल है। क्योंकि वही मज्ज़ूबियत इस नाम की मुस्तहिक़ है। गो नीम (नाम निहाद) मुल्ला इन को बेवक़ूफ़ ठहराएँगे लेकिन ये बेमाअनी नहीं। लेकिन सोचो जिस हालत का मैं ज़िक्र करता हूँ वो उस शख़्स की हालत से मुशाबेह है जो किसी दूसरी शैय को प्यार करता हो मसलन दौलत, गर्त या इशरत को। ऐसे लोग उनकी मुहब्बत के सेलाब में और

दूसरे उन के ग़ेय्ज़ (गुस्सा) व ग़ज़ब के सेलाब में ऐसे बह जाते हैं कि जो उनसे कलाम करते हैं। उनकी आवाज़ वो नहीं सुनते और जो उनके पास से उनकी आँखों के सामने गुज़रते हैं उनको वो नहीं देखते। वो अपने जज़्बे में ऐसे महव (गुम) होते हैं कि वो अपनी महवियत को भी नहीं जानते। तुम बिल-ज़रूर अपने मक़्सूद से इस को हटाते हो।"

एक दूसरे मुक़ाम में अल-ग़ज़ाली ने ये कहा "इस ज़िंदगी का आग़ाज़ ये है कि ख़ुदा की तरफ़ क़दम उठाएं। फिर आदमी उस को पा लेता है जब उस में महव (गुम) और मज्ज़ूब (जज़्ब) हो जाता है। पहले-पहल तो ये आरिज़ी है जैसे बिजली आँखों के सामने कौंद (बिजली की चमक) जाती है। इस के ज़रीये रूह आलम-ए-बाला में दाख़िल हो जाती है। वहां वो निहायत ख़ालिस ऐन ज़ात इस से मिलती और रुहानी दुनिया के तसव्वुरात से भर देती है और उलूहियत की अज़मत इस पर ज़ाहिर होती है।"

अल-ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात और उन इक़्तिबासात में जो यहां दिए गए हैं उनकी ख़ुलूस क़ल्बी और अख़्लाक़ी संजीदगी का इज़्हार है जिससे ज़ाहिर है कि इस का असर ऐसा गहिरा और मुस्तक़िल क्यों हुआ और जो फिलासफर महज़ माक़ूल ही थे मसलन औरोज़ (Averroes) वग़ैरह उन पर ऐसी सबक़त क्यों ले गया। गो उस ने स्कालिस्टिक (Scholastic) फ़ल्सफ़े की मुख़ालिफ़त की लेकिन उसने अख़्लाक़ी फ़ल्सफ़े की हिमायत की। नाज़रीन को याद होगा कि वो अपने सफ़रों में अख़्लाक़ की किताब अपने साथ रखता था। उस की वफ़ात के बाद कई मशहूर अख़्लाक़ी रिसाले तालीफ़ हुए जिनमें बहुत कुछ उस की तालीम में से दर्ज हुआ। क्लॉड फ़ील्ड साहब का बयान है :-

> "इनमें सबसे ज़्यादा मशहूर किताब अख़्लाक़ जलाली है जो जलाल उद्दीन असअद अल-दवानी की तस्नीफ़ है जिसका तर्जुमा टामसन साहब ने निहायत उम्दगी से अंग्रेज़ी में किया।"

अख़्लाक़ जलाली ख़ुद बहुत कुछ अरबी का फ़ारसी तर्जुमा है। अरबी में ये किताब दसवीं सदी में कताब-उल-तहारत (کتابہ الطہارت) के नाम से शाएअ हुई। इस से दो सदी बाद अबू नासिर ने इस का तर्जुमा फ़ारसी में किया और अख़्लाक़ नासरी नाम रखा और अबू सीना से इस में कुछ डाला और पंद्रहवीं सदी में ज़्यादा तफ़्सील के साथ अख़्लाक़ जलाली के नाम से शाएअ हुई।

अल-ग़ज़ाली की सारी तस्नीफ़ात से ज़ाहिर है कि वो फ़ित्रत का बड़ा मुशाहिदा करने वाला था। क़ुरआन के हिस्सों में फ़ित्रत का बयान आया है और अज्राम-ए-फ़लक से सब्ज़ा-ज़ार ज़मीन से, हैवानात से और समुंद्र और उस के ख़तरात से उनका ख़ास असर उस के दिल पर हुआ। इस की एक किताब का नाम "अल-हिकमत फ़ी मख़्लूक़ात अल्लाह" है। ये उस की छोटी किताबों में से है। लेकिन अज्राम-ए-फ़लक ज़मीन और समुंद्र और अर्बा अनासिर का ज़िक्र इस में निहायत ख़ूबसूरती से हुआ है। एक बाब तो ख़ास इल्म अल-अरहाम और इन्सानी जिस्म के तबई अजाइबात पर मुश्तमिल है। एक बाब परिंदों के बारे में है और एक बाब चौपाईयों और मछलीयों के बारे में। सारे रिसाले का नतीजा दलील तज्वीज़ है कि ख़ालिक़ का एहसान और अज़मत उस की सनअतों से हुवैदा (ज़ाहिर, आशकार, वाज़ेह) है। इस सितारे भरे गुम्बद पर नज़र डालने से जो फ़वाइद हासिल होते हैं। इस का मुक़ाबला हम दाऊद के आठवें और उन्नीसवें मज़ामीर के अल्फ़ाज़ से कर सकते हैं। अल-ग़ज़ाली का बयान है, "आस्मान के गुम्बद पर नज़र डालने से फ़िक्र भाग जाताती, शैतान के वसवसे से दूर होते, ख़ौफ़ जाता रहता, ख़ुदा की याद आती, दिल से ख़ुदा की बड़ाई होती, बद-ख़यालात दूर होते, मायूसी जाती रहती, साहिबे जज़्बात को तसल्ली होती, आशिक़ को ख़ुशी और उन के लिए ये बहतरें क़िब्ला (सामने या मुक़ाबिल की चीज़, सिम्त काअबा) है जो नमाज़ में ख़ुदा को पुकारते हैं।"

अल-ग़ज़ाली इल्म-ए-मुनाज़िर और बहस मुबाहिसा में भी माहिर था। उस ने क़ुरआन की तफ़्सीर चालीस जिल्दों में लिखी लेकिन वो कभी मतबूअ नहीं हुई और तक़रीबन एक दर्जन किताबें मुख़्तलिफ़ बिद्अतीयों की तर्दीद में लिखीं जिनमें से एक का नाम "अफ़्ज़ल जवाब उनको जिन्हों ने इन्जील में तहरीफ़ की" अल-ग़ज़ाली पर ख़ुद बिद्अत का इल्ज़ाम आया था। लेकिन इस्लाम के फ़ुज़ला में वो वसीअ हम्दर्दी के लिए मशहूर है उसने यज़ीद पर लानत करने से भी मुमानिअत की जो मुहम्मद के नवासे हुसैन का क़ातिल था और अपनी राय इन अल्फ़ाज़ में ज़ाहिर की "मुसलमान पर लानत करना मना है। यज़ीद मुसलमान था ये यक़ीनी अम्र नहीं कि उसने हुसैन को क़त्ल किया और किसी मुसलमान की निस्बत बद-गुमानी करना मना है हमको ये भी तहक़ीक़ मालूम नहीं कि उसने हुसैन के क़त्ल का हुक्म दिया। हमको किसी बुज़ुर्ग की मौत के सबब का यक़ीनी इल्म नहीं और ख़ासकर इतने अर्से दराज़ के बाद इस ख़ास मुआमले में तरफ़दारी और झूटे बयानात का ख़याल रखें नीज़ अगर उसने उसे क़त्ल भी किया वो इस फ़ेअल की वजह से बेईमान नहीं ठहरता उसने सिर्फ़ ख़ुदा की ना-फ़र्मानी की और शायद उस ने

मरने से पेश्तर तौबा करली हो। इलावा अज़ीं लानत करने से बाज़ रहना कोई जुर्म नहीं किसी से ये पूछा ना जाएगा कि उसने कभी शैतान पर लानत की। अगर उसने लानत की तो उस से ये सवाल होगा कि क्यों? हम सिर्फ उन्हीं को लानती जानते हैं जो हालत कुफ़्र में मरते हैं।"

जो किताबें उसने फिलासफरों के ख़िलाफ़ लिखीं उनमें से हम तीन का ज़िक्र करेंगे जिनका एक दूसरी के साथ ताल्लुक़ है उनमें से एक तो "मक़्सद अल-फ़ल्सफ़ा" है। फिलासफरों की सही तालीम का बयान और दुनिया के बारे में उनकी राएयों का इज़्हार, दूसरी का नाम "तोहफ़ा अल-फ़ल्सफ़ा" है। जिसमें उनकी राएयों की तर्दीद है और ये बयान किया है कि जो लोग दिल व जान से इस्लाम की पैरवी करते हैं वो इस तालीम को मान नहीं सकते। तीसरी किताब क़वाइद है जिसमें उन सदाक़तों का ज़िक्र है, जो फिलासफरों की ग़लतीयों की बजाय माननी चाहीऐं। पहली मज़्कूर शूदा किताब में बक़ौल मैकडानल्ड साहब :-

> "उसने फिलासफरों के चूतड़ों (कूलों) और रान पर तमांचे मारे और उनके औज़ारों को उन ही के ख़िलाफ़ इस्तिमाल किया और अक़्ल पर परले दर्जे की बद-गुमानी की। ह्यूम से सात सौ साल पहले उसने इल्लत मालूल के सिलसिले की गिरह काट डाली और ये ज़ाहिर किया कि हमें सबब या नतीजे का इल्म नहीं। हम तो सिर्फ इतना जानते हैं कि एक शय दूसरे के बाद आती है।"

अल-ग़ज़ाली की मशहूर किताब "अहया अल-उलूम-उद्दीन" (احیا العلوم الدین) ने अंदलूसिया (Andalusia) में सख़्त हैरत फैला दी। उलमा की तंग-ख़याली के बाइस उनका तास्सुब हद से तजावुज़ कर गया। उनका इल्म इलाही सिर्फ़ शरीअत की वाक़फ़ीयत पर महदूद था। जिस मज़्हब की तालीम अल-ग़ज़ाली ने दी उस में इस की कुछ गुंजाइश ना थी। जो शख़्सी और जोशीला और दिल का मज़्हब था। जब उसने अपने हम-अस्र उलमा-ए-दीन पर जो शरई बहस और दीन की ज़ाहिरी रसूम में मसरूफ़ थे हमला किया तो उसने शरीअत के इन फ़रीसयों के नाज़ुक मुक़ाम को छुवा। जिससे वो चिल्ला उठे बक़ौल डोज़ी (Dozy) :-

> "कार्डोवा के क़ाज़ी इब्ने हमदीन ने ये ऐलान किया कि जो शख़्स अल-ग़ज़ाली की किताब पड़ेगा वो दोज़ख़ में पड़ेगा। वो काफ़िर है और उसने ये फ़त्वा दिया कि इस किताब की सारी जिल्दें आग से जला दी जाएं। इस फ़त्वे पर कारडोदा के फ़क़ीहों ने दस्तख़त किए और अली ने इस की तस्दीक़ की चुनान्चे वो किताब कारडोदा में और सल्तनत के दूसरे शहरों में जला दी गई और ये हुक्म सादिर हुआ जिसके पास से वो किताब निकलेगी वो जान से मारा जाएगा और उस की जायदाद ज़ब्त (क़ाबू) होगी।"

लेकिन दीगर ममालिक के मुसलमानों की ये राय ना थी उस की हीने-हयात (जीते जी) में और ख़ासकर उस की वफ़ात के बाद फ़ल्सफ़े के ख़िलाफ़ जो उस की किताबें थीं और जो इस्लामी अक़ीदे की तशरीह पर थीं। उन का मुतालआ और उनकी तफ़्सीर बहुत लोग करने लगे।

मुसलमान मुसन्निफ़ों और यूरोपीयन आलिमों ने माक़ूल वजह से उस पर ये इल्ज़ाम लगाया है कि उसने दूसरी किताबों के इक़्तिबास करने और हवाला देने में एहतियात और सेहत से काम नहीं लिया। उस के मुख़ालिफ़ीन ने उस पर एक इल्ज़ाम ये लगाया कि उसने अहादीस की तक़्ज़ीब (झुटलाना, झूट बोलने का इल्ज़ाम लगाना) की। मैक्डानाल्ड साहब ने इस की कुछ रिआयत की और ये कहा :-

> "उसने उन इक़तिबासात में ज़्यादातर अपनी याददाश्त से काम लिया और अस्ल किताबों से मुक़ाबला नहीं किया इसलिए उस की ज़िंदगी के आख़िर तक ये हवाले और इक़तिबासात लफ़्ज़ी सेहत के साथ नहीं।"

अल-सबक़ी ने अपनी किताब "तब्क़ात अल-शफ़ाईयाह-अल-कुबरा" (طبقات الشفاعیہ الکبری) में एक ख़ास फ़स्ल इस में मख़्सूस कर दी है कि अल-ग़ज़ाली ने अपनी किताब अहया में जिन हदीसों का हवाला बिला अस्नाद दिया है। यानी एसी हदीसें जिनको उसने मुस्तनद समझ कर इक़्तिबास किया जो इस्लामी इल्म जरह के उसूल के मुताबिक़ बिल्कुल ज़ईफ़ व बेवुक़अत हैं। किताब की इस फ़स्ल के बहुत से सफ़े हैं और इस में छः सौ हदीसों को शुमार दिया गया जो "अहया" के फ़ुलां फ़ुलां बाब में मज़्कूर हुईं। इसलिए शक की कोई

वजह नहीं कि अल-सबक़ी (771 हिज्री) अल-ग़ज़ाली का मदाह (مداح) था और उस की तालीम की क़द्र करता था। जब उसने औलियाओं की ज़िंदगीयों के इस मजमुए में अल-ग़ज़ाली के अपने शागिर्दों ने उस पर ऐसा बड़ा इल्ज़ाम लगाया तो फिर हम क्या कहें?

जब मुहम्मद के "सही अक़्वाल" का ये मजमूआ (जिसमें से अक्सर क़ौल बिला-सनद या बुनियाद के उसने मन्सूब किए गए हैं) हम पढ़ते हैं तो इस्लाम के सबसे बुज़ुर्ग हामी दीन की ये ज़ूद एतिक़ादी (जल्दी यक़ीन) और सेहत को देखकर हैरत पैदा होती है। अगर अल-ग़ज़ाली ने अहादीस की निस्बत एहतियात से काम नहीं लिया और मुहम्मद साहब से ऐसी बातें मन्सूब कीं जो ज़ईफ़, पुर फ़साना और अख़्लाक़ से गिरी हुई हैं तो मा-बाअद मुहद्दिसों पर हमको क्या एतबार रहा। हम अल-ग़ज़ाली को इस दीनी झूट से कैसे बरी करें?

उस की तस्नीफ़ात के बारे में एक और बात ख़ास दिलचस्पी रखती है। वसती ज़मानों में अल-ग़ज़ाली ने यहूदी ख़याल पर असर किया। ज़मीमा में उस की किताबों के बाअज़ तर्जुमों की फ़हरिस्त दी गई है जो इब्रानी ज़बान में किए गए, फ़ल्सफ़े के यहूदी शाएक़ीन मसलन मैमूनीदेस (Maimonides) वग़ैरह ने बहुत ख़यालात उस की किताब "मक़ासिद" और दीगर किताबों से अख़ज़ किए। अल-ग़ज़ाली ने फ़लसफ़े पर जो हमले किए उन्हीं को यहूदा हालेवी ने अपनी किताब "कोज़री" (Cuzari) में दुहराया। लेकिन उस के फ़ल्सफ़े की निस्बत उस की अख़्लाक़ी तालीम ने यहूदी आलिमों की तवज्जोह को खींचा। बरवाएड (Broyde) का बयान है :-

> "वो यहूदी अख़्लाक़ी तसव्वुर की ग़ायत तक इस क़द्र पहुंचा कि बाज़ों ने समझा कि वो यहूदी हो गया था और इसलिए यहूदी मुसन्निफ़ों ने उस की तस्नीफ़ात का बहुत मुतालआ और इस्तिमाल किया।"

इब्राहिम इब्ने एज़्राह ने अल-ग़ज़ाली की किताब "मुज़य्यन-उल-आमाल" (مزین الاعمال) से ये तम्सील ली जिसमें इन्सानी बदन के आज़ा और बादशाह के मुलाज़िमों में मुक़ाबला किया है और यशीनी लब (Yashene Leb) की नसीहत के लिए इस्तिमाल किया इब्राहिम इब्ने दाऊद ने इसी किताब से वो तम्सील अख़ज़ की जो उलूम के मुख़्तलिफ़

सीगों में इम्तियाज़ करने के सबूत में है और शमाउन दोज़ां ने अपनी किताब "कशीत" (Keshet) में एक मुक़ाम किताब मूज़ीनी हाऊनीम से नक़्ल किया जिसे वो मूज़ीनी हा हुकमाह कहता है।

उस की तस्नीफ़ात के इब्रानी तर्जुमे तेरहवीं सदी में हुए। कम अज़ कम ग्यारह इब्रानी तफ़्सीरें किताब मक़ासिद पर लिखी गईं। योहनान अलीमनो (Johanan Alemanno) ने ग़ज़ाली के वाइज़ाना तरीक़ों की तारीफ़ की और ग़ज़ाली के क़ियास में नूर की तर्तीब और दर्जों को क़बाला के क़ियास से तश्बीह दी।

साईंस के बारे में अल-ग़ज़ाली के ख़यालात वही थे जो उस के हम-अस्रों के थे दुनिया पतलीमी निज़ाम के मुताबिक़ बनी थी और सिर्फ अर्बा अनासिर को मानते और हस्ती की तीन सूरतें समझते थे। आलम एहसास, ख़ुदा के अज़ली हुक्म का आलम, तसव्वुरात या ख़ुदा की क़ुद्रत का आलम, ख़्वाबों और रिवायतों में हम बाक़ी दो आलमों से मिलते हैं। इस तरीक़े से अल-ग़ज़ाली ने इस्लामी दीन की नफ़्सानी माद्दी तालीम की मुश्किल से इज्तिनाब किया। ऐसी अश्या का इम्कान है जो असली और हक़ीक़ी हों तो भी वो आलम एहसास से इलाक़ा ना रखती हों।

डाक्टर मैक्डानल्ड साहब ने बयान किया कि अल-ग़ज़ाली की तासीर इस्लाम पर चोहरी (چوہری) थी

अव्वल, तो उसने लोगों की तवज्जोह लफ़्ज़ी बहस मुबाहिसा से इस तरफ़ फेरी कि क़ुरआन और अहादीस से ज़िंदा ताल्लुक़ रखें जो इस्लाम का हक़ीक़ी चशमा है। वो आजकल के मअनी में "बाइबल का आलिम" कहला सकता है। बाइबल से यहां मुराद इस्लामी बाइबल यानी क़ुरआन होगा। "अहया" के तक़रीबन हर मुक़ाम के शुरू में क़ुरआन की आयत दी गई है और तर्जुमा करने में उसने माक़ब्ल मुफस्सिरिन की तक़्लीद नहीं की बल्कि रुहानी मअनी निकाले।"

दोम, उसने इस्लाम में ख़ौफ़ का अंसर दाख़िल किया। अवाइल अय्याम में मसलन ख़ुद क़ुरआन में रोज़ अदालत और दोज़ख़ के अज़ाब का डर दिया गया ताकि लोग तौबा करें। अल-ग़ज़ाली ने इस्लामी तालीम के इस हिस्से पर अज़हद ज़ोर दिया है। देखो उस

की छोटी किताब "अल-दरह अल-फ़ाख़रह" (الدرہ الفاخرۃ) जो दीनदार मुसलमानों में आज तक बहुत मक़्बूल है।

सोम, तसव्वुफ़ ने जो इस्लाम में मौजूद था लेकिन अक्सर बिद्अत समझा जाता था। अल-ग़ज़ाली की ज़िंदगी और तालीम के ज़रीये उस वक़्त से लेकर आज तक इस्लाम में एक ख़ास जगह हासिल करली।

चहारुम, उसने फ़ल्सफ़े को ऐसा आसान कर दिया कि अवामुन्नास भी समझ सकें। फ़ल्सफ़े के बुनियादी उसूलों को ज़ाहिर किया और फ़ल्सफ़े के ख़तरों से लोगों को आगाह किया और अपनी तस्नीफ़ात में ये तशरीह कर दी कि हक़ीक़ी फ़ल्सफ़ा और हक़ीक़ी इस्लाम ज़िद्दीन नहीं। इस अम्र में वो रेमंडलाल (Ramund Lall) के मुशाबेह है। जिसने ये ज़ाहिर किया कि फ़ल्सफ़े को मसीहीय्यत की ख़ादिमा के तौर पर इस्तिमाल करें। मैक्डानल्ड साहब का ख़याल है कि उस के काम और तासीर के बारे में पहला और चौथा तरीक़ा निहायत अहम हैं उन्होंने उसे इस्लाम की तारीख़ में अव्वल दर्जे का मुस्लेह (सुधारक, मुजद्दिद) बना दिया।

बाब शश्म

उस की अख़्लाक़ी तालीम

मार्टीन सेन (Marten Sen) ने मसीही अख़्लाक़ की ये तारीफ़ की है कि "वो अख़्लाक़ का साईंस है मशरूअत अज़ मसीहीय्यत" लेकिन इस्लाम की तालीम मसीही अख़्लाक़ के तीन बुनियादी तसव्वुरात के मुख़ालिफ़ है। आला एहसान, नेकी और अख़्लाक़ी शरीअत का मुहम्मदी तसव्वुर मसीही तसव्वुर के मुताबिक़ नहीं। ख़ुद मुहम्मद साहब की सीरत और उनके तहरीर शूदा अक़्वाल से ये बख़ूबी अयाँ है। आला नेकी मुहम्मद साहब की तक़्लीद के वसीले हासिल होती है और अख़्लाक़ी शरीअत की निस्बत अदना ख़यालात रखने की वजह बलिहाज़ उस की हक़ीक़ी सीरत, उस की तालीम और उस की ग़ायत के उस को ख़ाम जैसी तालीम है। सोश्यल (मुआशरती) रिश्तों के तबक़े में दियानतदारी और यक़ीन और क़ौल में वफ़ादारी और काम को ख़ुदा के लिहाज़ से सर-अंजाम देना इस दीन की आला बातें हैं लेकिन (थाह, तह, गहराई) हैं। ये दिल तक नहीं

पहुँचती ना इनकी बुनियाद मुहब्बत पर है। आला दर्जे की नेकी हर फ़र्द बशर की बैरूनी और नफ़्सानी ख़ुशहाली है। जिन लोगों ने इस्लाम का मुतालआ उस के असली चश्मों के वसीले किया है उनके लिए इस बयान के सबूत की ज़रूरत नहीं। प्रोफ़ैसर मार्गलाइथ साहब ने जिन अल्फ़ाज़ में मुसलमान बुज़ुर्गों यानी मुहम्मद साहब के रफ़ीक़ों और पैरों का ज़िक्र किया वो शायद सख़्त समझी जाएं लेकिन वो नादुरुस्त नहीं।

> "जो लोग इस्लाम की तारीख़ का बयान करते हैं वो अख़्लाक़ के मामूली कवानीन को बाला-ए-ताक़ रख देते हैं वर्ना वो तस्वीर अपनी चमक दमक नहीं दिखा सकती। वो तो उनका बयान हरगिज़ लिख ना सकते अगर बेवफ़ाई, ख़ूँख़ारी, ज़ुल्म व शहवत की तरफ़ से दिल को अकड़ा ना कर लेते गो क़ुरआन और अहादीस ने इन पहली तीन बातों की मुमानिअत की है और चौथी पर कुछ हद लगाई है।"

नदी अपने चश्मे से बुलंद नहीं बह सकती। बुरज अपनी बुनियाद से ज़्यादा चौड़ा नहीं हो सकता मुहम्मद साहब के अख़्लाक़ी क़द का अंदाज़ा इस्लाम के सारे अख़्लाक़ी तसव्वुरात का चश्मा और बुनियाद है उनका चाल चलन सीरत का मेयार है। इसलिए हम ताज्जुब ना करें कि अख़्लाक़ी मेयार ऐसा अदना है। अल-ग़ज़ाली में भी, गो वो कभी कभी क़ुरआन और नबी पर भी सबक़त ले जाता है।

जो किताबें उसने अख़्लाक़ पर लिखी हैं उनमें से तक़रीबन हर एक में अरबी नबी की सीरत का आला नमूना बयान किया है। उस के रिसाले बनाम "गौहर बे-बहा" (گوہر بے بہا) में एक मुक़ाम है जिसमें एक हदीस से इक़्तिबास है इस में यसूअ मसीह को यही दर्जा दिया गया है। (सफ़ा 24 तबाअ क़ाहिरा)

> "यसूअ के पास जाओ क्योंकि जो रसूल भेजे गए उन सब में से वो सिद्दीक़ थे। और जिसे ख़ुदा का इर्फ़ान सबसे ज़्यादा हासिल था और जिसकी ज़िंदगी उन सबसे ज़्यादा मुर्ताज़ (रियाज़त करने वाला, इल्म व हुनर या तसव्वुफ़ में मशक़्क़त

उठाने वाला) थी और हिक्मत में जो सबसे ज़्यादा फ़सीह (ख़ुशबयान, शिरीं कलाम) था। शायद वो तुम्हारी सिफ़ारिश करे।"

मगर ये हवाला रोज़-ए-क़यामत के बारे में है जब मुख़्तलिफ़ कौमें ख़ुदा की शफ़क़त और मआफी की तलाश करेंगी। अगर हम उस ज़माने का लिहाज़ करें जिसमें वो ज़िंदा था और उस की मुहम्मदी अख़्लाक़ी तालीम का तो बक़ौल मैक्डानल्ड साहब "अल-ग़ज़ाली का दर्जा साफ़ हो जाता है इस मज़्मून के बारे में हमारे सारे क़वानीन और क़ियासात, अक़्ल की सिफ़ात की तक़्सीम ख़्वाह वो नेक हों या बद इनके अस्बाब के पोशीदा नुक़्सों का सुराग़ लगाना और इन अस्बाब के मुक़ाबला करने के तरीक़े, ये सब उमूर (अल-ग़ज़ाली ये सिखाता है) हमको औलिया-अल्लाह के तुफ़ैल हासिल हुए जिन पर ख़ुदा ख़ुद उन बातों को ज़ाहिर किया, ये औलिया हर ज़माने और हर मुल्क में गुज़रे हैं ख़ुदा ने अपने तईं कभी बे-गवाह नहीं छोड़ा। उनके और उनकी मेहनतों के और इस रोशनी के बग़ैर जो ख़ुदा ने उनको अता की थी हम कभी अपने आपको जान ना सकते। दीगर मुक़ामात की तरह यहां भी अल-ग़ज़ाली का दर्जा साफ़ ज़ाहिर है कि सारे इल्म का ग़ायत चश्मा मुकाशफ़ा मिन्जानिब अल्लाह है। उसे मुकाशफ़ा कलां कह सकते हैं जो उन मोअतबर अम्बिया के ज़रीये पहुंचा जो उस्ताद हो कर ख़ुदा की तरफ़ से आए और उनकी तस्दीक़ के लिए उनको मोअजज़ात अता हुए और उनके पैग़ाम की सरीह सदाक़त इन्सान के दिल पर असर करती थी। और इसे हम मुकाशफ़ा ख़ुर्द कह सकते हैं जो अदना और तशरीही था जो मुख़्तलिफ़ दर्जे के औलियाओं को ख़ुदा की तरफ़ से हासिल हुआ था। जहां औलिया-अल्लाह छोड़ते हैं वहां से अम्बिया शुरू करते हैं और बग़ैर ऐसी तालीम के तबई इल्म में भी इन्सान तारीकी में सरगर्दां रहता।"

अख़्लाक़ के बारे में अल-ग़ज़ाली ने जो ये साफ़ बयान किया है मबादा इस में ग़लतफ़हमी हो। हम ये ईज़ाद कर सकते हैं कि मुक़द्दम-उल-ज़िक्र मुकाशफ़ा तो क़ुरआन है और ये औलिया-अल्लाह पहले ख़ुलफ़ा और उनके ताबईन हैं। मुसलमानी फ़िक़्ह के आलिम जिनमें अल-ग़ज़ाली भी शामिल है। गुनाह की ये तारीफ़ करते हैं कि वो "शराअ (शरीअत) मालूमा के ख़िलाफ़ ज़िम्मेदार शख़्स का दानिस्ता फ़ेअल" है। इस के मुताबिक़ जो गुनाह ना-दानिस्ता सरज़रद हों या बचपन में सरज़रद हों वो हक़ीक़ी गुनाह नहीं समझे जाते वो गुनाह को दो हिस्सों में तक़्सीम करते हैं यानी कबीरा व सगीरा, बाज़ों का ख़याल है कि गुनाह कबीरा का शुमार सात है। यानी बुत-परस्ती, क़त्ल, ज़िना का

झूटा इल्ज़ाम, यतीमों का माल ज़ाए करना, रुपया पर सूद लेना, जिहाद से किनारा-कशी, वालदैन की ना-फ़र्मानी, बाज़ों की राय में इनका शुमार सत्तर है और इनमें वो शराबखोरी, जादू, झूटी कसम को भी शामिल करते हैं। मुहम्मद साहब की अहादीस में जो अख़्लाक़ की बुनियाद हैं रस्मी और अख़्लाक़ी शरीअत में कोई इम्तियाज़ नहीं किया गया। मसलन नबी ﷺ ने फ़रमाया "एक दिरहम सूद का अगर आदमी सूद समझ कर ले वो छत्तीस हरामकारियों से बदतर है और जो कोई इस का मुर्तक़िब होगा वो नार-ए-जहन्नम (जहन्नम की आग) का मुस्तूजिब होगा।

आम मुसलमानों में गुनाह की यही तक़्सीम है कबीरा और सगीरा, अल-ग़ज़ाली ने एक शख़्स से ये इक़्तिबास किया, "गुनाहों में कोई कबीरा और सगीरा नहीं बल्कि जो कुछ ख़ुदा की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ है वो गुनाह कबीरा है।" लेकिन इस की तर्दीद में क़ुरआन की आयात पेश की हैं और ये कह कर इस अख़्लाक़ी मुश्किल से रिहाई पाई कि अगर आदमी गुनाह सगीरा में मुब्तला रहे तो वो गुनाह कबीरा हो जाता है। जैसा कि पानी के क़तरात के मुतवातिर गिरने से पत्थर पर निशान पड़ जाता है और जब ख़ुदा का बंदा अपने किसी गुनाह को कबीरा समझता है तो ख़ुदा उस को सगीरा समझता है और जब आदमी अपने गुनाह को सगीरा समझता है तो ख़ुदा उसे कबीरा ठहराता है।"

जो गुनाह दिल को मग़्लूब कर लेते हैं उनको वो चार किस्मों में तक़्सीम करता है, ख़ुदी, शैतानी, खीवानी, ज़ुल्म, पहली क़िस्म में उसने ग़ुरूर, ख़ुदबीनी, शेख़ी और ख़ुदग़रज़ी वग़ैरह को रखा। हसद, अदावत, फ़रेब, कीना, रिश्वत, और बेईमानी को दूसरी क़िस्म में और लालच, शिकम-परवरी, शहवत, ज़िना, लौंडे बाज़ी, चोरी, और यतीमों का माल लूटना हैवानी गुनाह कहलाते हैं। और ग़ुस्सा, गाली, लानत, क़त्ल, रहज़नी वग़ैरह ज़ुल्म में दाख़िल हैं।

अख़्लाक़ पर ग़ज़ाली की सारी किताबों में और उस के छोटे रिसालों में जो इस मज़्मून पर लिखे गए रस्मी और अख़्लाक़ी शरीअत के दर्मियान कोई साफ़ इम्तियाज़ नहीं किया गया। अरबी लफ़्ज़ अख़्लाक़ के बारे में अदब आया है जिसमें हुस्न-ए-अख़्लाक़, अदब आदाब, ख़ुशख़ुलक़ी और ज़ाहिरी रविश में शाइस्तगी, बुज़ुर्गों के हुज़ूर ताज़ीम वग़ैरह का ख़याल दाख़िल है लेकिन दस अहकाम पर अमल करने या उन उसूलों पर चलने की तरफ़ कुछ इशारा नहीं जिससे शरीफाना सीरत पैदा होती है। उस के

मुख़्तसर रिसाले "अल-अदब फ़ीद्दीन" (الادب فی الدین) के मज़ामीन के पढ़ने से ये बात और भी वाज़ेह हो जाती है।

इस रिसाले में अख़्लाक़ी तालीम की बुनियाद को इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है, "अल-हम्दु-लिल्लाह जिसने हमको ख़ल्क़ किया और हमारी ख़ल्क़त को कामिल किया और हमको अख़्लाक़ सिखाए और हमारे अख़्लाक़ को हसना बनाया। और अपने नबी मुहम्मद ﷺ को भेजने के ज़रीये हमें इज़्ज़त दी और हमें सिखाया कि हम कैसे उस की इज़्ज़त करें। फ़िल-हक़ीक़त सीरत में सबसे अकमल अंसर और निहायत मुम्ताज़ और अहसन अमल और निहायत ज़ुल-जलाल, मज़्हब के लिहाज़ से दुरुस्त चलन है। क्योंकि मज़्हब ये सिखाता है कि हक़ीक़ी मोमिन को चाहीए कि रब-उल-आलमीन की सनअत और अम्बिया व रसूल के ख़ालिक़ को जाने और ख़ुदा ने क़ुरआन में हमको इस की तालीम दी और इस के बारे में रोशनी डाली और अहादीस के मुताबिक़ मुहम्मद अन्नबी को हमारे चाल चलन का नमूना ठहराया, वो हमारा नमूना हैं और वैसे ही उस के रफ़ीक़ और उनके ताबईन हैं उनके वसीले हम पर ये ज़ाहिर कर दिया गया कि उनके नक़्श-ए-क़दम पर चलना हमारा फ़र्ज़ है जिसका बयान हमने उनके लिए कर दिया जो हमारे बाद आएँगे।"

इस रिसाले के बाबों या फसलों के ये नाम हैं, मोमिन के अख़्लाक़, उस्ताद के बारे में, शागिर्द के बारे में, जो क़ुरआन की तिलावत को सुनते हैं। क़ारी के बारे में, मुदर्रिस के बारे में उनके मुताल्लिक़ जो अहादीस को समझने के तालिब हैं। वाइज़ के बारे में मुर्ताज़ (रियाज़त करने वाला, इल्म व हुनर या तसव्वुफ़ में मशक़्क़त उठाने वाला) के, शरीफ़ के नींद के आदाब, शब-बेदारी के, क़ज़ा-ए-हाजत, हमाम के, वुज़ू के, मस्जिद में दाख़िल होने के, अज़ान के, नमाज़ के, शफ़ाअत के, जुमा के ख़ुत्बा के, ईदों के कुसूफ़ (सूरज गरहन) ख़ुसूफ़ (चांद गरहन) के, अर्से के, ख़ुश्कसाली के अय्याम के, बीमारी के, जनाज़े के, ज़कात के, अमीर व ग़रीब के, रोज़े के, हज के, ताजिर के, सर्राफ़ के, उकल व शर्ब (खाना पीने) के, निकाह (इस की मुख़्तलिफ़ फ़सलें हैं), राह के किनारे बैठे, बच्चे मए उस के वालदैन के, वालदैन मए उस के बच्चे के, बिरादरों, हम-साइयों, आक़ा मए ग़ुलाम के, सुल्तान मए उस के रईयत के, क़ाज़ी के, शाहिद के, क़ैदी के बारे में, इस दिलचस्प किताब के आख़िरी बाब में मुख़्तलिफ़ अक़्वाल का बयान है जो मुख़्तलिफ़ औक़ात पर शाइस्ता चलन के लिए मुनासिब हैं।

खाने के बारे में जो फ़स्ल है और जो तवालत (लंबाई, तूल, दराज़ी) में दूसरी फसलों के तक़रीबन बराबर है। इस का तर्जुमा इस के मज़ामीन का कुछ तसव्वुर हमको देगा। "आदमी को चाहीए कि खाने से पेश्तर और उस के बाद हाथ धोए और खाने से पेश्तर ख़ुदा का नाम ले और दाहने हाथ से खाए, और रकाबी में से छोटा निवाला और निवाले को मुँह में ख़ूब चबाए, और जो दीगर मेहमान उस के साथ खाने में शरीक हों उनके चेहरों की तरफ़ ना ताके, ना ज़्यादा झुके और ना इशतिहा से ज़्यादा खाए, और जब काफ़ी खा चुके तो माज़ूर रखे जाने की दरख़्वास्त करे ताकि मीज़ान को या जिसको ज़्यादा खाने की ज़रूरत है फ़िक्र पैदा ना हो और रकाबी के वस्त में से खाना शुरू ना करे बल्कि एक किनारे से और खाने के बाद अपनी उंगलियां पौछें और ख़ुदा का शुक्र करे और खाने के वक़्त मौत का ज़िक्र ना करे ताकि हाज़िरीन में से किसी को नहूसत का ख़ौफ़ पैदा ना हो।"

दस्तर-ख़्वान के ये आदाब मुसलमान बच्चों के लिए दिलचस्प और अहम भी हैं। इताअत और ज़ाहिरी रविश में फ़िरोतनी, मस्जिद में ताज़ीम, जो उम्र और मर्तबे में बड़े हैं उनकी इज़्ज़त और इसी तरह दीगर ख़ानगी आदाब का हुक्म है। लेकिन इस किताब में जिन बातों का ज़िक्र नहीं हुआ वो भी हैरत-अंगेज़ हैं रास्ती, दिल की पाकीज़गी, अख़्लाक़ी हौसला कमज़ोरों और औरतों की हिफ़ाज़त में जान जोखों में डालने की शरीफ़ सिफ़त, ऐसी सिफ़ात जिनसे कि इन्सान इन्सान बन सकता है वो मादूम (गायब) हैं।

किताब "अहया" (फ़स्ल 3 सफ़ा 96) की एक फ़स्ल में इस अम्र का ज़िक्र है कि कौन से मौक़ों पर झूट बोलना जायज़ है। इस से साफ़ अयाँ है कि अल-ग़ज़ाली के नज़्दीक कम-अज़-कम सदाक़त के अहाते में "मक़्सद से वसाइल रास्त ठहरते हैं।" चुनान्चे उसने ये तहरीर किया कि झूट बज़ात-ए-ख़ुद हराम नहीं बल्कि इस वजह से हराम है कि सुनने वाले को बद-नताइज की तरफ़ ले जाता है और उसे ऐसी बात का यक़ीन दिलाता है जो फ़िल-हक़ीक़त दुरुस्त नहीं। बाज़-औक़ात नादानी पैदा हो तो वो जायज़ है। बाज़-औक़ात झूट बोलना फ़र्ज़ में दाख़िल है। मैमून इब्ने महरां का क़ौल है :-

"बाज़-औक़ात झूट सच्च से बेहतर है। मसलन अगर कोई
आदमी तुम्हें मिले जो किसी शख़्स को क़त्ल करने की तलाश में

है और वो तुमसे उस शख़्स का पता पूछे तो तुम क्या जवाब दोगे? लाकलाम तुम यूं जवाब दोगे, क्योंकि ऐसा झूट जायज़ है।"

अगर झूट और रास्ती दोनों से नेक नतीजा निकले तो तुम सच्च बोलो क्योंकि ऐसी हालत में झूट बोलना मना है। अगर झूट ही एक वाहिद तरीक़ा हो नेक नतीजे तक पहुंचने का तो वो हलाल है। झूट उस वक़्त जायज़ है जब फ़र्ज़ अदा करने का वो वाहिद तरीक़ा हो। मसलन अगर कोई मुसलमान किसी बे-इन्साफ़ शख़्स के सामने से भाग जाये और तुमसे उस का पता पूछा जाये तो उस की जान बचाने के लिए झूट बोलना लाज़िमी है। अगर जंग का फ़ैसला, दो जुदा शूदा दोस्तों के मिलाप या किसी मज़्लूम की हिफ़ाज़त झूट बोलने पर मौक़ूफ़ हो तब झूट जायज़ है। सारे मुआमलात में हम बड़ी ख़बरदारी करें कि जहां ज़रूरी ना हो हम झूट ना बोलें मबादा वो हराम ठहरे। अगर कोई शरीर शख़्स किसी से उस की दौलत के बारे में सवाल करे तो वो कह दे कि इस के पास दौलत नहीं। वैसे ही अगर सुल्तान किसी से ऐसे जुर्म के बारे में दर्याफ़्त करे जिसका वो मुर्तक़िब हुआ है तो वो उस के सामने इन्कार कर के ये कहे, मैंने चोरी नहीं की हालाँकि उसने उस की है और ना कोई बदी की है, हालाँकि उसने की है। नबी ने ये फ़रमाया जिससे कोई शर्मनाक फ़ेअल सरज़द हो वो उसे छुपा ले क्योंकि एक शर्मनाक फ़ेअल को ज़ाहिर करना भी शर्मनाक है। आदमी दूसरों के गुनाह का भी इन्कार करे बीवीयों के माबैन सुलह कराना फ़र्ज़ है अगरचे उसे उनमें से हर एक को ये कहना पड़े कि वो इस को सबसे ज़्यादा प्यार करता है और इस को ख़ुश करने के लिए वाअदे करने पढ़ें।

जब सच्च बोलने से नाख़ुशगवार नताइज निकलते हों तो झूट बोलना फ़र्ज़ है अपनी ख़ुशी के लिए झूट बोलना या दौलत की तरक़्क़ी या शौहरत के लिए झूट बोलना मना है एक जोरू (बीवी) अपने ख़ावंद के लिए झूट ना बोले ताकि दूसरी जोरू (बीवी) को चढ़ाए। बच्चों को फुसला कर स्कूल भेजने के लिए झूट बोलना जायज़ है नीज़ झूटे वाअदे और झूटी धमकी देना भी।

तालीम व तर्बीयत के बारे में अल-ग़ज़ाली ने जो कुछ बयान किया इस से उस की तालीम का एक और पहलू नज़र आता है। किताब "अहया" (जिल्द सोम सफ़ा 53) में एक ख़ास फ़स्ल है जिसमें बच्चों की तालीम और उनकी अख़्लाक़ी तरक़्क़ी का ज़िक्र है। ये जाये ताज्जुब नहीं कि लड़कीयों की तालीम के बारे में उसने कुछ नहीं लिखा क्योंकि

बहुत मुसलमान उलमा अब तक लड़कीयों की तालीम को मुनासिब नहीं समझते कि वो लिखना पढ़ना सीखें। इस फ़स्ल का शुरू इस तरह से है :-

"ये जानना निहायत ज़रूरी है कि लड़कों की तर्बीयत कैसे करें क्योंकि लड़का अपने बाप के हाथों में एक अमानत है और उस का साफ़-दिल एक क़ीमती जोहर है मिस्ल उस तख़्ती के जिस पर लिखा नहीं गया। इसलिए वो इस क़ाबिल है कि जो कुछ इस पर लिखना चाहो वो लिख दो अगर वो नेकी करना सीखता है और उसे ये सिखाया जाता है और इस का नश्वो नुमा उसी मुताबिक़ होता है तो वो इस दुनिया में और अगली दुनिया में ख़ुशहाल है और उस के वालदैन और उस्तादों को इस की तालीम के लिए अज्र मिलेगा। लेकिन अगर वो बदी सीखता है और बेज़बान मवेशी की तरह उस की तरफ़ से ग़फ़लत होती है तो वो सदाक़त से रु गर्दान हो कर तबाह होगा और इस का गुनाह उस के मुतवल्लीयाँ की गर्दन पर होगा।"

अल्लाह ने ये फ़रमाया "ईमानदारों अपनी और अपने ख़ानदान की हिफ़ाज़त आग से करो। जैसे बाप इस दुनिया की आग से अपने बेटे की हिफ़ाज़त करता है तो कितना ज़्यादा आइन्दा जहां की आग से उस को बजाने की सई (कोशिश) करना चाहीए? वो यूं उस की हिफ़ाज़त कर सकता है कि उस को तंबीया करे उसे तालीम दे और आला नेकियां उसे सिखाए। इस ग़र्ज़ के हासिल करने के लिए वो उसे किसी नेक दीनदार दाया के सपुर्द करेगा जो मुनासिब ग़िज़ा खाती है, क्योंकि हराम ग़िज़ा से जो दूध पैदा होता है उस में कोई बरकत नहीं होती।"

फिर उसने ये बयान किया कि लड़के की तर्बीयत व तालीम इन उमूर पर मुश्तमिल है। दस्तर-ख़्वान के आदाब सिखाना, हराम खानों पुर ख़ोरी, और बद-अख़्लाक़ी से परहेज़ करना, उसने वालदैन को ये नसीहत दी कि वो बच्चों को क़ीमती लिबास ना पहनाएं बल्कि सादा लिबास। चुनान्चे उसने ये लिखा :-

"इन बातों के सिखाने के बाद उसे ऐसे स्कूल में भेजना मुनासिब होगा जहां वो क़ुरआन सीखे और अहादीस की तालीम हासिल करे और सादिक़ों की कहानियां और सवानिह उम्रियाँ सीखे ताकि दीनदारी की मुहब्बत उस के दिल पर नक़्श हो जाये, गंदा नज़्म पढ़ने से रोका जाये और ऐसे तालीम याफ़्ता लोगों की सोहबत से किनारे रहे जिनके ज़ोअम में ऐसी गुमराह करने वाली नज़्म मुफ़ीद और तरक़्क़ी बख़्श है। बल्कि

बरअक्स इस के ऐसी किताबों से बचा के दिल में फ़साद के बीज बोए जाते हैं। जब कभी लड़के में कोई ख़ूबी नज़र आए या इस से कोई क़ाबिल-ए-तारीफ़ फ़ेअल सरज़रद हो तो उस की तारीफ़ की जाये और उस को इनाम दिया जाये ताकि उस का दिल ख़ुश हो जाये और ख़ासकर दूसरों के सामने ऐसा करना मुनासिब है। अगर बरअक्स इस के एक या ज़्यादा बार इस के बरअक्स फ़ेअल सरज़रद हो तो उस को नज़र-अंदाज करें और ना उस का क़सूर उस को जताएं गोया तुम ये ख़याल करते हो कि कोई शख़्स ऐसे फ़ेअल की जुर्आत ना करेगा ख़ासकर उस वक़्त जब कि लड़का ख़ुद उसे छुपाता है और छिपाने का उसने अज़्म कर लिया है क्योंकि उस का पर्दा फ़ाश करने से आइन्दा को उस के इर्तिकाब में ज़्यादा दिलेर हो जाएगा। अगर उस से बार-बार वो क़सूर सरज़रद हो तो उस को पोशीदा सज़ा दी जाये।"

ये अजीब अख़्लाक़ी तालीम है। इस में नेक व बद नसीहत मिली हुई है और ये भी ऐसे शख़्स की तरफ़ से जो इस्लामी अख़्लाक़ में आला रुक्न और बड़ी सनद माना गया। इस्लामी इल्म व अदब में और नीज़ अल-ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात में ब्याह शादी के आदाब का बहुत ज़िक्र है। हर मुसलमान को ब्याह करने की ताकीद है और तजर्रुद (तन्हाई, शादी ना करना) की ताईद नहीं की गई। नबी मुहम्मद ने कहा, "ब्याह मेरा दस्तूर है और जो इसे नापसंद करता है वो मेरी उम्मत में से नहीं।" दूसरी हदीस में ये लिखा है, "ब्याह निस्फ़ हक़ीक़ी दीन है।" मुसलमान फ़क़ीरों के फ़िर्क़े के लोग भी उमूमन ब्याह करते हैं। इसलिए सूफ़ियों में तजर्रुद के अहद का कोई ज़िक्र पाया नहीं जाता। इस्लामी फ़िक़्ह के मुताबिक़ ब्याह एक अहदनामा है जिसके ज़रीये "ख़ावंद जोरू का मालिक बन जाता है और इस से ख़त उठाने का मजाज़ है बशर्ते के इस में कोई शरई रुकावट ना हो।" ख़ुद अल-ग़ज़ाली ने ये कहा :-

> "ब्याह एक क़िस्म की गुलामी है क्योंकि जोरू अपने शौहर की ग़ुलाम बन जाती है और जोरू का फ़र्ज़ है कि जो कुछ उस का शौहर कहे मुतल्लिक़न (बिल्कुल) उस की इताअत करे बशर्ते के वो हुक्म इस्लामी क़वानीन के ख़िलाफ़ ना हो।"

जोरू के इंतिख़ाब के लिए उसने औरत में मुफ़स्सिला ज़ैल (ذیل) सिफ़ात देखने की हिदायत अपने शागिर्दों को की। (1) दीनदारी (2) नेक-चलनी हुस्न (4) मामूली दहेज़

(जहेज़) (5) बच्चा जनने की क़ाबिलीयत (6) कुँवारापन (7) शरीफ़ ख़ानदान (8) क़रीबी रिश्तेदार ना हो। "अहया" और दूसरी किताबों में अल-ग़ज़ाली ने उन फ़राइज़ का ज़िक्र किया है। जो शौहर के जोरू पर हैं और जोरू के शौहर पर हैं। इस तालीम के मुताबिक़ शौहर का फ़र्ज़ है कि बारह उमूर में अपनी जोरू के साथ हद एतिदाल को मद्द-ए-नज़र रखे यानी इन उमूर में ना शफ़क़त हद से ज़्यादा हो और ना सख़्ती हद से ज़्यादा हो। (1) ब्याह की ज़ियाफ़त (2) सुलूक (3) लहू व लअब (खेल कूद, सैरो तमाशा) (4) अपनी इज़्ज़त का पास (5) ग़ैरत (6) नक़द वज़ीफ़ा (7) तालीम (8) हर जोरू को उस के हुक़ूक़ देना (इस्लामी मअनी में) (9) तंबीया (10) क़वानीन मुबाशरत (11) ज़च्चगी (12) तलाक़। एक मुक़ाम में उसने ये लिखा कि अगर जोरू नाफ़र्मान और ज़िद्दी हो तो शौहर को उसे सज़ा देने और इताअत के लिए मज्बूर करने का हक़ हासिल है लेकिन वो बतद्रीज उस से काम ले। पहले नसीहत करे ताकीद करे धमकए। तीन दिन तक उस से बातचीत ना करे। यहां तक उस को ज़द व कोब (मार पीट) करे कि उसे दर्द महसूस हो लेकिन उस के चेहरे पर ज़ख़्म ना आने पाए, ना कस्रत से ख़ून बहने लगे, ना उस की हड्डी टूटे। तलाक़ और गुलामी के बारे में अल-ग़ज़ाली की तालीम बिल्कुल मुसलमानी है और बहुत कुछ तर्जुमे के क़ाबिल भी नहीं इतना कहना काफ़ी है कि वो दीगर मुस्लिम आलमाँ फ़िक़्ह के साथ मुत्तफ़िक़-उल-राए है कि मुश्तज़नी और बाज़ औक़ात के दीगर गुनाहों को माज़ूर रखे बल्कि यहां तक उसने कहा कि गुनाह कबीरा से बचने के लिए इन गुनाहों का इर्तिकाब फ़र्ज़ हो जाता है।

ज़न व मर्द के रिश्ते के इस इस्लामी तसव्वुर के बावजूद भी हम अल-ग़ज़ाली की इज़्ज़त करते हैं क्योंकि उस ने जोरू से मुहब्बत का सुलूक रखने की ताकीद की और तलाक़ की ख़राबियां ज़ाहिर कीं। ये मालूम करने को तो जी चाहता है कि आया उस के पास एक से ज़्यादा बीवीयां थीं। आया उस की बीवी उस की क़ाबिल रफ़ीक़ या वो उस का क़ाबिल रफ़ीक़ था, जिन्हों ने उस की सवानिह उम्रियाँ लिखीं वो इस अम्र में खामोश हैं।

"आदमी अपनी जोरू से सुलूक के साथ रहे लेकिन इस का ये मतलब नहीं कि वो उसे कभी रंज ना पहुंचाए लेकिन अगर जोरू से कुछ तक्लीफ़ पहुंचे ख़्वाह उस की नादानी से ख़्वाह ना शुक्रगुज़ारी से, सब्र से उस की बर्दाश्त करे। औरत कमज़ोर मख़्लूक़ है और पोशीदगी की ख़्वाहां। इसलिए सब्र से उस की बर्दाश्त करनी चाहिए और उस को पर्दे में

रखें। नबी ने ये कहा, "जो कोई अपनी बीवी की बद-मिज़ाजी की बर्दाश्त सब्र से करता है उस को ऐसा सवाब हासिल होगा जैसे अय्यूब को अपनी मुसीबतों की बर्दाश्त से हासिल हुआ था।" बिस्तर-ए-मृग पर भी वो ये कहता सुना गया "नमाज़ में लगे रहो अपनी बीवीयों से अच्छा सुलूक करो क्योंकि वो तुम्हारी क़ैदी हैं।"

दानाओं ने ये कहा है "औरतों से मश्वरत करो और जो वो सलाह दें उस के ख़िलाफ़ अमल करो।" अल-ग़र्ज़ औरतों में कुछ कजी (छोटा कूज़ा) पाई जाती है और अगर उनको ज़रा भी आज़ादी मिले तो वो क़ब्ज़े में से निकल जाती हैं और उनको क़ाबू में लाना मुश्किल हो जाता है। इसलिए उनके साथ बर्ताव करने में सख़्ती और नर्मी, ख़ासकर नर्मी, दोनों चाहीए। नबी ने ये फ़रमाया "औरत कज (टेढ़ी, तिरछी) पिसली से बनाई गई। अगर तुम उस को ख़म करने की कोशिश करोगे तो वो टूट जाएगी अगर तुम उस को आज़ाद छोड़ोगे तो वो ज़्यादा कज होती जाएगी इसलिए नर्मी से उस के साथ बर्ताव करो।"

तलाक़ देने में निहायत ही बड़ी एहतियात करनी चाहीए। क्योंकि गो तलाक़ की इजाज़त है तो भी ख़ुदा उसे नापसंद करता है। क्योंकि ऐन ये लफ़्ज़ "तलाक़" औरत को रंज देता है और किसी को रंज देना कैसे दुरुस्त हो सकता है? जब तलाक़ की अशद ज़रूरत पड़े तो तलाक़ का फ़त्वा एक ही वक़्त तीन दफ़ाअ ना दिया जाये बल्कि तीन मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर। औरत को शफ़क़त के साथ तलाक़ दे ना ग़ुस्से या हिक़ारत से और ना बिला माक़ूल वजह के। तलाक़ के बाद वो अपनी बीवी को कुछ तोहफ़ा दे और दूसरों से ये ना कहे कि फ़लां-फ़लां क़सूर के बाइस उसे तलाक़ दिया गया। किसी ख़ास शख़्स का ज़िक्र है जिसने तलाक़ के लिए दरख़्वास्त की थी जब लोगों ने उस से पूछा कि तूम क्यों उसे तलाक़ दे रहे? तो उसने जवाब दिया कि "मैं अपनी बीवी का राज़ फ़ाश ना करूँगा और जब वो तलाक़ दे चुका तो लोगों ने फिर उस से यही सवाल किया और उसने ये जवाब दिया कि "अब वो मेरे लिए बेगाना है और मुझे उस के ख़ानगी उमूर से कुछ वास्ता नहीं।"

ज़िंदगी के सारे रिश्तों, उस की इशरतों और फ़राइज़ का ज़िक्र अदब की किताबों में आया है, हर बैरूनी फ़ेअल की तफ़्सील दी है और हर एक के लिए नबी के अमल को नमूना ठहराया है। मसलन अनार को ठीक कैसे खाना चाहीए, कैसे हमाम करना, कैसे

मिस्वाक करना, यहूदीयों और ईसाईयों से कैसे बर्ताव करना, ये सारी बातें इस्लामी इल्म अख़्लाक़ में आई हैं। नाज़रीन के लिए एक मोअस्सर मिसाल पेश करते हैं।

उस की तस्नीफ़ "कीमया-ए-सआदत" में एक बाब रक़्स व सरोद (नाच रंग, गाना बजाना) के बारे में है कि वो दीनी ज़िंदगी में मुमिद (मददगार, मुआविन) हैं।

मौसीक़ी साज़ों के मसअले पर अल-ग़ज़ाली के दिनों में वैसी ही बहस होती रही जैसे आजकल उन मसीहीयों के दर्मियान है जिनको अंदेशा है कि सीटियों की आवाज़ों से ख़ुदा के घर की तहक़ीर होती है। उलमा-ए-दीन में इस पर बहुत बहस रही कि दीनी रियाज़तों में रक़्स व सरोद से क्या मदद मिल सकती है। मुफ़स्सला-ए-ज़ैल इबारत से अल-ग़ज़ाली की अक़्ल-ए-सलीम और ज़राफ़त तबअ (ख़ुश-मिज़ाजी) का सबूत मिलता है और साथ ही उस के मुश्तबा नतीजे का, क्योंकि वो ऐसी इश्क़िया नज़्म को भी जायज़ ठहराता है जो ख़ुदा के जलाल के लिए गाई जाये।

"क़ादिर-ए-मुतलक़ ख़ुदा ने इन्सान का दिल चक़माक़ के पत्थर की तरह साख़त किया है, उस में आग पोशीदा है जो सरोद (गाना) और अल-हान (अच्छी आवाज़ से गाना) पढ़ने के ज़रीये भड़क उठी है और इन्सान को बे-ख़ुदी की हालत में डाल देता है। ये अल-हान हुस्न के उस जहां की सदाएँ हैं जिसे हम आलम-ए-अर्वाह कहते हैं ये आदमी को याद दिलाती हैं कि उस का रिश्ता उस आलम से है और उस में ऐसा गहिरा जज़्बा पैदा करती हैं कि वो ख़ुद इस की तशरीह में क़ासिर है। रक़्स व सरोद का असर इसी निस्बत से गहिरा होता है जिस क़द्र कि सुनने वाले का दिल सादा और क़ाबिले असर होता है दिल में जो मुहब्बत छिपी होती है वो इस के ज़रीये मुश्तइल हो जाती है। ख़्वाह ये आग ख़ाकी और नफ़्सानी हो ख़्वाह इलाही व रुहानी।"

फिर ऐसे उमूर का ज़िक्र जहां रक़्स व सरोद के ज़रीये दिल में मख़्फ़ी (छिपी) बद ख़्वाहिशात मुश्तइल हो गईं और फिर उन उमूर का जो बिल्कुल जायज़ थीं, हाजियों में से ऐसे शख़्स हैं जो मक्का में बैतुल्लाह की तारीफ़ के गीत गाया करते हैं और दूसरों को हज पर जाने की तर्गीब देते हैं और ऐसे मुत्रिबों का ज़िक्र किया जिनके गाने बजाने से उन के सामईन के सीने में जंगी जोश पैदा होता है और सामईन को काफ़िरों के साथ जंग करने पर उक्साते हैं। वैसा ही मातमी मौसीक़ी जिसके ज़रीये दीनी ज़िंदगी में गुनाह और क़सूर के लिए ग़म पैदा हो वो जायज़ है। दाऊद का मौसीक़ी इस क़िस्म का था

लेकिन जिन मर्सियों के ज़रीये मर्दों के लिए ग़म अफ़ज़ूद (ज़्यादा हो) वो जायज़ नहीं। क्यों कि क़ुरआन में यूं लिखा है, "जो कुछ तुमसे खो गया इस पर मायूस ना हो।" बरअक्स इस के ब्याह शादी की तक़रीब पर और खतना और सफ़र से वापिस आने के मौक़ों पर ख़ुशी का गाना बजाना जायज़ है।

जिस हालत बेखुदी और वज्द में सूफ़ी साहिबान पड़ते हैं वो उनके जज़्बात के मुताबिक़ मुख़्तलिफ़ दर्जे की होती है, मसलन मुहब्बत, ख़ौफ़, आरज़ू, तौबा वग़ैरह जैसा हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं ऐसी हालतें ना सिर्फ क़ुरआन की आयात सुनने का नतीजा हैं बल्कि काफ़ीयाँ सुनने का। बाज़ों ने तो ऐसे मौक़ों पर नज़्म और क़ुरआन को अल-हान के साथ पढ़ने पर भी एतराज़ किया है। लेकिन ये याद रखें कि क़ुरआन की सारी आयात ऐसे जज़्बात मुश्तइल (भड़कने वाला, शोले मारने वाला) करने के क़ाबिल नहीं मसलन क़ुरआन का ये हुक्म कि "आदमी अपनी वालिद के लिए जायदाद का छटा हिस्सा छोड़े अपनी हम-शीरा (बहन) के लिए आधा या ये हुक्म कि बेवा दूसरी शादी करने से पेश्तर अपने ख़ावंद की वफ़ात के बाद चार माह तक इंतिज़ार करे। जिन लोगों में ऐसी आयात के सुनने से हालत वज्द पैदा हो वो शाज़ व नावर हैं।" बेशक।

अल-ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात के पढ़ने से उस के नक़ीज़ और ज़िद्दीन बयानात पर ताज्जुब आता है। बाज़ औक़ात तो वो हमें ऐसी बुलंद चोटियों पर ले जाता है जिन पर आस्मान के नूर की झलक पड़ रही है यानी तौहीद की आला तालीम और अबदीयत के तसव्वुरात और फिर वो हमें नफ़्सानियत और दुनियावी झगड़ों के दलदल में झोंक देता है। ये ख़यालात उस की क़लम के शायां ना थे।

हम पहाड़ की बुलंद चोटी पर जाएं जहां हवा ज़्यादा सेहत बख़्श है। दूसरे उमूर में अल-ग़ज़ाली का ख़्वाह कुछ ही क़सूर हो लेकिन इस्लामी नुक़्ता ख़याल से तहसील अख़्लाक़ के लिए उसे आला तसव्वुर हासिल थे। "केमिया-ए-सआदत" में उसने ये लिखा,

> "जब परहेज़गारी की सलीब पर रूह शहवात नफ़्सानी से पाक हो जाती तो वो बुलंद चोटी पर जा पहुँचती है और शहवत व ग़ज़ब का शिकार होने की बजाय वो सिफ़ात मलकूती (फ़रिश्तों) जैसी से मुलब्बस हो जाती है। इस हालत को हासिल करके आदमी उस अज़ली अबदी हुस्न के ध्यान में आस्मान में

> पहुंच जाता है और जिस्मानी ख़ुशीयों के जहान से निकल जाता है। जो रुहानी कीमिया आदमी में ये तब्दीली पैदा करती है देसी है जैसे किसी बूटी के ज़रीये ताँबा सोना बन जाता है। वो आसानी से हासिल नहीं होती और ना हर एक बढ़िहिया के घर में दस्तयाब होती है।"

और इस आला तसव्वुर की तहसील में उसे यक़ीन है कि उसे जंग करना पड़ेगा। आसान मंज़िलों से ये मक़्सद हासिल नहीं होता। जज़्बात नफ़्सानी के साथ जंग हक़ीक़ी है और बहुत क़ुर्बानी मतलूब है। इस जंग-ए-मुक़द्दस की तस्वीर उसने तक़रीबन वैसी ही खींची है जैसी जान बनीन साहब ने। "इस रुहानी जंग के जारी रखने के लिए जिसके ज़रीये अपना और ख़ुदा का इर्फ़ान हासिल होता है बदन को एक सल्तनत से तश्बीह दे सकते हैं रूह उस का बादशाह है और मुख़्तलिफ़ हवास और क़वा (ताक़त) उस की फ़ौज हैं। अक़्ल उस की वज़ीर है। जज़्बा उस का महसल (महसूल वसूल करने वाला, तहसील) का सिपाही और ग़ुस्सा उस का कोतवाल (पुलीस का वो ओहदेदार जिसके मातहत कई थाने हों), ख़राज जमा करने के भेस में जज़्बा हमेशा अपनी तरफ़ से लूट मार पर तुला रहता है और ख़फ़गी हमेशा सख़्ती और तशद्दुद पर माइल है। ये दोनों यानी महसल और कोतवाल बादशाह के क़ाबू में रहने चाहीए। लेकिन इनको क़त्ल या ख़ारिज करना दुरुस्त नहीं क्यों कि इनके भी फ़राइज़ मन्सबी तक्मील के लिए हैं। लेकिन अगर जज़्बा और ग़ुस्सा अक़्ल पर ग़लबा हासिल करें तो इस का लाज़िमी नतीजा रूह की बर्बादी होगा। जो रूह अपने अदना क़वा (ताक़त) को आला क़वा पर ग़ालिब होने देती है वो उस शख़्स की मानिंद है जो फ़रिश्ते को कतुए के इख़्तियार में रख दे या मुसलमान को बेईमान के ज़ुल्म के हवाले करे।"

इस लिए ये जंग जिस्म और रूह के दर्मियान है। मुक़द्दस पौलुस की तरह अल-ग़ज़ाली का भी ये तजुर्बा हुआ होगा "जिस नेकी का इरादा करता हूँ वो तो नहीं करता मगर जिस बदी का इरादा नहीं करता उसे कर लेता हूँ।" आला और अदना ज़ातों के दर्मियान जो अंदरूनी जंग है वो उस से वाक़िफ़ था। बार-बार उसने बदन और रूह का मुक़ाबला किया और बताया कि एक दूसरे पर ग़लबा हासिल करने की जद्दो जहद में रहे। दोनों ख़ुदा की तरफ़ से हैं और उस की तरफ़ से इनाम हैं। दोनों के ज़रीये ख़ुदा की

हिक्मत और क़ुद्रत ज़ाहिर होती है लेकिन उनकी हक़ीक़ी क़द्र व क़ीमत में ज़मीन व आस्मान का फ़र्क़ है।

"बदन तो रूह की सवारी का सिर्फ मुरक्कब है। मुरक्कब तो फ़ना हो जाता है रूह बाक़ी रहती है। रूह बदन की ख़बरगीरी करे जैसे हाजी मक्का की तरफ़ सफ़र करते हुए अपने ऊंट की ख़बरगीरी करता है लेकिन अगर हाजी अपना सारा वक़्त इस हैवान के खिलाने पिलाने में सर्फ करे तो वो कारवां के पीछे रह जायेगा और ब्याबान में फ़ना होगा।"

चार बड़ी नेकियां जो दीगर सब सिफ़ात की माँ हैं। बक़ौल अल-ग़ज़ाली ये हैं :-

"हिक्मत, परहेज़गारी, शुजाअत, एतिदाल (यानी हद औसत)"

ये तक़्सीम उसने अफ़लातून से ली और ऐसा ही बहुत कुछ चाल चलन के बारे में उन सबकी तशरीह उसने क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में की है और मुहम्मद की ज़िंदगी और इस्लाम के पहले बुज़ुर्गों और माबाअ्द सूफ़िया किराम के ज़िंदगीयों से उनको वाज़ेह किया।

बदियों और उनकी ज़िद नेकियों का ज़िक्र करने में उसने कमाल किया। ग़ुरूर और फ़ख़्र का जो बयान उसने लिखा उस को पढ़ने से मालूम हो सकता है कि उसने अपने तजुर्बे का बयान किया है। "जिसके दिल में राई के दाने के बराबर भी ग़ुरूर हो वो बहिश्त में कभी दाख़िल ना होगा।" और उस का दूसरा क़ौल ये है "ख़ुदा तआला ने फ़रमाया ग़ुरूर मेरा चोग़ा है और अज़मत मेरा लिबादा और जो कोई इनमें से किसी को मुझसे छीन लेता है मैं उसे दोज़ख़ में डालूँगा और मैं कुछ परवाह ना करूँगा।" एक दूसरा क़ौल जो मुहम्मद साहब से मन्सूब है और ग़ालिबन इन्जील से लिया गया ये है "जो कोई ख़ुदा के सामने अपने आपको फ़रोतन करता है। ख़ुदा उसे सर्फ़राज़ करेगा और जो कोई मग़ुरूर है उस को वो पस्त करेगा।" फ़िरोतनी की जो तारीफ़ उसने की वो भी अह्सन है "हक़ीक़ी फ़िरोतनी सदाक़त के ताबे होगी और अगर एक बाज़ारी लड़का भी उस की ग़लती निकाले तो उसे क़ुबूल करे।" इस क़रीना (बहमी ताल्लुक़) में उसने यसूअ का एक क़ौल भी नक़्ल किया। "मसीह ने कहा, वो शख़्स मुबारक है जिसे ख़ुदा ने अपनी किताब सिखाई वो कभी अपने ग़ुरूर में ना मरेगा।"

ग़ुरूर का मतलब तरीक़ों से बयान किया। अल-ग़ज़ाली ने इल्म का, इबादत का, क़ौम का, ख़ानदान का, हुस्न का, लिबास का, दौलत का, जिस्मानी ताक़त का, पेशवाई का ग़ुरूर बताया उसने मुहम्मद साहब को फ़िरोतनी का नमूना ठहराया और नीज़ अबू सईद ख़ुदरी को जिसने कहा :-

> "ऐ मेरे बेटे ख़ुदा के लिए खा, ख़ुदा के लिए पी, ख़ुदा के लिए कपड़ा पहन लेकिन इनमें से जो कुछ तू करता है अगर इस में तकब्बुर का या रियाकारी का दख़ल हो तो वो ना फ़रमानी में शुमार होगा। जो कुछ तू अपने घर में करे तो ऐसा ही कर जैसा रसूल-ए-ख़ूदा ने किया क्योंकि वो बकरीयों को दोहते और अपनी जूतीयों की मुरम्मत करते और अपने चोग़ा को सीते और अपने नौकरों के साथ खाते। बाज़ार में सौदा ख़रीदते थे ना उनके फ़ख़्र ने उनको अपना बोझ उठा कर घर ले जाने से रोका। वो अमीर और ग़रीब दोनों को दोस्त रखते और जब कोई उनको राह में मिलता तो वो सबसे पहले ख़ुद सलाम करते वग़ैरह।"

ये क़ाबिल-ए-ग़ौर है कि जहां उसने अपनी आला अख़्लाक़ी तालीम का ज़िक्र किया उसने अपने बयान का हिस्र मसीह के अक़्वाल (एपोक्रिफल अक़्वाल) पर रखा। जिन को हम ने आख़िरी बाब में दिया है। अल-ग़ज़ाली ने मुहम्मद में अपने दिल के आला तसव्वुरात की तक्मील पाने की कोशिश तो बहुत की लेकिन नाकाम रहा। इस्लाम का ये अफ़्सोसनाक अंजाम है।

बाब हफ़्तुम

अल-ग़ज़ाली बहैसीयत सूफ़ी

जॉर्ज टेरल (George Tyrrel) ने तसव्वुफ़ की ये तशरीह की है :-

> "तसव्वुफ़ एक दीन है और मज़ाक़ के लोगों के लिए पनाह है जिन्हें ये मुम्किन नहीं होता कि बैरूनी सनद पर इन्हिसार

रखें। मुकाशफ़ा से रद्द गर्दान होने पर या तो तसव्वुफ़ को चुनना पड़ेगा या माक़ूल पसंदी (Rationalism) को। ये सच्च है कि इन उमूर में ये इंतिख़ाब की बात तो नहीं जैसा कि इन दोनों फ़रीक़ में से मुतअस्सिब अस्हाब का गुमान है। इन दोनों में जो फ़र्क़ पाया जाता है वो बहुत कुछ आदमी के अपने मिज़ाज पर मौक़ूफ़ है या शायद ये कहें कि दर्जा हरारत पर सूफ़ी तो गर्म होता जाता है और माक़ूल पसंद (Rationalistic) ठंडा पड़ता जाता है। माक़ूल पसंद को ज़रा गर्मा दो तो वो ज़रूर सूफ़ी बन जाएगा। और सूफ़ी को ज़रा ठंडा कर दो तो वो माक़ूल पसंद ही बाक़ी रह जाएगा। ख़याल की तारीख़ ने बार-बार उस की तशरीह कर दी कि कैसी आसानी से एक हालत से दूसरी हालत में मुंतक़िल हो सकते हैं। हर एक का मर्कज़ वो ख़ुद ही है और इन्सानी अनानीयत (ग़ुरूर) ऐसी बड़ी नहीं जो इतना बड़ा फ़र्क़ पैदा कर दे जहां तुम अपना मर्कज़ अपने अंदर ही पाते हो। तो भी चूँकि तसव्वुफ़ आदमी को गर्मा देता है इसलिए उस की बे-मर्कज़ी हालत दीनी मज़ाक़ के अश्ख़ास के लिए ज़्यादा दिलकश है।"

Beujamin B. Warfield in the Princeton Theological Review

इस्लाम में सबसे क़दीम सूफ़ियों में से एक ख़ातून रबीया नाम थी जो यरूशलेम में मदफ़ून है। उस का अस्ल वतन बस्रा था। और उसने इस्लाम की दूसरी सदी में बमुक़ाम यरूशलेम वफ़ात पाई। इब्ने ख़लीफ़ान के बयान के मुताबिक़ वसती ज़मानों में उस की क़ब्र की ज़ियारत के लिए लोग जाया करते थे और ग़ालिबन अल-ग़ज़ाली ने भी उस की ज़ियारत की। उस के चंद शेअर किताब "अहया" में मन्क़ूल हैं जिनका तर्जुमा ये है :-

"मैं दो तरीक़ों से तुझे प्यार करती हूँ एक तो मजाज़ी इस का भी तू मुस्तहिक़ है। ये मजाज़ी मुहब्बत है कि हर ख़याल के साथ में सिवाए तेरे और किसी का ख़याल नहीं करती ख़ालिस पाक मुहब्बत वो है जब तू मेरी मदाह निगाह के आगे हिजाब को

उठा देता है।" ना इस में और ना उस में मेरी कोई तारीफ़ है मैं ये जानती हूँ कि दोनों में तेरी मुहब्बत है।"

ये नाम सूफ़ी मुसलमानों में अबू ख़ैर के वसीले आया जो दूसरी सदी हिज्री के आख़िर में ज़िंदा था। उस के शागिर्द सूफ का लिबास पहना करते थे और इसी लिए इनका नाम सूफ़ी हुआ। इस से माबाअ्द सदी में अल-जुनैद जिसको अल-ग़ज़ाली ने बड़ी सनद माना (297 हिज्री) इस तहरीक का बड़ा पेशवा था और तहरीक इस्लाम में बहुत फैल गई। इस्लामी मुजर्रिद तौहीद और रस्म परस्ती से तंग आकर लोगों ने इस तहरीक में हिस्सा लिया। क्योंकि जिन मशरिक़ी क़ौमों ने इस्लाम को क़ुबूल किया उनके दिलों को इस्लाम की ऐसी तालीम से तश्फ़ी ना हुई। इस नई तालीम के वाइज़ जा-ब-जा गए और हर क़िस्म के लोगों से मिले इस तरीक़े से उन्होंने बहुत चश्मों से ख़यालात हासिल किए। अगरचे वो हमेशा ये इक़रार करते थे कि उनकी तालीम का हिस्र क़ुरआन और हदीस पर था।

निकल्सन साहब का ख़याल है कि मुसलमान सूफ़ियों ने ना सिर्फ मसीही दीन और नई अफ़लातूनी तालीम से बहुत ख़यालात लिए बल्कि गिनास्टिक (Gnostic) और बुध मज़्हब से भी। इन्जील की बहुत आयात और यसूअ के अक़्वाल (जो अक्सर एपोक्रिफल किताबों से लिए गए) क़दीम सूफ़ी किताबों में मन्क़ूल हैं। मसीहीयों से उन्होंने सूफ पोशी, अहद ख़ामोशी, और ज़िक्र (लतानियाह) को लिया और नीज़ दीगर रियाज़त के तरीक़े उनकी तालीम में बहुत बातें मसीहीयों के ख़यालात के मुशाबेह हैं। निकल्सन साहब का बयान है कि :-

"मुक़द्दस यूहन्ना और मुक़द्दस पौलुस और दीगर मसीही सूफ़ियों ने मसीह के बारे में जो ख़यालात ज़ाहिर किए वो मुसलमान सूफ़ियों ने बानी इस्लाम से मन्सूब किए। चुनान्चे मुहम्मद नूर-ए-ख़ुदा कहलाया और कि वो दुनिया की ख़ल्क़त से पहले मौजूद था वो सारी ज़िंदगी का चश्मा क़रार दिया (ख़्वाह वो ज़िंदगी बिलफ़अल हो या बालक़ूह) गया वो इन्सान कामिल कहलाया जिसमें सारी इलाही सिफ़ात का ज़हूर हुआ। और एक सूफ़ी हदीस में मुहम्मद साहब का क़ौल आया है कि "जिसने मुझे

देखा उसने ख़ुदा को देखा।" मगर इस्लामी तालीम में कलाम-ए-ख़ुदा (लोगोस) का मसअला कुछ अदना दर्जे का ठहरा और अयाँ है कि जब इन्सान को फ़र्ज़ कुल्ली ये समझ लिया गया कि ख़ुदा की वहदत का यक़ीन हासिल हो कलाम-ए-ख़ुदा का मसअला मुक़द्दम ना समझा जाएगा।"

नौ अफ़लातूनी तालीम से मसअला सदूर और वज्द को लिया सत्तर हज़ार हिजाबों की तालीम का मसअला जिसकी तशरीह एक दरवेश ने कैनन गार्ड (Canan Goirdner) से की। गिनास्टिक तालीम का ख़ास सुराग़ देता है। सत्तर हज़ार हिजाब अल्लाह को जो वाजिब-उल-वजूद हस्ती है आलम माद्दा और आलम हवास से जुदा करते हैं। और हर रूह अपनी पैदाइश से पेश्तर इन सत्तर हज़ार में से गुज़रती है। इनमें से बातिनी निस्फ़ तो नूर के हिजाब हैं। दीगर ज़ाहिरी निस्फ़ तारीकी के हिजाब। पैदाइश की तरफ़ आते वक़्त नूर के जिस-जिस हिजाब से रूह गुज़रती जाती है उस की एक-एक इलाही सिफ़त दूर होती जाती है और तारीकी के हिजाबों में से गुज़रते वक़्त रूह सिफ्ली (पस्ती, नालायक़) सिफ़ात को पहनती जाती है। इसलिए बच्चा रोता हुआ पैदा होता है क्योंकि रूह अल्लाह वाहिद हक़ीक़ी से जुदा होने को महसूस करती है और जब बच्चा ख़्वाब में रोता है तो इस की वजह ये होती है कि रूह को याद आता है कि उसने क्या कुछ खो दिया। इन हिजाबों में से गुज़रते वक़्त रूह को निस्यान (भूल, चूक) की सिफ़त हासिल हो जाती है और इसी वजह से इस का नाम इन्सान हुआ अब वो गोया बदन में मुक़य्यद (क़ैद) है और उन मोटे पर्दों के ज़रीये अल्लाह से जुदा है। लेकिन तसव्वुफ़ की इल्लत-ए-ग़ाई (हासिल, फल) या दरवेश का तरीक़ा ये है कि रूह इस क़ैद में से रिहाई पाए उन सत्तर हज़ार हिजाबों में से निकल जाये और उन बदन में रहते हुए वाहिद हक़ीक़ी से फिर वस्ल हासिल करे।

रहा बुध मज़्हब की तासीर का प्रोफ़ैसर गोल्ड ज़िहर (Gold Ziher) ने इस अम्र की तरफ़ तवज्जोह दिलाई है कि ग्यारवीं सदी में बुध मज़्हब की तालीम ने मशरिक़ी फ़ारस ख़ासकर बलख़ में जहां बहुत सूफ़ी रहते थे बड़ा असर किया। बुध मज़्हब वालों से तस्बीह का इस्तिमाल आया और शायद फ़ना का या ख़ुदा मैं महव (गुम) होने का मसअला भी। बक़ौल निकल्सन :-

> "अगरचे फ़ना का हमा ओसती मसअला निरवान (नजात) के मसअले से बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है तो भी जो अल्फ़ाज़ इनके लिए मुस्तअमल हुए हैं वो ऐसे मुशाबेह हैं कि हम इन दोनों को कुल्ली तौर पर एक दूसरे से ख़ारिज नहीं कर सकते। मसअला फ़ना का एक अख़्लाक़ी पहलू है ये सारे जज़्बात और तमन्नाओं के अदम पर मुश्तमिल है। सिफ़ात क़बीहा (बरी, मअयूब) और बद-आमाल जो इनसे पैदा होते हैं वो सिफ़ात हसना और आमाल हसना में क़ायम रहने से दूर हो जाते हैं।"

सूफ़ी मअनी में ख़ुदा पर ध्यान लगाने से सीरत की तर्तीब हासिल करना उनकी मंज़िल-ए-मक़्सूद है। ख़ुदा को जानना उस की मानिंद होना है और की मानिंद होने का कमाल महव है या हालत वज्द है। उनका एक मशहूर क़ौल ये था जो उनके नबी ने ख़ुदा से मन्सूब किया, "मैं छिपा ख़ज़ाना था और मैंने चाहा कि मैं मालूम हो जाऊं। इसलिए मैंने ख़ल्क़त पैदा की ताकि मैं मालूम हो जाऊं।" जैसे आलम का आईना है वैसा ही सूफ़ियों के नज़्दीक इन्सान का दिल आलम का आईना है अगर इन्सान ख़ुदा को या सदाक़त को जानना चाहे तो अपने दिल में नज़र डाले।

ख़ुद अल-ग़ज़ाली ने ये देखा जिस मक़्सद को सूफ़ी मद्द-ए-नज़र रखता है उनका ये बयान है :-

> "रूह को जज़्बात के ज़ालिमाना जुए से छुड़ाना उस की नारवा रग़बतों और बद ख़यालों से मख़लिसी देना ताकि पाक शूदा दिल में ख़ुदा के लिए और उस के मुक़द्दस नाम के ज़िक्र के लिए ही जगह बाक़ी रहे।"

चूँकि उनकी तालीम पर अमल करने की निस्बत इस तालीम का सीखना आसान था इसलिए जिन किताबों में उनकी तालीम पाई जाती थी मैंने पहले उन्हीं का मुतालआ किया। मसलन अबू तालिब मक्की की किताब "दिलों की ग़िज़ा।" हारिस अल-महसबी की तस्नीफ़ात, और जुनैद, शिबली, अबू, यज़ीद बुसतानी, और दीगर उलमा की (ख़ुदा उन रूहों को पाक करे) किताबों को पढ़ा उनके मालूमात का मैंने कामिल इल्म हासिल किया और मुतालआ और ज़बानी तालीम के तरीक़ों को जहां तक मुम्किन था मैंने सीखा और

ये साफ़ ज़ाहिर हो गया कि महज़ तालीम के ज़रीये आख़िरी मंज़िल तक नहीं पहुंच सकते बल्कि महवियत और वज्द के और बातिनी इन्सानियत की कामिल तब्दीली के ज़रीये। (सफ़ा 41 इक़रारात)

सूफ़ियों की तालीम में ये अम्र भी दाख़िल है कि मुहम्मद अन्नबी नूर की ज़ात में बनाए आलम से पेश्तर मौजूद था। अहादीस के मुताबिक़ जिस वक़्त आदमी ख़ाक व गल के दर्मियान था उस वक़्त मैं नबी था और मुझसे बाद कोई नबी नहीं सूफ़ियों की ये तालीम है कि मुहम्मद ख़ल्क़त से पेश्तर भी नबी था और वो अब तक नबी है चूँकि मुहम्मद को अंसर ऊला कहा इसलिए उस को बाअज़ नाम इसी लिहाज़ से दीए गए। मसलन अक़्ल-ए-कुल, रूह-उल-अज़ीम, सिदक़-ए-अल-इन्सान, साहिबे शआए नूर, नूर-ए-मुहम्मदी, ख़ुदा के जलाल ही से।

सूफ़ियों की सारी तालीम व अमल का मक़्सूद ये है कि ख़ुदा मैं महव (खोना, गुम) हो जाये या उस के साथ वस्ल हासिल करे। नफ़्स की कुल्ली नफ़ी के ज़रीये सदाक़त की तहसील का रास्ता साफ़ हो जाता है। ख़ुदा की तरफ़ इस सफ़र की मंज़िलें हैं जिनका शुमार उमूमन बताया जाता है। मसलन इबादत, मुहब्बत, नफ़ी, इर्फ़ान, वज्द, सिदक़, वस्ल, फ़ना। बाअज़ सूफ़ियों ने बैरूनी मज़्हब को बिल्कुल बाला-ए-ताक़ रख दिया और रस्मी और अख़्लाक़ी शरीअत की तरफ़ से बिल्कुल लापरवाही की लेकिन अल-ग़ज़ाली ऐसे ज़मुरे में से था बल्कि उसने ये तालीम दी कि आम आलिम शुरू सूफ़ी तरीक़े में दाख़िल नहीं हो सकता क्योंकि वो अब तक मसाइल का ग़ुलाम है और तारीकी में भटकता फिरता है। नमाज़, रोज़ा, हज मए सारे लवाज़मात के और उनके बजा लाने की रसूम के दुहरे मअनी हैं। एक ज़ाहिरी और रस्मी जिसे अवामुन्नास समझ सकते हैं और एक हक़ीक़ी रुहानी मअनी जिसे वही लोग समझ सकते हैं जो अपने तईं बिल्कुल ख़ुदा के सपुर्द करते हैं।

अल-ग़ज़ाली को तसव्वुफ़ के ख़तरात का कुल्ली इल्म था एक तरफ़ तो वो हमा औसत की तरफ़ ले जाता है और दूसरी तरफ़ बे-शरई की तरफ़ उसने मालूम कर लिया कि अख़्लाक़ व दीन को जुदा करना होलनाक था। इसलिए उमर ख़य्याम के इन शेरों से उसे सदमा पहुंचा होगा :-

“ऐ ख़य्याम तुम अपनी ख़राब ज़िंदगी पर क्यों रोते हो

ऐसी गिर्ये वज़ारी से क्या फ़ायदा बल्कि ख़ुश है जो

गुनाह नहीं करता वो रहमत का मुस्तहिक़ नहीं क्योंकि रहम तो

गुनाहगारों के लिए बना है।"

गुनाह और तौबा के बारे में उस की तालीम ज़्यादातर उसूली थी जैसा कि बाद में ज़िक्र होगा।

क़दीम ज़माने से हमा ओसती तसव्वुफ़ ने खुरासान में मुसलमानों के दर्मियान अपना मस्कन बनाया। अवतार का क़दीम तसव्वुर फिर पैदा हुआ जब अहले शीया ने अपने तईं अलग गिरोह बनाया और अली की ऐसी इज़्ज़त करने लगे ख़ताईया फ़िर्क़े ने इमाम जाफ़र सादिक़ की परस्तिश ख़ुदा समझ कर की। बाज़ों की ये तालीम थी कि रूह इलाही, अब्दुल्लाह इब्ने उमर पर नाज़िल हुई। खुरासान में इस राय ने बहुत रिवाज पकड़ा कि अबू मुस्लिम, (जिस बड़े सर लश्कर ने उम्मय्या ख़ानदान को पामाल कर के अब्बासिया ख़ानदान को क़ायम किया) वो रूह ख़ुदा का अवतार था। इसी इलाक़े में अल-मंसूर के अहद सल्तनत में जो अब्बासिया ख़ानदान का दूसरा ख़लीफ़ा था एक दीनी पेशवा ओस्तासी (Ostasys) नामी दावा किया कि मैं उलूहियत का सुदूर हूँ। हज़ारहा उस के पैरौ हो गए और बहुत जंग व जदल (लड़ाई, फसाद) के बाद ये तहरीक दबाई गई। ख़लीफ़ा महदी के ज़माने में एक शख़्स अता नामी ने अपने तईं अवतार मशहूर किया चूँकि वो अपने पर बराबर सुनहरी बुर्क़ा रखा करता था इसलिए उस का नाम मिक़ना या "हिजाब पोश नबी" पड़ गया। उस के भी बहुत लोग पैरौ हो गए और कई सालों तक ख़लीफ़ा के लश्करों का मुक़ाबला करता रहा। लेकिन (779 हिज्री) में वो अपने क़िले में घर गया और उस पर उसने, उस के खादिमों ने और उस के हरमों ने ख़ुदकुशी कर के अपना काम तमाम किया।

अल-ग़ज़ाली की अपनी तस्नीफ़ से पता लगता है कि सूफ़ियों के इन ख़यालात और तसव्वुफ़ के इस क़िस्म के ख़तरे के बारे में उस की अपनी राय क्या थी। "सूफ़ियों के क़ियासात को दो किस्मों पर मुनक़सिम कर सकते हैं। पहले हिस्से में ख़ुदा की मुहब्बत और इस के साथ वस्ल के मुताल्लिक़ सारे उमूर दाख़िल हैं और उनके नज़्दीक उनसे सारे बैरूनी कामों की तलाफ़ी होती है। उनमें से बाअज़ का तो ये दावा है कि

उनको ख़ुदा के साथ कामिल इत्तिहाद हासिल हो गया है और उनके लिए हिजाब बिल्कुल उठ गया है और कि उन्होंने ख़ुदा तआला को ना सिर्फ इन आँखों से देख लिया है बल्कि उस के साथ कलाम किया है और वो ये कहने को तैयार थे कि "ख़ुदा तआला ने ये कलाम हमसे किया।" वो हल्लाज की तक़्लीद (पैरवी, नक़्ल) करना चाहते थे जो ऐसे अल्फ़ाज़ इस्तिमाल करने की वजह से दार (सूली, सलीब) पर खींचा गया था, और उस का ये क़ौल नक़्ल किया करते थे "अना-अल-हक़" (انا الحق) वो अबू यज़ीद बुस्तानी का भी हवाला देते थे जिसने ये कहा था। "मेरी हम्द हो" बजाय इस के कि "ख़ुदा की हम्द हो" अवामुन्नास के लिए ऐसा क़ियास निहायत ही ख़तरनाक है और ये मशहूर है कि बहुत अस्हाब हिर्फ़ा (सिफ़त) ने अपने पेशे को छोड़ा और इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ इस्तिमाल किए। ऐसे मक़ूलात बहुत मानूस थे क्योंकि इनके ज़रीये वो मेहनत के काम को छोड़ के ख़फ़ी (पोशीदा) वज्द (बे-ख़ुदी की हालत) और महवियत (ख़याल) में गुम, ग़र्क़ होने के वसीले अपनी रूह को साफ़ करने की उम्मीद रखते थे। अवामुन्नास अपने लिए ऐसे हुक़ूक़ का दावा करने में पीछे नहीं रहते और दीवाना-वार अल्फ़ाज़ ज़बान से निकालने लगते हैं। सूफ़ी क़ियास की दूसरी क़िस्म में बेमाअनी जुमलों का इस्तिमाल होता है जिनके ज़रीये अवाम की तवज्जोह उनकी तरफ़ मनातफ़ (मुतवज्जोह होने वाला) होने लगती है लेकिन जब गहिरी नज़र से उनको परखा जाये तो हक़ीक़ी मअनी से वो मुअर्रा (नंगा, ब्रहना, ख़ाली) निकलते हैं।"

ना सिर्फ अल-ग़ज़ाली ने हमा औसत के ख़तरे को समझा बल्कि उसे ये भी मालूम था कि इस क़िस्म का दीनी जोश सख़्त रियाकारी की तरफ़ ले जाता है। किताब "अहया" में उस ने बयान किया कि :-

> "नबी ने हुक्म दिया कि क़ुरआन को पढ़ा जाए, सुन के जिसके आँसू ना निकल आएं वो रोने और गहरे मोअस्सर होने का दिखावा तो दिखाए।"

क्योंकि अल-ग़ज़ाली ने दानाई से ये कहा "इन मुआमलात में आदमी मज्बूरी से शुरू करता है लेकिन पीछे वो आदमी की आदत हो जाती हैं।" इलावा अज़ीं चूँकि दीनी जोश दिली सरगर्मी और निहायत दीनदारी का निशान समझा जाने लगा इसलिए ऐसे लोगों का शुमार बढ़ गया जो रुहानी तनवीर के मुद्दई थे। काफ़ियों के सुनने से जो वज्द

की हालत पैदा होती है, उस की चार किस्में बताई गई हैं। अव्वल जो सबसे अदना है वो सादा एहसासी हज़ (ﷺ) है। दूसरी क़िस्म वो सरोद का हज़ (ﷺ) और अल्फ़ाज़ के और एक का हज़ (ﷺ) है। तीसरी क़िस्म वो है जिसमें अल्फ़ाज़ के माअनों को इन्सान और ख़ुदा के दर्मियान रिश्तों पर आइद करते हैं और जो लोग तसव्वुफ़ में मुबतदी होते हैं वो इस क़िस्म में दाख़िल हैं। फिर उसने ये कहा "उसने अपने लिए मंज़िल-ए-मक़्सूद को मद्द-ए-नज़र रख लिया है और ये मंज़िल-ए-मक़्सूद इर्फ़ान इलाही है।" उस को मिलना और ख़फ़ी ज़िक्र के ज़रीये उस से इत्तिहाद पैदा करना और जो हिजाब उसे छुपाए है उसे दूर करना इस मक़्सद को हासिल करने के लिए सूफ़ी एक ख़ास तरीक़े पर अमल करते हैं वो चंद रियाज़तें अमल में लाता है और इस तरीक़े से बाअज़ रुहानी रुकावटें दूर हो जाती हैं जब काफ़ियों के गाए जाने के वक़्त सूफ़ी इल्ज़ाम या तारीफ़, मक़बूलियत और मर्दुदियत, महबूब से वस्ल व हिजर किसी के इंतिक़ाल पर मातम या निगाह माशूक़ की आरज़ू का ज़िक्र सुनता है और अरबी नज़्म में इस का बारे में ज़िक्र आता है और इन उमूर में से किसी एक को अपनी हालत के मुताबिक़ पाता है तो उस पर ऐसा ही असर होता है जैसे आतिश का हीज़ुम (सूखी लकड़ी, ईंधन) पर और उस का दिल शोला-ज़न हो जाता है। आरज़ू और मुहब्बत उस पर तारी हो जाते हैं और रुहानी तजुर्बात के मुख़्तलिफ़ नज़ारे उस पर मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) हो जाते हैं।

चौथी और आला क़िस्म में वो लोग दाख़िल हैं जो कामिल सालिक (जो ख़ुदा का क़ुर्ब भी चाहे और शुग़्ल भी रखता हो) हैं और मज़्कूर बाला मंज़िलों से गुज़र चुके हैं और ख़ुदा के सिवा जिनके दिल में किसी दीगर शैय को दाख़िल नहीं। ऐसा शख़्स अनानीयत (ख़ुदी, घमंड) से बिल्कुल ख़ाली है यहां तक कि उसे अपने तजुर्बात और आमाल की भी ख़बर नहीं। गोया उस के हवास पर मोहरें लग गईं और उस ने ज़िक्रे इलाही के बहर में ग़ोता मारा है ऐसी हालत को सूफ़ी इस्तिलाह में फ़ना कहते हैं। ("इक़रारात") एक दूसरे मुक़ाम में इन्सानी रूह की इसी हालत में महवियत को शफ़्फ़ाफ़ शीशे से तश्बीह दी है शीशे है। इस की मुराद सक़ील शूदा (صیقل شدہ) पीतल या बिरिंज है जिसमें हर मुक़ाबिल शैय के रंगों को अक्स पड़ता है। अपनी तस्नीफ़ात में उन्होंने बार-बार इस तश्बीह या इस्तिआरे का ज़िक्र किया है। गुनाह रूह के शीशे पर ज़ंग है। रोशनी का अक्स तो इस में पड़ता है लेकिन शुआएं साफ़ तौर से नुमायां नहीं जब तक कि ख़ता और जज़्बात का ज़ंग तौबा के ज़रीये दूर ना किया जाये।

अल-ग़ज़ाली ने अपनी तसव्वुफ़ की तालीम में अक़ीदे के छः मसाइल और पाँच अरकान दीन पर हमेशा ज़ोर दिया और कहा कि इन्हीं के ज़रीये रूह को ख़ुदा की तरफ़ जाने की हक़ीक़ी तहरीक हासिल होती है। तो भी अल-ग़ज़ाली ने इबादत के रुहानी पहलू पर हमेशा ज़ोर दिया इबादत की ज़ाहिरी सूरत बज़ात-ए-ख़ुद कुछ हक़ीक़त नहीं रखती मसनवी के मुसन्निफ़ ने अल-ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात पर उबूर किया हुआ था और उसी की रूह में महव था जब उसने ये लिखा :-

> "अहमक़ मस्जिद की तारीफ़ और बड़ाई करते हैं जब पाक साफ़ दिलों को सताने की कोशिश करते हैं लेकिन मुक़द्दम-उल-ज़िक्र तो महज़ सूरत है और मोअख़्ख़र-उल-ज़िक्र रूह और सदाक़त है। हक़ीक़ी मस्जिद तो औलिया अल्लाह का दिल है और औलिया अल्लाह के दिल में जो मस्जिद तामीर होती है वो सबकी इबादत-गाह है क्योंकि ख़ुदा वहां बस्ता है।"

ख़ुदा की तक़्लीद पर मौलाना रुम ने जो कुछ तहरीर किया वो तक़रीबन लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ अल-ग़ज़ाली की किताब में से है जिसमें ख़ुदा की सिफ़ात का ज़िक्र है :-

> "ख़ुदा इसलिए अपने तईं "बसीर" कहता है ताकि उस की आँख हर लहज़ा तुमको गुनाह से डराए। ख़ुदा इसलिए "समीअ" कहता है ताकि कोई बदकलाम तुम्हारे लबों से ना निकले। ख़ुदा इसलिए अपने तईं "अलीम" कहता है ताकि तुम बदी का मन्सूबा ना बाँधो। ये नाम ख़ुदा के आरिज़ी नाम नहीं जैसे ज़ंगी का नाम काफ़ूर रखा जाये बल्कि वो नाम ख़ुदा की ऐनी सिफ़ात से सादिर हैं उस इल्लत ऊला के फ़ुज़ूल नाम नहीं।"

अबू सईद बिन अबु-अल-ख़ैर साकिन खुरासान 396 हिज्री से 440 हिज्री तसव्वुफ़ के मदरसे में अल-ग़ज़ाली का मुअल्लिम था। जिस वक़्त उस से पूछा गया कि सूफ़ी की तारीफ़ क्या है? तो उसने कहा :-

> "जो कुछ तेरे दिमाग़ में है उस को फ़रामोश कर दे, जो कुछ तेरे हाथ में हैं दे डाल और जो कुछ तुझ पर वाक़ेअ हो उस से लापराह हो जा।"

सूफ़ी तालीम के बरपा होने के बारे में यानी इस के आग़ाज़ और सीरत के बारे में डाक्टर, सी॰ सनूक़ हूर गिरान्जी (Dr. Snock Hurgranji) ने ये बयान किया :-

> "अल्लाह ने जो चिराग़ मुहम्मद के हाथ में दिया जिसकी रोशनी से कि नूअ इन्सान की रहबरी करे। नबी की वफ़ात के बाद वो ज़्यादा ज़्यादा बुलंद होता गया ताकि रोज़-अफ़्ज़ूँ इन्सानों को रोशनी दे सके लेकिन ये मुम्किन ना था जब तक कि इस के हौज़ को उन मुख़्तलिफ़ क़िस्म के तेलों से पुर ना किया जाये जिनके ज़रीये क़दीम ज़मानों से मुख़्तलिफ़ क़ौमों को रोशनी मिलती रही। तसव्वुफ़ का तेल मसीही हलक़ों से आया और ला कलाम नौ अफ़लातूनी चश्मे से फ़ारस और हिन्दुस्तान ने भी इस में अपना हिस्सा डाला बाअज़ ऐसे लोग थे जिन्हों ने बज़रीये रियाज़ीत और जिस्म के कुश्ता करने के मुख़्तलिफ़ तरीक़ों के ज़रीये रूह को आज़ाद किया ताकि वो परवाज़ कर के सारी हस्ती के अस्ल से वस्ल हासिल करे। हत्ता कि बाज़ों ने अपना अक़ीदा इन अल्फ़ाज़ में ज़ाहिर किया "अनाल-हक़" जो कुफ़र है।"

लेकिन उसने भी बयान किया कि गो बाअज़ हद से ज़्यादा तजावुज़ कर गए और हमा ओसती खयालात में मुसतग़र्क़ि हो कर अख़्लाक़ी शरीअत और चाल चलन की पाबंदी को नज़र-अंदाज कर दिया। लेकिन अल-ग़ज़ाली ने इस ख़तरे से इस्लाम को बहुत दर्जे तक बचा लिया। उसने इस अम्र पर ज़ोर दिया कि बज़रीये रियाज़त रूह का अख़्लाक़ी कमाल ही वो तरीक़ा है जिससे आदमी को ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) हासिल हो सकती है। उस के तसव्वुफ़ ने हमा ओसती ख़तरे से बचना चाहा जिसमें कि बहुत सूफ़ी अपने ग़ौर व ख़ौज़ में मुब्तला हो गए थे और जिसके ज़रीये उन्होंने शराअ इलाही और अख़्लाक़ी को भी बालाए ताक़ रख दिया था। इसलिए अख़्लाक़ी तसव्वुफ़ का आग़ाज़ इस्लाम में अल-ग़ज़ाली के अय्याम ही से हुआ जिसमें शरीअत और मसाइल दीन दाख़िल

थे। दीनी उलूम की ये अब मुक़द्दस तस्लीस है और हर इस्लामी दार-उल-उलूम और मदरसों में इनकी तालीम दी जाती है। मसाइल दीन के लिए दीगर मुसन्निफ़ ज़्यादा मुस्तनद हैं। इस्लामी शरीअत के मुताल्लिक़ चार बड़े इमामों की तसानीफ़ का मुतालआ कराया जाता है लेकिन अख़्लाक़ में अल-ग़ज़ाली अपना सानी नहीं रखता।

डाक्टर होर्गिन जी ने ये भी बयान किया है :-

> "अल-ग़ज़ाली का अख़्लाक़ी तसव्वुफ़ अब उमूमन सही माना गया है और बाक़ायदा रियाज़त और ज़िक्र के ज़रीये आला रुहानी दर्जे तक पहुंचने को अब शक की निगाह से देखा जाता है। वसीअ हलक़ों में ये मुफ़स्सला-ए-ज़ैल राय बहुत मशहूर है। शरीअत सब मोमिनों के आगे ज़िंदगी की रोटी पेश करती है। मसाइल वो सलाह ख़ाना (سلاح خانہ) हैं जिसमें से औज़ार लिए जाते हैं ताकि बेईमानी और बिद्अत के मुक़ाबले में दीन के ख़ज़ानों की हिफ़ाज़त की जाये। लेकिन तसव्वुफ़ ख़ाकी हाजी को आस्मान की राह दिखाता है।"

मगर एक ख़ास अम्र में ये अख़्लाक़ी तालीम बहुत मायूसी पैदा करती है। अल-ग़ज़ाली का तसव्वुफ़ अवामुन्नास के लिए नहीं ये ख़फ़ी तालीम ऐसे ख़ास लोगों के लिए है जो दीनी फ़ख़्र से भरे हैं और इस अम्र में वह दूसरे लोगों की मानिंद नहीं। शरीफ़ से शरीफ़ मुसलमान भी हक़ीक़ी दीनी ज़िंदगी को मादूद-ए-चंद (गिनती के बहुत थोड़ी तादाद में) बड़े लोगों में महदूद समझते हैं जिसका कोई ईलाज नहीं हो सकता। अल-ग़ज़ाली की तालीम अवाम के लिए ना थी बल्कि मुब्तदियों (इब्तिदा करने वाला, नव आमोज़) और तालिबों के लिए। ये वही क़ाबिल-ए-ज़िक्र है कि गो उस के सूफ़ियों के लिए तूस में एक ख़ानक़ाह बनाई और अपनी ज़िंदगी के आख़िरी अय्याम में ख़ुद वहां तालीम देता और इंतिज़ाम करता रहा लेकिन उसने सूफ़ियों का कोई ख़ास ख़ानदान क़ायम नहीं किया। प्रोफ़ैसर मैक्डानल्ड का ख़याल है कि :-

> "उस के ज़माने में ऐसे मुतवातिर ख़ानदानों और बिरादरीयों का रिवाज ना था।"

लेकिन ये ग़लत है क्योंकि "कशफ़-उल-महजुब" में (456 हिज्री) दरवेशों के मुख़्तलिफ़ ख़ानदानों की फ़हरिस्त दी गई है और उनकी इबादत के ख़ास तरीक़ों का बयान आया है। अलबत्ता अल-ग़ज़ाली की तालीम आजकल सारे दरवेश ख़ानदानों में मुरव्वज है।

कैनन डब्लयू॰ ऐच॰ टी॰ गार्डनर ने अल-ग़ज़ाली की एक किताब का जो तसव्वुफ़ पर है और जिसका नाम "मिश्कात-अल-नूर" है ख़ास मुतालआ किया जिसमें उसने इस किताब के मोअतरज़ीन का जवाब दिया और क़तई तौर पर ये साबित कर दिया कि अल-ग़ज़ाली का ख़्वाह कोई तरीक़ा हो उसने ख़ुलूस क़ल्बी से काम लिया इस दिलचस्प और आलिमाना रिसाले से हम दो मुक़ामात नक़्ल करते हैं जिनसे अल-ग़ज़ाली के तरीक़े की तशरीह हो जाएगी।

"सत्तर हज़ार हिजाबों की हदीस की तशरीह करने में जिन हिजाबों के ज़रीये ख़ुदा ने अपने तईं इन्सान की नज़र से मह्जूब (हिजाब किया हुआ) किया है अल-ग़ज़ाली को मौक़ा मिला कि मुख़्तलिफ़ मज़ाहिब और फ़िर्क़ों के दर्जे ठहराए बलिहाज़ इस के कि किस क़द्र कम व पेश मोटा पर्दा नूर के छिपाने के लिए उन पर पड़ा था यानी जिस क़द्र कि वो अल-हक़ अल्लाह तक रसाई रखते हैं। जो हिजाबात कि इलाही नूर को छिपाने के लिए मुख़्तलिफ़ मज़्हबों और फ़िर्क़ों पर पड़े हुए थे वो दो क़िस्म के बयान हुए हैं। नूर के हिजाब और तारीकी के हिजाब और उन मज़्हबों और फ़िर्क़ों के दर्जे इस अंदाज़े से कि उन पर हिजाब पड़ा है (अलिफ़) तारीक हिजाबों से (ब) तारीकी और नूर आमेख़्ता (ज) या सिर्फ नूर के हिजाबों से। और आख़िर में वो मुख़्तसर इबारत आई है जिसमें ज़िक्र है कि वासलीन को सूफ़ी तालीम कश्फ़ साफ़ व सरीह तौर से हासिल हो गई है।

जिन लोगों पर ख़ालिस तारीकी का हिजाब छाया हुआ है वो मुल्हिद हैं जो ख़ुदा की हस्ती और यौम-उल-आखिरी का इन्कार करते हैं। उनके दो बड़े हिस्से हैं जिन लोगों ने दुनिया की इल्लत की तलाश की और ये मालूम किया कि फ़ित्रत ही वो इल्लत है और जिन लोगों ने ऐसी तहक़ीक़ात नहीं की मुक़द्दम-उल-ज़िक्र लोग तो दहरिया हैं जिनसे अल-ग़ज़ाली को सख़्त नफ़रत थी। ये जाये ताज्जुब है कि उनकी बद चाल चलन का कोई मज़ीद ज़िक्र नहीं किया और वसती ज़माना का ये ख़ास ख़याल था कि सबसे सख़्त सज़ा मुस्तहिक़ बद चाली की निस्बत ग़लत राय है। बदकार दूसरी क़िस्म में

दाख़िल है जिनको पहली क़िस्म पर सबक़त नहीं दी गई, ये ऐसे लोग हैं जो ऐसे तामाअ और ख़ुद ग़र्ज़ हैं कि वो इल्लत की तलाश ही नहीं करते और अपनी नफ़्सानियत के सिवाए और किसी शैय का उनको ख़याल ही नहीं उनको हम अनानी (मग़ुरूर) कहेंगे। उनके दर्जे ये हैं (1) नफ़्सानी ख़ुशी के तालिब (2) हुकूमत के ख़्वाहां (3) ज़र-दोस्त (4) शौहरत के गिर वैद्य।पहली क़िस्म तू मामूली हैवानी सिफ़ात के लोगों की है और नीज़ नफ़्सानी फिलासफर उनके हिजाब बहीमी (एक दूसरे के साथ) सिफ़ात के हिजाब हैं और दूसरी क़िस्म के तुंद-ख़ू लोग जो सबाइअ कहलाते हैं इस क़िस्म के लोग अरब, बाअज़ कुर्द और बेशुमार अहमक़ लोग हैं। तीसरी और चौथी क़िस्म पर किसी तरह की शरह नहीं लिखी।

"इस गहिरी तारीकी के तब्क़ात से उतर कर हम (ब) पर पहुंचते हैं जिन पर नूर व तारीकी के आमेख़्ता हिजाब पड़े हैं। तारीकी के हिजाबात का जो तसव्वुर अल-ग़ज़ाली को था वो इन दोनों फसलों (एक हिस्से को दूसरे से अलग करने वाला) के मुक़ाबला करने से मालूम हो सकता है। इस फ़स्ल में तारीक हिजाब उलूहियत के ग़लत तसव्वुरात हैं जो इन्सानी अक़्ल अपनी फ़ित्री साख़त की महदुदीयत की वजह से इख़्तिरा कर लेती है (अलवी मीज़ान के मुताबिक़) यानी हवास-ए-ज़ाहिरी, या क़ुव्वत-ए-मुतख़य्यला (सोचने की क़ुव्वत) या इल्म तक़रीर के ज़रीये, माक़बल फ़स्ल के तारीक हिजाब कुल्ली अनानीयत और माद्दियत है जो इन क़वा (ताक़त) को अपनी ज़ात और दुनिया के लिए इस्तिमाल करते हैं ख़ुदा के ख़याल के बग़ैर, चुनान्चे नूर के वसीले रास्त लेकिन जुज़वी लुदनियात (वो इल्म जो सीखने के बग़ैर वही या इल्हाम वग़ैरह के ज़रीये हासिल हो) हैं जिनके वसीले इन्सान उलूहियत के तसव्वुर तक या कम अज़ कम अपने से आला के तसव्वुर तक पहुंच जाते हैं। ये लुदनियात जुज़वी हैं क्योंकि वो उलूहियत के किसी एक पहलू या सिफ़त को मद्द-ए-नज़र रखते हैं मसलन उस की अज़मत, हुस्न वग़ैरह पर और उस एक पहलू या सिफ़त को सब कुछ मान कर वो उस पहलू या सिफ़त यानी उस अज़ीम या हुसैन वग़ैरह को ख़ुदा मानने लगते हैं यूं उनके ज़रीये निस्फ़ अल्लाह तो मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) होता है और निस्फ़ अल्लाह मख़्फ़ी (छिपी) होता है। ये तो नूर के हिजाब हैं। इस बयान से मुक़द्दस पौलुस के ये अल्फ़ाज़ याद आते हैं "अब हमको आईने में धुँदला सा दिखाई देता है मगर उस वक़्त रूबरू देखेंगे।" क्या अल-ग़ज़ाली ने ये ख़याल भी इन्जील से मुस्तआर लिया?

प्रोफ़ैसर मार्गोंली ओथ और बाअज़ दीगर उलमा ने इस का ज़िक्र किया है कि :-

> "मुहम्मदी तसव्वुफ़ बहुत कुछ मसीही तालीम पर मबनी है ख़ासकर अबू तालिब पर ये बात सादिक़ आती है जिसकी अल-ग़ज़ाली ने इस मज़्मून को कुल्लियतन ले लिया मसलन बीज बोने वाले की तम्सील को सूफ़ी मुसन्निफ़ों ने कुल्लियतन नक़्ल किया। अबू तालिब ने मसीह की दूसरी आमद के और दुनिया के आख़िर के बारे में गुफ़्तगु को नक़्ल किया जो मसीह और उन लोगों के माबैन हुई जिनको ख़ुदावंद ने ये ताना दिया था कि उन्होंने उसे भूका देख के उसे खाना ना खिलाया अलबत्ता साइल की जगह उसने लफ़्ज़ अल्लाह को डाला और सबसे छोटे की जगह अपना मुसलमान भाई। बाज़ औक़ात मुबारकबादीयाँ नक़्ल कीं और मसीह का नाम भी ज़ाहिर किया जिसकी ज़बान से वो मुबारकबादियाँ सादिर हुई थीं। मसीही वाज़ की किताबों में जो आम बयानात पाए जाते हैं वो सूफ़ी वाज़ों में भी क़दरे तब्दील या बिला तब्दीली के साथ मिलते हैं।"

"तोमा रसूल के आमाल" की किताब में ज़िक्र है कि "जब बादशाह ने उसे अपने महल की तामीर पर मामूर किया तो उसने वो रुपया ख़ैरात में ग़रीबों को दे दिया ऐन उसी वक़्त के क़रीब बादशाह का भाई मर गया और उसने देखा कि जो रुपया तोमा ने बादशाह के नाम से ख़ैरात में दिया था उस के वसीले फ़िर्दोस में बादशाह के लिए एक आलीशान महल बनाया गया। ये क़िस्सा अबू तालिब के रिसाले में आया है कि एक ग़रीब आदमी ने किसी दौलतमंद से ख़ैरात ली और उस के साथ उसने फ़िर्दोस में उस दौलतमंद के लिए एक घर बनाया।"

ना सिर्फ अबू तालिब की मशहूर क़त-उल-क़ुलूब (قوت القلوب) में बल्कि अल-ग़ज़ाली की सारी तस्नीफ़ात मैं बहुत से इक़तिबासात और हवाले अनाजील से हैं ख़्वाह वो एपोक्रिफल अनाजील हों ख़्वाह सही अनाजील। चुनान्चे इस का ज़िक्र बाद में आएगा।

अल-ग़ज़ाली ने सुबह व शाम की नमाज़ की तर्तीब बयान की है वो उस तर्तीब से बहुत मुतफ़र्रिक़ नहीं जो मसीही नमाज़ की किताबों में पाई जाती है। नमाज़ पर जो

रिसाला उसने लिखा उस में इस रस्म के रुहानी मअनी बताने की उसने कोशिश की और इस में उसने क़दीम सूफ़ियों की तालीम की तक़्लीद की। उनकी ग़ायत ये थी कि नमाज़ के वक़्त वो ख़ुदा मैं महव (खो जाना, गुम) हो जाए। ख़यालात की परेशानी से बचने के लिए उस की ये नसीहत थी कि ख़ाली दीवार की तरफ़ मुँह कर के नमाज़ पढ़े ताकि इमारत की ख़ूबसूरती या नक़्श व निगार उनकी तवज्जोह को दुआ से मुनातिफ़ ना कर दे। बाअज़ का ये फ़ख़्र था कि वो हर हालत में महवियत हासिल कर सकते थे। "ऐसे औलिया भी गुज़रे हैं कि सलात शुरू करने के वक़्त वो अपने अहले हरम को कह देते थे कि जिस क़द्र चाहें बातें करें और अगर चाहें तो ढोल भी बजाएँ वो अपनी नमाज़ में ऐसे महव होंगे कि वो कुछ ना सुन सकेंगे ख़्वाह कितना ही शोर क्यों ना हो। उनमें से एक किसी रोज़ बस्रा की मस्जिद में अपनी सलात अदा कर रहा था और इस अस्ना में एक सुतून गिर पड़ा जिसके गिरने से चार मंज़िलें गिर पड़ीं पर वो नमाज़ पढ़ता रहा और जब उसने नमाज़ ख़त्म की तो लोगों ने उस के बच जाने पर उस को मुबारकबाद दी। तब उसने पूछा कि किस बात पर उसे मुबारकबाद देते हो? बाअज़ ऐसे बुज़ुर्गों के नाम भी बताए गए हैं जो नमाज़ को इस ज़ोदी (जल्दी) से ख़त्म करते थे और इस को ऐसा मुख़्तसर पढ़ते थे ताकि शैतान को उस के ख़याल में परेशान करने का मौक़ा ना मिले।"

मगर अल-ग़ज़ाली नमाज़ में अदब पर ज़ोर देता रहा और उसने ये ताकीद की कि इबादत के लिए ज़ाहिरी व बातिनी दोनों तरह की तैयारी चाहीए। चुनान्चे उसने कहा, "नमाज़ ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) है और एक तोहफ़ा है जो हम बादशाहों के बादशाह की नज़र करते हैं जैसे कोई दूर के गांव से कोई तोहफ़ा हाकिम के लिए लाता है और तुम्हारे तोहफ़े को ख़ुदा क़ुबूल करता और अदालत के रोज़ अज़ीम को वो तुम्हें वापिस मिलेगा। इसलिए ये तुम्हारा ज़िम्मा है कि हत्ता-उल-इम्कान अह्सन तोहफ़ा नज़र करो उसने मुहम्मद का एक क़ौल नक़्ल किया "हक़ीक़ी नमाज़ ये है कि आदमी अपने तईं हलीम और फ़रोतन बनाए और इस पर उसने ये ईज़ाद (ज़्यादा करना, इज़ाफ़ा) किया कि दिल की हुज़ूरी हक़ीक़ी नमाज़ की जान है और दिल की अदम हुज़ूरी नमाज़ की सारी क़द्रो-क़ीमत को बर्बाद कर देती है।"

चुनान्चे उसने ये बयान किया कि "हक़ीक़ी नमाज़ छः उमूर पर मुश्तमिल है। दिल की हुज़ूरी, फ़हम, ख़ुदा की बड़ाई करना, ख़ौफ़, उम्मीद और शर्म का एहसास।" बादअज़ां सिलसिले-वार उसने उनमें से हर एक अम्र का बयान किया और बताया कि वो किन

उमूर से मुरक्कब है और कैसे वो वक़ूअ में आए हैं और उन को कैसे हासिल कर सकते हैं, हम अपने दिलों की हुज़ूरी उस अज़ली अबदी के गहरे एहसास के ज़रीये हासिल कर सकते हैं। ख़ुदा की अज़मत के बारे में जो उसने बयान किया इस का मुक़ाबला ऐसी इबादत से कर सकते हैं जैसी आठवीं ज़बूर में आई है "इन्सान क्या है कि तू उस की याद करे।" इबादत में अपनी ख़ताओं और क़ुसूरों को याद करने से शर्म का एहसास पैदा होता है कि बैरूनी और अंदरूनी मशग़लों से ख़यालात को निकाल दें। आम बाज़ारों में हम दुआ ना मांगें। क्योंकि हमारी तवज्जोह परेशान होगी। बल्कि ऐसी सादा दीवार की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ें जिस पर तवज्जोह को परेशान करने वाली कोई शैय ना हो। उससे मदद मिलेगी लेकिन दिल की बातिनी कुशीदगी ज़्यादा ज़रूरी है।

जो कुछ उसने हक़ीक़ी क़िब्ला के बारे में कहा वो भी नक़्ल करने के क़ाबिल है। "ये ख़ुदा के मुक़द्दस घर की सिम्त के सिवा चारों तरफ़ के ज़ाहिरी निगाह को हटा लेना है क्या तुम्हारा ये ख़याल नहीं कि सारी बातों की तरफ़ से अपने दिल को हटा लेना और ख़ुदा तआला के ध्यान पर इस को लगाना तुमसे तलब किया जाता है? बेशक यही तलब किया जाता है। नमाज़ में इस के सिवा तुमसे और कुछ तलब नहीं किया जाता। कोई शख़्स बैतुल्लाह की तरफ़ रुख करने के क़ाबिल नहीं जब तक कि वो सारी सिम्तों से मुँह ना फेरे। पस फ़िल-हक़ीक़त दिल ख़ुदा की तरफ़ मुतवज्जोह नहीं होता जब तक कि अपने सिवा बाक़ी हर शैय से अलैहदा ना हो जाये।"

उसने लिखा कि "जब तुम दुआ मांगने खड़े हो तो उस दिन को याद करो जब तुमको ख़ुदा के तख़्त के सामने खड़े हो कर हिसाब देना होगा। नमाज़ में रियाकारी से बचे रहो। उन लोगों की तक़्लीद ना करो जो ख़ुदा के चेहरे की इबादत करने का दावा करते हैं। लेकिन साथ ही आदमीयों की तारीफ़ के तालिब होते हैं। शैतान से भागो क्योंकि वो निगलने वाला शेर है। जिस शख़्स का तआक़्कुब शेर या कोई दुश्मन करे जो उस को निगलना या मार डालना चाहता है वो कैसे ये कह सकता है कि मैं उनसे इस क़िले या उस क़िले में ख़ुदा से पनाह लेता हूँ और फिर भी क़िले में दाख़िल होने के बग़ैर इधर उधर घूमता फिरे? यक़ीनन इस से उस को कुछ फ़ायदा ना होगा महफ़ूज़ होने का वाहिद तरीक़ा ये है कि वो अपनी जगह बदल डाले। इसी तरह जो कोई अपनी शहवात नफ़्सानी (जिन्सी ख़्वाहिश) की पैरवी करता है जो शैतान की कमीनगाहें हैं और रहीम ख़ुदा की निगाह में मकरूहात हैं महज़ आऊज़ो-बिल्लाह कहना उस के लिए काफ़ी ना होगा। जो

कोई अपने जज़्बात को ख़ुदा बना लेता है वो शैतान के क़ब्ज़े में है और अपने ख़ुदा की पनाह में महफ़ूज़ नहीं।"

सूरह फ़ातिहा की उसने निहायत उम्दा तफ़्सीर की "अपनी नमाज़ के आख़िर में अपनी आजिज़ाना मुनाजात और अल-हम्द अदा करो और जवाब के मुंतज़िर रहो और अपनी दुआ में अपने वालदैन और दीगर हक़ीक़ी मोमिनीन को भी शामिल करो और जब तुम आख़िरी सलाम कहो तो उन दो फ़रिश्तों को याद करो जो तुम्हारे दोनों कंधों पर बैठे हैं।"

उसने बयान किया कि ज़कात देने में सात बातें मतलूब हैं। शताबी, पोशीदगी, नमूना (और इसके लिए एक हदीस भी नक़्ल की है जो मुहम्मद साहब से मन्सूब है कि जो दाहिना हाथ दे बाईयां हाथ उस को ना जाने) अदम फ़ख़्र, इस तोहफ़ा को बड़ा ख़याल ना करें सबसे अफ़्ज़ल तोहफ़ा हमसे तलब किया जाता है क्योंकि ख़ुदा निहायत ही नेक ख़ुदा है और जो कुछ अफ़्ज़ल है वो हमसे तलब करता है और हम अपनी ख़ैरात मुस्तहिक़ लोगों को दें। ख़ैरात के मुस्तहिक़ लोगों के उसने छः क़िस्में बयान की हैं, दीनदार, आलिम, रास्तबाज़, मुस्तहिक़ ग़रीब, मुस्तहिक़ मरीज़, या मुसीबतज़दा ख़ानदान और रिश्तेदार। उस के नज़्दीक ख़ैरात ख़वेशों (क़रीब का रिश्ता दार) पर ख़त्म होती है।

मगर अल-ग़ज़ाली की तालीम से ज़ाहिर है कि जो लोग ज़कात के मुस्तहिक़ हैं वो सिर्फ़ मुसलमान ही हैं इस्लाम में कोई आलमगीर बिरादरी नहीं, यहूदी और मसीही उनके अहाता बिरादरी से बाहर हैं और "हमसायगी के हक़" के सज़ावार नहीं।

अल-ग़ज़ाली ने क़ुरआन की तिलावत का जो सूफ़ी तरीक़ा बताया है वो मसीही लोग बाइबल की तिलावत के लिए काम में ला सकते हैं। उसने तिलावत के लिए आठ उमूर का ज़िक्र किया। "मुकाश्फे की अज़मत, मुतकल्लिम की अज़मत, तैयार दिल की ज़रूरत, ध्यान, इस मुक़ाम के मअनी समझना, उस के मअनी को ना तोड़ ना मोड़ और ना इस मुक़ाम को अपने पर आइद करना और आख़िरकार इस मुक़ाम को ऐसे तौर पर पढ़ना की इस का असर हमारी ज़िंदगी पर हो। उनके क़ौल के मुताबिक़ लफ़्ज़ क़ुरआन से मुराद पढ़ना नहीं बल्कि इस तालीम पर अमल करना है क्योंकि अल्फ़ाज़ के तलफ़्फ़ुज़ करने में ज़बान को हिलाना चंदाँ वक़अत नहीं रखता। हक़ीक़ी तिलावत वो है जिस में ज़बान, अक़्ल और दिल का इत्तिफ़ाक़ हो। ज़बान का काम ये है कि तिलावत में अल्फ़ाज़

को साफ़ तौर से तलफ़्फ़ुज़ करे। अक़्ल का काम ये है कि मअनी को समझे, दिल का काम ये है कि अपनी ज़िंदगी में इस को मुंतक़िल करे, ज़बान तो पढ़ती है, अक़्ल तर्जुमा करती है और दिल मुतर्जिम और आगाह करने है।"

तौबा के बारे में जो उस का बयान है वो सबसे अफ़्ज़ल है। इस को 51 ज़बूर या रोमीयों के सातवें बाब से मुक़ाबला कर सकते हैं। इस में तो किसी को शक नहीं कि अल-ग़ज़ाली को गुनाह का गहरा एहसास हासिल था वो फ़रीसी ना था बल्कि एक सरगर्म तालिबे ख़ुदा था उसने साफ़ तौर से ये तालीम दी कि सारे अम्बिया मए मुहम्मद के गुनाहगार थे। अगरचे उसने किसी जगह यसूअ मसीह की गुनहगारी का ज़िक्र नहीं किया।

सबसे आला मुक़ाम वो है जिसमें उसने माफ़ी मांगने के फ़वाइद का बयान किया इस का तर्जुमा ये है "मुहम्मद अन्नबी ने फ़रमाया "सच-मुच मैं ख़ुदा से माफ़ी मांगता और हर रोज़ सत्तर दफ़ाअ उस के आगे तौबा करता हूँ।" बक़ौल अल-ग़ज़ाली उसने ये फ़रमाया अगरचे ख़ुदा ने उस की निस्बत ये गवाही दी थी "हमने तेरे अगले और पिछले गुनाह बख़्श दीए" रसूल-ए-ख़ूदा ने फ़रमाया "सच-मुच मेरे दिल में ग़श सा आता है जब तक हर रोज़ सौ दफ़ाअ मैं अपने गुनाहों की माफ़ी नहीं मांग लेता" और नबी ने फ़रमाया, ख़्वाब को जाते वक़्त जो कोई ये कहता है "मैं ख़ुदा तआला से माफ़ी मांगता हूँ जिसके सिवा कोई दूसरा नहीं। जो अल-हय्यु है और मैं अपने गुनाहों से तीन बार तौबा करता हूँ।" ख़ुदा उस शख़्स के गुनाहों को बख़्श देगा अगरचे वो समुंद्र की झाग की तरह और रेत के ढेर की तरह हों या दरख़्त के पत्तों की तरह हों।" "और रसूल-ए-ख़ूदा ने फ़रमाया, जो कोई ये लफ़्ज़ कहेगा मैं उस के गुनाह बख़्श दूँगा गो वो लश्कर में से निकल भागे।" अल-ग़ज़ाली ने एक शख़्स हफीफा नामी का क़िस्सा बयान किया जिसने ये कहा था "मैं अपनी बीवी से सख़्ती के साथ बोला करता था और मैंने कहा, "ऐ रसूल-ए-ख़ूदा मुझे अंदेशा है कि मेरी ये ज़बान कहीं नार-ए-जहन्नम में ना ले जाये और तब रसूल-ए-ख़ूदा ने फ़रमाया, "गुनाह की माफ़ी मांगने में मेरी निस्बत तेरा क्या हाल है में तो हर रोज़ सौ दफ़ाअ ख़ुदा से माफ़ी मांगता हूँ।" और आईशा ने (ख़ुदा उस पर इनायत करे) नबी के बारे में कहा, "उसने मुझसे कहा अगर तू गुनाह की मुर्तक़िब हुई तो ख़ुदा से माफ़ी मांग और उस के आगे तौबा कर क्योंकि गुनाह से हक़ीक़ी तौबा ये है कि आदमी गुनाह से किनारा हो जाये और माफ़ी मांगे" रसूल-ए-ख़ूदा ये कहा करते थे जब वो माफ़ी मांगते "ऐ ख़ुदा मेरे गुनाह मेरी नादानी और किसी काम में जो ज़्यादती मुझसे हुई तू

माफ़ कर दे और जो तू मेरी निस्बत बेहतर जानता है, ऐ ख़ुदा मेरे ख़फ़ीफ़ (कमज़र्फ़, ज़लील) और उमद (इरादा, नीयत) के गुनाहों, मेरी ग़लतीयों और ग़लत इरादों और जो कुछ मुझसे हुआ मुझे माफ़ कर दे। ऐ ख़ुदा मुझे माफ़ कर दे जो मुझसे माज़ी में सरज़द हुआ या मुस्तक़बिल में सरज़द होगा। जो कुछ मैंने छुपाया और जो कुछ मैंने ज़ाहिर किया और जो कुछ तू मेरी निस्बत बेहतर जानता है। तू जो अव्वल व आख़िर और क़ादिर-ए-मुतलक़ है।" ज़माना-ए-हाल में अहले इस्लाम के दर्मियान मुहम्मद की बेगुनाही के बारे में जो तालीम मुरव्वज है उस से ये तालीम कैसी मुख़्तलिफ़ है।

चूँकि अल-ग़ज़ाली ने मुहम्मद साहब और उस की ज़रूरत माफ़ी के बारे में ये बयान किया उसने तौबा को ज़ाहिरी तौर से नहीं लिया बल्कि ऐसे शख़्स के तौर पर जिसने पशेमानी की तल्ख़ी का ज़ायक़ा चखा था और जिसने अख़्लाक़ी शरीअत के तक़ाज़े के सामने अपनी नाक़ाबिलियत को महसूस किया था। तौबा पर जो उसने रिसाला लिखा उस की ये फ़सलें हैं (1) तौबा की हक़ीक़त (2) तौबा की ज़रूरत (3) ख़ुदा हक़ीक़ी तौबा की तवक़्क़ो रखता है (4) आदमी किस से तौबा करे यानी गुनाह की हक़ीक़त (5) गुनाह सगीरा कैसे गुनाह कबीरा बन जाते हैं (6) कामिल तौबा, उस के शराइत और उस की मीयाद (7) तौबा के मुख़्तलिफ़ दर्जे (8) कैसे फ़िल-हक़ीक़त ताइब बनें।

उस की तालीम का ख़ुलासा दे सकते हैं। उस की तालीम क़ुरआन पर कहीं ज़्यादा फ़ौक़ रखती है फ़िलवाक़े बाज़ औक़ात अपने बयान के सबूत में जो आयात उसने पेश की हैं वो सियाक़ इबारत के लिहाज़ से नबी पर एक ख़ौफ़नाक इल्ज़ाम आइद करती हैं।[2]

उसने बयान किया कि तौबा की ज़रूरत हमेशा और सारे आदमीयों के लिए है क्योंकि नूअ इन्सान में से कोई भी गुनाह से मुबर्रा नहीं "गो बाअज़ सूरतों में वो बदनी आज़ा के बैरूनी गुनाह से मुबर्रा हो। लेकिन वो दिल के गुनाह से मुबर्रा नहीं। गो वो जज़्बा इन्सानी से मुबर्रा हो वो वस्वसा शैतानी और ख़ुदा को फ़रामोश करने या इर्फ़ान

---

2 जिन आयात को उस ने पेश किया उन में से एक यह है, (सूरह * आयत 222) "बेशक अल्लाह तौबा करने वालों को दोस्त रखता है और जो पाक साफ़ है उनको दोस्त रखता है।" इस का क़रीना वह जहाँ यह आया है कि, "तुम्हारी बीबियाँ तुम्हारी खेतियाँ हैं.....वगैरह। जसकी तफ्सीर बाज़ मुहम्मदी उलेमा ने एसी की है जिस से बदी की इजाज़त निकले इस क़रीने में अल-गज़ाली ने बयान किया कि, "सब ने गुनाह किया" गो रोमियों के पहले बाब का यहाँ हवाला नहीं दिया।

ख़ुदा और उस की सिफ़ात व सिफ़ात के इर्फ़ान में क़ासिर रहने से मुबर्रा नहीं।" ये सब कुछ तहसील में नाकामी है और इस की वजूहात हैं। लेकिन अगर कोई शख़्स इस ख़ुदा फ़रामोशी के अस्बाब को तर्क कर के इस के मुख़ालिफ़ सिफ़ात में मसरूफ़ हो तो ये सही तरीक़े की तरफ़ ऊद कर आना है और तौबा के मअनी ही ये हैं ऊद करना। तुम तसव्वुर नहीं कर सकते कि हम में से कोई इस नुक़्स से ख़ाली है। सिर्फ ख़ता के दर्जे में फ़र्क़ होगा लेकिन वो जड़ ला कलाम हम सब में मौजूद है। अलबत्ता उसने मौरूसी गुनाह को नज़र-अंदाज किया। क्योंकि वो मुसलमान था लेकिन उसने उस नतीजे का बहुत ज़िक्र किया जो इस गुनाह से पैदा होता है जिससे तौबा नहीं की जाती। लेकिन ये दिल में ज़्यादा ज़्यादा गहरा उतरता जाता है हत्ता कि इन्सानी रूह के शीशे पर से ख़ुदा की तस्वीर मिट जाती है।

एक और तम्सील उसने इस्तिमाल की कि "दिल एक उम्दा पोशाक है जो कीचड़ में लुथड़ गई और अब ये ज़रूरत है कि साबुन और पानी से वो धोई जाये जब हम अपने दिल को अपने जज़्बात नफ़्सानी में इस्तिमाल करते हैं तो ये मैली हो जाती है इसलिए हमें चाहीए कि आँसूओं के पानी में तौबा से रगड़ कर उसे धोएं ये तुम्हारा फ़र्ज़ है कि इस को रगड़ कर साफ़ करो तब ख़ुदा इसे क़ुबूल करेगा।" ये दाऊद, यसअयाह और यूनुस की तालीम के कैसे क़रीब है फिर भी उसने कैसी बईद है क्या अल-ग़ज़ाली ने कभी किसी दीनदारी यहूदी की ज़बान से यसअयाह का ये जुम्ला सुना कि "हमारी सारी रास्तबाज़ियां गंदी धज्जियाँ हैं।"

इस मुस्लिम आलिम के मुताबिक़ तौबा से दुहरा यह नतीजा पैदा होता है। अगरचे वह इस गहरे मसले को नहीं छूता कि कैसे ख़ुदा मुंसिफ़ आदिल भी हो और गुनाहगार को रास्तबाज़ भी ठहराए। उसने ये तालीम दी कि हमारे गुनाहों की माफ़ी का नतीजा ये है कि "हम ख़ुदा के सामने ऐसे खड़े होते हैं कि गोया हमने कुछ ख़ता नहीं की और हम आला दर्जे की रास्तबाज़ी तक पहुंच जाते हैं।" अल-ग़ज़ाली के अक़ीदे में मसीह की सलीब की कड़ी गुम है। वो मसीही तालीम के बहुत क़रीब पहुंच जाता है लेकिन हमेशा उस तालीम के मर्कज़ को ख़ता करता है। वो टटोल कर नूर की तरफ़ जाता है लेकिन दोस्त के हाथ को नहीं पकड़ता ना नजातदिहंदा को पाता है। ये सारी रास्तबाज़ी बज़रीये आमाल है और इर्फ़ान इलाही की तहसील बज़रीये ज़िक्र इलाही है कफ़्फ़ारे के वसीले रास्तबाज़ ठहरने के बग़ैर।

"ख़ुदा की हुज़ूरी के अमल" पर जो तालीम उसने दी वो बिरादर लौरंस की तालीम की तरह है जो उसने अपने एक रिसाले में ज़ाहिर की। "दीन और अख़्लाक़ में मुबतदी का रहनुमा" रिसाले (अल-बदायत) में उसने ये लिखा :-

> "जान लो कि तुम्हारा रफ़ीक़ जो कभी तुम्हें तर्क नहीं करता ना घर में ना बाहर, ना ख़्वाब में ना बाहर, ना मौत में ना ज़िंदगी में। वो तुम्हारा ख़ुदावंद और आक़ा, तुम्हारा मुहाफ़िज़ है और जब कभी तुम उस को याद करोगे वो तुम्हारे पास ही बैठा मिलेगा। क्योंकि ख़ुदा ने ख़ुद ये फ़रमाया है "जो मुझे याद करते हैं मैं उनका निहायत रफ़ीक़ हूँ।" और जब कभी तुम्हारा दिल ख़स्ता व शिकस्ता हो इस ग़म से कि तुमने दीन में ग़फ़लत की है तो वो तुम्हारा रफ़ीक़ है जो तुम्हारे क़रीब रहता है क्योंकि ख़ुदा ने ये फ़रमाया, "जो मेरी ख़ातिर शिकस्ता-दिल हैं मैं उनके साथ हूँ।" अगर तुम उस को जानते जैसा कि जानना चाहीए तो तुम उसे अपना रफ़ीक़ पकड़ते और उस की ख़ातिर बाक़ी सब आदमीयों को छोड़ देते। लेकिन चूँकि हमेशा तुम ऐसा नहीं कर सकते मैं तुम्हें आगाह करता हूँ कि रात और दिन एक ख़ास वक़्त अपने ख़ालिक़ के साथ रिफ़ाक़त रखने के लिए मुक़र्रर करो ताकि तुम उस में ख़ुशी हासिल करो और वो तुमको बदी से छुड़ाए।"

लेकिन अल-ग़ज़ाली ने ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) को मसीह के तजस्सुम के वसीले नहीं सीखा जिस ख़ुदा के दीदार की उस को आरज़ू थी वो ख़ौफ़ और रोज़ अदालत की दहश्त से मामूर था। ख़ुदा का ख़ौफ़ हिक्मत का आग़ाज़ और अंजाम था ख़ुदा के ख़ौफ़ के बारे में जो कुछ उसने समझा वो इस इबारत से ज़ाहिर है जो उस की किताब "अहया-उल-उलूम" से ली गई है। "ख़ुदा के ख़ौफ़ से मेरी मुराद औरतों जैसे ख़ौफ़ से नहीं जब उस की आँखें नम होती हैं और उनके दिल किसी फ़सीह दीनी वाज़ सुनने पर माइल होते हैं जिसे वो जल्द भूल जातीं और छिछोरी बातों की तरफ़ फिर रुजू करती हैं। ये तो हक़ीक़ी ख़ौफ़ हरगिज़ नहीं। जो शख़्स किसी शैय से डरता है उस से भाग जाता है और जो किसी शैय की उम्मीद रखता है उस के लिए वो कोशिश करता है और जो ख़ौफ़ तुझे

नजात देगा वो ऐसा ख़ौफ़ है जो तुम्हें ख़ुदा के ख़िलाफ़ गुनाह करने से मना करे और उस की इताअत तुम्हारे अन्दर फूंक दे। औरतों और अहमक़ों के सतही ख़ौफ़ से ख़बरदार रहो। ये लोग जब ख़ुदावंद के ग़ज़ब का हाल सुनते हैं तो हल्के दिल से ये कहते हैं, "आऊज़ु-बिल्लाह" और ऐन उसी वक़्त उन्हीं गुनाहों में मुब्तला रहते हैं जो उन को हलाक करेंगे। शैतान ऐसी दीनदाराना दुआओं पर हँसता है वो ऐसे शख़्स की तरह हैं जिसे जंगल में एक शेर मिले और क़रीब ही एक क़िला भी हो और जब वो उस फाड़ने वाले हैवान को देखे वो खड़ा हो कर ज़ोर से चिल्लाना शुरू करे "आऊज़ु-बिल्लाह" ख़ुदा अपनी अदालत के अज़ाबों से तुम्हें ना बचाएगा जब तक तुम फ़िल-हक़ीक़त उस में पनाह ना पकड़ो।"

ख़ुदा के इस ख़ौफ़ के साथ मौत का ख़ौफ़ भी शामिल था जो वसती ज़माने और इब्तदा-ए-इस्लाम का ख़ास्सा था। उस की ज़िंदगी के इख़्ततताम के क़रीब उसने आख़िरी ज़माने के बारे में एक रिसाला लिखा जिसका नाम उसने "गौहर बे-बहा" (گوہر بے بہا) रखा। इस में उस के दीगर रिसालों की निस्बत मौत और अदालत के अज़ाबों को ज़्यादा मुफ़स्सिल ज़िक्र है। इस रिसाले में उसने ये बयान किया, "जब तुम किसी मुर्दा शख़्स को देखो और मालूम करो कि उस के मुँह से थूक बह रहा है और उस के होंट जुड़ गए हैं उस का चेहरा काला पड़ गया है और आँख की सफ़ेदी उभर आई है तो जान लो कि दोज़ख़ में डाला जाएगा और दोज़ख़ में जाने का फ़त्वा उस पर अभी मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) हुआ। लेकिन अगर तुम किसी मुर्दे को देखो कि उस के मुँह पर तबस्सुम है और चेहरा बश्शाश है उस की आँखें नीम बंद हैं तो जान लू कि उसे ख़ुशी का मुज़्दा मिला है कि अगले जहान में उसे क्या हासिल होगा।"

रोज़ अदालत को जब से आदमी ख़ुदा के तहत के सामने हाज़िर किए जाऐंगे उनके आमाल का हिसाब लिया जाएगा और नेक व बद-आमाल तोले जाएंगे। इस सारे अर्से में हर एक आदमी ये गुमान करेगा कि ख़ुदा सिर्फ उसी का हिसाब ले रहा है। हालाँकि शायद उसी वक़्त ख़ुदा बेशुमार लोगों का हिसाब के रहा होगा जिन का शुमार भी उसको मालूम है लोग एक दूसरे को ना देखेंगे ना एक दूसरे की आवाज़ सुनेंगे।

सूफ़ी की सीरत का ख़ुलासा देते वक़्त क्लॉड फ़ील्ड साहब ने ये बयान किया :-

"जैसे मुक़द्दस आगस्तीन ने शक और ग़लती से
मख़लिसी अपने बातिनी तजुर्बा ख़ुदा में हासिल की और डी कार्टे

> (Descarte) ने वक़ूफ़ क़ल्बी में। वैसे ही ग़ज़ाली ने क़यासी ढकोसलों से ग़ैर-मुत्मइन हो कर और शक शकूक से घभरा कर अपने आपको रज़ा-ए-इलाही के सपुर्द कर दिया। उसने ये दूसरों के लिए छोड़ दिया कि ख़ुदा की हस्ती को बैरूनी दुनिया से साबित करें लेकिन उसने ख़ुदा को अपने वक़ूफ़ क़ल्बी में और ख़ुद-मुख्तारी के राज़ में पाया।"

इस्लाम में एक लासानी और वाहिद शख़्स है और उस को लोगों ने अब तक सिर्फ जुज़वी तौर से समझा वसती ज़मानों में उस को शौहरत को आवररोज़ (Overroes) ने मांद कर दिया। जिसकी तफ़्सीर अरस्तू की तरफ़ डेंटे (Donte) ने इशारा किया और जिसका मुतालआ टॉमस एक्वाइन्स (Thomas Aquinas) और दीगर उलमा ने किया। आवररोज़ की तर्तीब मुकम्मल थी लेकिन ग़ज़ाली उनमें से था जिनकी रसाई उनकी गिरिफ्त से परे थी। वो हमेशा ऐसी शैय की तलाश में था जिसको उसने हासिल ना किया था और बहुत बातों में आवररोज़ की निस्बत ज़माना-ए-हाल के उलमा के लगभग है। रेनन (Renan) को गो उसकी की मज़्हबी सरगर्मी से कुछ हम्दर्दी ना थी तो भी उसने उस को "अरबी फिलासफरों के दर्मियान निहायत असली कहा।"

अल-ग़ज़ाली का शागिर्द शायद सारे मुसलमानों में से इन्जील के क़रीब है और हम उम्मीद कर सकते हैं कि जब उस की तस्नीफ़ात का ग़ौर से मुतालआ किया जाएगा और मसीही दीन की तालीम से इस का मुक़ाबला किया जाएगा तो वो बहुतों को मसीह तक पहुंचाने में उस्ताद साबित होगा।

ज़माना-ए-हाल के तालीम याफ्ता मुसलमान अल-ग़ज़ाली की उस आख़िरी नसीहत से फ़ायदा उठाएंगे जो उस की किताब "इक़रारात" के आख़िर में पाई जाती है "जिस इल्म का हम ज़िक्र करते हैं वो ऐसे चश्मों से हासिल नहीं हुआ जिन तक इन्सानी सई को रसाई हो और इसी वजह से मह्ज़ दुनियावी इल्म में तरक़्क़ी करना गुनाहगार के दिल को ख़ुदा की मुख़ालिफ़त में ज़्यादा सख़्त कर देता है। बरअक्स इस के हक़ीक़ी इल्म उस इन्सान में जो मुबतदी हो चुका है ज़्यादा ख़ौफ़ ज़्यादा ताज़ीम पैदा करता और उस के और गुनाह के माबैन एक सद (दीवार, पर्दा) हाइल कर देता है। मुम्किन है कि वो लग़्ज़िश खाए और गिर पड़े और जो बशरी कमज़ोरी से मुलब्बस है उस को इस से चारा

नहीं। लेकिन इन लग़ज़िशों और ठोकरों से उस का ईमान कमज़ोर नहीं होता हक़ीक़ी मुसलमान कभी-कभी आज़माईश में मग़्लूब हो जाता है लेकिन वो तौबा करता है और इस ग़लती की राह में ज़िद से पड़ा नहीं रहता। मैं ख़ुदा क़ादिर-ए-मुतलक़ से दुआ करता हूँ कि वो हमको अपने बर्गज़ीदों में शुमार करे और उन लोगों में गिने जिनको वो महफ़ूज़ राह में हिदायत करता है। जिनमें वो सरगर्मी डालता है ताकि वो उसे फ़रामोश ना करें जिनको वो हर आलूदगी से पाक करता है ताकि उनमें सिवाए ख़ुदा के कुछ बाक़ी ना रहे। हाँ उनमें जिनके अंदर वो कामिल तौर से सुकूनत करता है ताकि उस के सिवाए वो किसी की परस्तिश ना करें।"

मुसलमान होने की हसीयत से या तो फ़ख़्र के बाइस उसने मसीही दीन के तारीख़ी वाक़ियात की तलाश ना की या शायद हुस्न ज़न के तौर पर ये कहें कि अनाजील से इक़तिबासात, सही व ग़लत के बावजूद उसे काफ़ी मौक़ा इस तलाश का ना मिला वर्ना ज़रूर उसे वो शैय मिल जाती जिससे उस के दिल की प्यास और रूह की आरज़ू तश्फ़ी पाती यानी ख़ुदा का इज़्हार ना किसी ग़ैर-महसूस उसूल हैं बल्कि ज़िंदा शख़्स यसूअ मसीह में "वह अनदेखे ख़ुदा की सूरत तमाम मख़्लूक़ात में से पहले मौलूद है क्योंकि उसी में सारी चीज़ें पैदा की गईं आस्मान की हों या ज़मीन की या अनदेखी, तख्त हों या रियासतें या हुकूमतें या इख्तियारात सारी चीज़ें उसी के वसीले से और उसी के वास्ते पैदा हुई हैं।" (कुलस्सियों 1:15-17) जो लोग मसीह में बसते हैं और जिनमें मसीह बसता है वो उस के रुहानी बदन का जुज़ हैं। वो ज़िंदा ताक की शाख़ें हैं। उनकी ज़िंदगी और मक़सद वाहिद है अगरचे वो अपनी हस्ती का इदराक बराबर रखते हैं वो ख़ुदा के साथ गहरी रिफ़ाक़त के लिए ज़्यादा क़ाबिल होते जाते हैं ऐसे तसव्वुर तक सूफ़ी कभी नहीं पहुंचा। अल-ग़ज़ाली ने ये तस्लीम कर लिया कि ख़ुदा को किसी इन्सान ने कभी नहीं देखा लेकिन वो उस की दर्याफ़्त में क़ासिर रहा कि "ख़ुदा का इकलौता बेटा जो बाप की गोद में है उसी ने ज़ाहिर किया।" मुहम्मद के मस्नूई (खुदसाख्ता) जलाल ने उस से जैसा कि सदीयों बाद तक यसूअ मसीह के चेहरे में ख़ुदा के जलाल के इल्म की झलक को छुपा लिया लेकिन कुल्लिया तौर पर नहीं जैसा कि माबाअ्द बाब से ज़ाहिर होगा।

बाब हश्तम

अल-ग़ज़ाली की तस्नीफ़ात में यसूअ मसीह

यसूअ मसीह सीरत का मेयार है रुहानी पेशवाओं का आक़ा और वाहिद आला लाग़लता (मोटा रेशमी कपड़ा, मियान) हाकिम मुंसिफ़ जो किसी मज़्हब या उस की तालीम पर सही फ़त्वा दे सकता है। मुसलमान में जो फ़ाज़िल अजल (बहुत बुज़ुर्ग, बड़ा ज़ीशान) गुज़रा है उस की तालीम में यसूअ मसीह को कौनसी जगह दी गई और उस मुकर्रम सूफ़ी के दिल में उस तालिब ख़ुदा के दिल में उस को क्या रुत्बा हासिल था? ख़्वाह वो कैसा ही क्यों ना हो वो अपनी तहक़ीक़ात में बिल्कुल नेक नीयत था। अल-ग़ज़ाली ने क़ुरआन के मुतालआ करने में ये मुलाहिज़ा किया होगा कि इस किताब में मसीह को आला रुत्बा दिया गया। कम अज़ कम तीन सूरतों में यानी सूरह अल-इम्रान (3), सूरह मर्यम (19), सूरह माइदा (5) का नाम यसूअ मसीह और उस के काम के लिहाज़ से रखा गया। ये नफ़्स-उल-अम्र (दर-हक़ीक़त) कि यसूअ मसीह को इस्लामी इल्म-ए-अदब में जगह दी गई और सारे मुसलमानों अम्बिया-ए-अज़ीम में से इस को तस्लीम क्या इस में और मुहम्मद में मुक़ाबला करने पर हमको आमादा करते हैं। क्या अल-ग़ज़ाली ने कभी ये ख़याल किया और मुहम्मद का मसीह के साथ मुक़ाबला किया? इस बाब में हमारा यही मक़्सद है कि इस सवाल का जवाब देंगे और उसने जो हवाले किताब "अहया-उल-उलूम" और अपनी दीगर तस्नीफ़ात में दीए हैं उनको जमा करें और फिर नतीजा निकालें कि वो किन चश्मों से आए और इमाम ग़ज़ाली की क्या राय थी। नाज़रीन ख़ुद अपने लिए ये फ़ैसला करेंगे कि कहाँ तक वो मुसलमानों को मसीह तक पहुंचाने में उस्ताद का काम देता है।

उस की सारी तस्नीफ़ात में मसीह की ज़िंदगी या उस की तालीम का ख़ाका (वो नक़्शा जो सिर्फ हदूद की लकीरें खींच कर बनाया जाये) नहीं दिया गया। बेशक अल-ग़ज़ाली ने वो किताब पढ़ी और उस का इल्म ग़ालिबन हासिल किया होगा जिसमें इस्लामी चश्मों के मुताबिक़ यसूअ मसीह की ज़िंदगी का मुसलसल बयान कलमबंद हुआ था। उस का नाम किताब "क़िसस-उल-अम्बिया" था जिसे इब्राहिम अल-सअलबी ने जो शाफ़ई मज़्हब का था लिखा। इस शख़्स ने (427 हिज्री, 1036 ई॰) में इंतिक़ाल किया।

इन हदीसों की अफसानगी इस फ़स्ल के तर्जुमे में दिखाई गई है जो यसूअ मसीह के बारे में है। अल-ग़ज़ाली ने बिल्कुल वही कहानियां तो बयान नहीं कीं जो अल-सअलबी ने बयान कीं लेकिन बहुत दीगर वाक़ियात और अक़्वाल का ज़िक्र किया है जो उनके मुशाबेह हैं जो अनाजील में पाए जाते हैं और बाअज़ बिल्कुल एपोक्रिफल किताबों से मन्क़ूल हैं।

अब ये सवाल लाज़िम आता है कि अल-ग़ज़ाली ने इन्जील का ये इल्म कहाँ से हासिल किया, क्या कोई फ़ारसी या अरबी तर्जुमा उस को मिला या जो कुछ हमने जमा किया है वो सिर्फ उसी की सुनी सुनाई बातें थीं जो उसने मसीही राहिबों या यहूदी रब्बियों से सुनी होंगी। ये तो पूरे तौर से वाज़ेह है कि वो नए अहदनामे की हदीस की निस्बत अह्दे-अतीक़ की हदीस से ज़्यादा वाक़िफ़ था। बीसियों (बहुत ज़्यादा) ऐसे मुक़ामात हैं जिनमें उसने मूसा की तालीम, दाऊद के ज़बूर और अह्दे-अतीक़ के अम्बिया की ज़िंदगीयों का हवाला दिया। हम पहले बाब में ज़िक्र कर चुके हैं कि अल-ग़ज़ाली के ज़माने से पेश्तर बाइबल के तर्जुमे अरबी में हो गए थे। ये हदीस है कि "अहले-किताब तौरात को इब्रानी में पढ़ा करते और अरबी में मुसलमानों के लिए तर्जुमा किया करते थे।" एक दूसरी हदीस में आया है कि "कअब रब्बी एक किताब ख़लीफ़ा उमर के पास लाया और कहा, "ये तौरेत है इसे पढ़" "यहूदी इन्साईकिलोपीडीया" में है :-

> "अल-नदीम की फ़हरिस्त में एक अहमद इब्ने अब्दुल्लाह बिन सलाम का ज़िक्र है जिसने बाइबल का तर्जुमा अरबी में किया था।"

हारून रशीद के अहद सल्तनत में और फ़ख़्र-उद्दीन राज़ी ने ज़िक्र किया कि "हबक़्क़ूक़ की किताब" का तर्जुमा इब्ने रब्बान अल-तिबरी ने किया। बहुत अरबी मुअर्रिख़ मसलन अल-तिबरी, मसऊदी, हमज़ा और बैरूनी बाअज़ मुक़ामात को नक़्ल करते और यहूदीयों की इब्तिदाई तारीख़ का ज़िक्र इत्तिफ़ाक़ीया तौर से करते हैं। इब्ने क़तीया मुअर्रिख़ 889 ई॰ में वफ़ात पाई, ने बयान किया कि उसने बाइबल को पढ़ा और उसने बाइबल के चंद मुक़ामात को जमा कर के एक किताब जमा किया जिसे इब्ने जोज़ी (बारहवीं सदी) ने महफ़ूज़ रखा। सबसे पहला मशहूर तर्जुमा सादी गांव (Gaon) का है।

(892 से 942) इस तर्जुमे का रसूख़ इसी क़द्र था जिस क़द्र कि उस की फ़ल्सफ़े की किताब का।

ज़बूर का तर्जुमा हाफ़िज़ अल-क़ूती ने दसवीं सदी में किया और अंदरूनी शहादत से हमें मालूम है कि इस का मुसन्निफ़ मसीही शख़्स था। अह्दे-अतीक़ का एक दूसरा तर्जुमा अरबी ज़बान में क़ाहिरा के यहूदीयों ने ग्यारवीं सदी में किया। सादी का तर्जुमा, मिस्र, फ़िलिस्तीन, सुरिया में दसवीं सदी के आख़िर में मुस्तनद समझा गया और इस की नज़र-ए-सानी 1070 ई॰ में हुई बाइबल के फ़ारसी तर्जुमों के बारे "यहूदी इन्साईकलोपीडिया" से मालूम होता है कि बक़ौल मैमूनीदेस (Mamonides) :-

> "तौरेत का तर्जुमा फ़ारसी ज़बान में मुहम्मद से कई सौ बरस पेश्तर हो गया था।"

लेकिन इस से ज़्यादा इस बयान की तस्दीक़ नहीं हो सकती। अनाजील के अरबी तर्जुमों के बारे में हम डाक्टर किलगुर (Kilgour) साहब का बयान दे चुके हैं।

क्या ये ज़न-ए-ग़ालिब (यक़ीन, ग़ालिब राय, क़वी गुमान) नहीं कि अनाजील के इन तर्जुमों में से किसी एक से ग़ज़ाली वाक़िफ़ होगा? क्या उसने ख़ुद इस का बयान नहीं किया? "मैंने इन्जील में पढ़ा है।"? ना सिर्फ उसने अनाजील से क़िस्सों और मसीह के अक़्वाल को नक़्ल किया बल्कि बाअज़ सूरतों में लफ़्ज़ ब-लफ़्ज़ नक़्ल किया। ये भी सच्च है कि बाअज़ बयानात बिल्कुल एपोक्रिफल हैं जिनका ज़िक्र सही अनाजील में बिल्कुल पाया नहीं जाता। हम इस से नावाक़िफ़ हैं और हमेशा नावाक़िफ़ रहेंगे कि अल-ग़ज़ाली ने ये मुसव्वदा कहाँ से लिया या उसने अपने दिल से घड़ लिया जैसे कि उस के अय्याम में लोग मुहम्मद के बारे में क़िस्सों को घड़ लेते थे।

किताब "अहया" में मुफ़स्सला ज़ैल वाक़ियात का ज़िक्र है। हक़ीक़ी और एपोक्रिफल मसीह की ज़िंदगी के बारे में जो ज़मीन पर बहैसीयत नबी और वली-उल्लाह गुज़रे हम शुरू में ये बयान करेंगे कि मसीह की बेगुनाही के बारे में अल-ग़ज़ाली ने क्या कहा, "ये कहा गया है कि शैतान (लानत उल्लाह अलैह) यसूअ के पास आया और उसे कहा "कह ला-इलाहा इल्ललाह" उसने जवाब दिया कि ये कलिमा तो सही है लेकिन मैं तेरे पीछे पीछे ये ना कहूँगा।" (जिल्द सोम सफ़ा 23) फिर "ये बयान किया गया है कि जब यसूअ

पैदा हुआ तो शयातीन ने इब्लीस के पास आकर कहा कि "सारे बुत मुँह के बल गिर पड़े हैं उसने कहा ये तुम्हारी वजह से वक़ूअ में आया।" फिर वो उड़ा और ज़मीन के तबक़े पर पहुंचा तो उसने मालूम किया कि यसूअ पैदा हुआ है और फ़रिश्ते उस की हिफ़ाज़त कर रहे हैं फिर उसने शयातीन के पास वापिस जाकर उनसे कहा, "फ़िल-हक़ीक़त कल एक नबी पैदा हुआ किसी औरत से कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ कि मैं वहां मौजूद ना हूँ सिवाए इस बच्चे की पैदाइश के" और इसी वजह से लोग बुतों की परस्तिश से मायूस हो गए। (जिल्द सोम 26)

"ये बयान किया गया है कि एक रोज़ यसूअ पत्थर पर तकिया लगाए था और शैतान ने पास से गुज़र कर कहा "ऐ यसूअ अब तू ने अपनी हुब्ब (मुहब्बत) दुनिया के लिए ज़ाहिर की है, तब यसूअ ने वो पत्थर उठाया और उस की तरफ़ फेंक कर कहा, "इसे और दुनिया को ले।" (जिल्द सोम सफ़ा 22) नासरत में उस के लड़कपन के बारे में ये बयान आया है, "किसी ने यसूअ से कहा "तुम्हें तालीम किसी ने दी?" उसने जवाब दिया "किसी ने नहीं" "मैंने अहमक़ों की अहमकी देखकर उसे हक़ीर जाना और उस से रु गर्दान हुआ।" "यसूअ नबी उनमें से था जो खासतौर पर मुक़र्रबीन थे। इस के सबूतों में से एक ये सबूत है कि उसने अपने पर सलाम कहा। क्योंकि उस का ये क़ौल है, "सलामती उस दिन पर कि मैं पैदा हुआ और जिस दिन मैं मरूँगा और जिस दिन मैं फिर ज़िंदा किया जाऊंगा।" ये इस वजह से था कि उसे दिली इत्मीनान हासिल था और सब आदमीयों से मुहब्बत और उल्फ़त रखता था। लेकिन यहया इब्ने ज़करीया ख़ुदा से ख़ौफ़ रखता था और उसने ये अल्फ़ाज़ उस वक़्त तक ना कहे जब तक कि उस के ख़ालिक़ ने उस से ना दोहराए जिस ने ये कहा "सलाम उस दिन पर कि तू पैदा हुआ, जिस दिन कि तू मर गया और जिस दिन कि तो ज़िंदा किया गया।" मज़्कूर बाला मक़ालात पर ये दिलचस्प तफ़्सीर है जो क़ुरआन की इसी सूरह में आईं हैं और किसी दूसरी जगह में यसूअ की फ़ौक़ियत यहया पर ज़ाहिर करने के लिए मुस्तअमल नहीं हुए। (जिल्द चहारुम सफ़ा 245)

अल-ग़ज़ाली ने यसूअ को वही लक़ब दीए जो क़ुरआन मैं दिए गए हैं यानी इब्ने मरियम, रूह-उल्लाह, नबी, और रसूल लेकिन ये पिछले लक़ब चंदाँ वक़अत नहीं रखते क्योंकि उसने इस्लामी इस अजीब क़ियास को माना कि कम अज़ कम 124000 (एक लाख चौबीस हज़ार) अम्बिया दुनिया के शुरू से हुए हैं उस के रिसाले "इक़्तिसाद" (اقتصاد)

में उसने यहूदीयों पर साबित करने के लिए एक तवील दलील दी है कि यसूअ फ़िल-हक़ीक़त नबी था और इस का हिस्र उस की तालीम और मोअजज़ों पर रखा। (सफ़ा 83 से 86) उसने अपने रिसाले "जोहर-उल-क़ुरआन" (جوہر القرآن) में कुँवारी मर्यम को भी नबियों में शुमार किया और उनका शुमार इस तर्तीब से दिया। आदम, नूह, इब्राहिम, मूसा, हारून, ज़करीयाह, यहया, यसूअ, मर्यम, दाऊद, सुलेमान, यशूअ, लूत, इदरीस, ख़िज़र, शुऐब, इल्यास, मुहम्मद।

हमारे ख़ुदावंद के रोज़े के बारे में अल-ग़ज़ाली ने ये बयान किया "ये लिखा है कि यसूअ ने साठ दिन का रोज़ा रखा और दुआ में मसरूफ़ रहा। तब उसे रोटी का ख़याल आया और देखो कि उस के हाथों के माबैन एक रोटी ज़ाहिर हुई। तब वो बैठ कर रोने लगा कि मैं दुआ माँगना भूल गया और देखो एक बूढ़ा उस के पास आया और उसने कहा, "ऐ अब्दुल्लाह ख़ुदा तुझे बरकत दे ख़ुदा तआला को याद कर कि मैं भी ग़म की हालत में था और मैंने रोटी का ख़याल किया हत्ता कि मैं दुआ माँगना भूल गया। तब उस बूढ़े आदमी ने दुआ की "ऐ ख़ुदा अगर तुझे कोई मौक़ा याद है जब मेरे दुआ मांगते वक़्त मेरे दिमाग़ में रोटी का ख़याल पैदा हुआ तो मुझे माफ़ ना कर। तब उसने यसूअ को कहा जब कोई शैय मेरे पास खाने के लिए लाता है तो मैं उसे खा लेता हूँ बिला इस के सोचे कि वो क्या है।" (जिल्द सोम सफ़ा 61) मुफ़स्सला ज़ैल क़िस्सा इन्जील के इस हुक्म पर मबनी मालूम होता है कि "अपनी आँख निकाल डाल" अगर वो ठोकर खिलाए।" यसूअ के बारे में ये बयान हुआ है कि एक दफ़ाअ वो बारिश के लिए दुआ मांगने गए और जब लोग जमा हुए तो यसूअ ने उनसे कहा "तुम में से जो कोई गुनाह का मुर्तक़िब हुआ है वो लौट जाये "इस पर सब चले गए और नमाज़ में उस के साथ एक के सिवा कोई ना रहा और यसूअ ने उस से कहा "क्या तू ने कोई गुनाह किया है?" उसने जवाब दिया "ख़ुदा की क़सम मुझे कुछ मालूम नहीं सिवाए इस के कि एक दिन जब मैं दुआ मांग रहा था तो एक औरत मेरे पास से गुज़री और मैं ने इस आँख से उस पर निगाह की और मैंने इस को निकाल दिया और जा कर उस औरत से माफ़ी मांगी।" तब यसूअ ने उस से कहा "ख़ुदा से दुआ मांग ताकि मैं तेरी ख़ुलूस क़ल्बी का यक़ीन करूँ।" तब उस आदमी ने दुआ मांगी और आस्मान पर बादल छा गए और मीना छमाछम बरसने लगा।" (जिल्द दोम सफ़ा 217)

मसीह के मोअजज़ात के बारे में मुफ़स्सला ज़ैल क़िस्से आए हैं। शागिर्दों ने यसूअ को कहा "दुनिया के बारे में तेरा ख़याल क्या है?" उन्होंने कहा, हम तो इसे अच्छा जानते हैं। यसूअ ने जवाब दिया कि "मेरे नज़्दीक तो ये और ख़ाक बराबर हैं।" (जिल्द सोम सफ़ा 161)

"नबी को किसी ने कहा कि यसूअ तो पानी पर चला करता था उसने जवाब दिया कि अगर वह पाकीज़गी में ज़्यादा कोशिश करता तो हवा में उड़ सकता।" (जिल्द चहारम सफ़हा 71) "ये बयान किया है कि कोई डाकू बनी-इस्राईल के मुसाफ़िरों को चालीस बरस तक लूटता रहा। यसूअ एक रोज़ उस राह से गुज़रा और उस के पीछे-पीछे बनी-इस्राईल के आबिदों में से एक वली जो यसूअ का शागिर्द था जा रहा था उस डाकू ने अपने दिल मैंने कहा "ये जो गुज़र रहा है ख़ुदा का नबी है और उस के साथ उस का एक शागिर्द है अगर मैं नीचे जाऊं तो मैं तीसरा हूँगा।" फिर उसने ये बयान किया कि उस डाकू ने अपनी फ़िरोतनी इस तरह से ज़ाहिर की कि वो यसूअ के पीछे नहीं बल्कि उस के शागिर्द के पीछे चलता था यसूअ ने उन दोनों को उनके गुनाह पर मलामत की। (जिल्द चहारुम, सफ़ा 110) "ये बयान हुआ है कि यसूअ एक अंधे के पास से गुज़रा जो कौड़ी भी था और दोनों पांव से लंगड़ा क्योंकि मफ़लूज था और कोढ़ से उस का गोश्त सड़ गया था और वो ये कह रहा था "ख़ुदा की हम्द हो जिसने मुझे सेहत बख़्शी और मुसीबतों से बचाया जिसमें दीगर मख़्लूक़ मुब्तला हैं।" तब यसूअ ने उस को कहा, ऐ दोस्त तू अपने तईं किस मुसीबत से आज़ाद समझता है और उसने जवाब दिया, ऐ रूह-उल्लाह मैं उनसे बेहतर हूँ जिनके दिल में ख़ुदा ने अपना इर्फ़ान और फ़ज़्ल नहीं डाला और यसूअ ने कहा "तू ने सच्च कहा अपना हाथ फैला" और उसने अपना हाथ फैलाया और उस के बदन और शक्ल को कामिल शिफ़ा हासिल हुई। क्योंकि ख़ुदा ने उस की सारी मर्ज़ दूर कर दी। सो वो यसूअ के साथ हो लिया और उस को सज्दा किया।" (जिल्द चहारुम, सफ़ा 250)

अल-ग़ज़ाली ने यसूअ की बीमारों को शिफ़ा देने की ताक़त का अक्सर नक़्शा खींचा है। क्योंकि मसीह के रहम की सिफ़त हमेशा और हर जगह मुसलमानों को पसंद आई। चुनान्चे मसनवी माअनों में इस की एक उम्दा मिसाल मिलती है और जिसको अल-ग़ज़ाली ने फ़स्ल ब-फ़स्ल नस्र में नक़्ल किया है।

“ख़ाना ईसा साहिबे दिलों की ज़ियाफ़त-गाह था। मुसीबतज़दा उस का दरवाज़ा छोड़कर ना जाते चारों तरफ़ से लोग हमेशा जमा रहते। बहुत अंधे, लंगड़े, लूले और मुसीबत के मारे अलस्सबाह (सुबह सुबह) ईसा के घर के दरवाज़े पर आते ताकि वो अपने दम से उनकी बीमारीयों को दूर करे। जूँही वो अपनी दुआ मांग चुकता। वो क़ुद्दूस तीसरे घंटे के क़रीब बाहर निकलता। वो सफ़ सफ़ इन नातवानों की मुलाहिज़ा करता। जो उम्मीद व तवक़्क़ो से उसी के दरवाज़े पर बैठे थे वो उनसे ये कह कर कलाम करता, ऐ मरीज़ो तुम्हारी तमन्नाओं को ख़ुदा ने पूरा कर दिया। उट्ठो चलो बिला दर्द दुख के ख़ुदा की रहमत व शफ़क़त को मानो। फिर सब जैसे ऊंट जिसके पांव बंधे हों जब तुम सड़क पर उनके पांव खोल दो तो फ़ील-फ़ौर ख़ुशी व ख़ुर्रमी से अपने मंज़िल-ए-मक़्सूद को जाते हैं। इस तरह वो उस के हुक्म से अपने पांव पर निकल भागते हैं।”

मगर बहुत से मोअजज़े इस क़िस्से में बहुत छिछोरे से हैं “कोई आदमी यसूअ इब्ने मरियम के साथ हो लिया और कहा, “मैं तेरा रफ़ीक़ हो कर हमराह जाना चाहता हूँ।” पस वो रवाना हुए और एक दरिया के किनारे पहुंचे और वहां बैठ कर खाना खाया। उनके पास तीन रोटियाँ थीं उन्होंने दो तो खालीं और तीसरी बाक़ी रही तब यसूअ उठकर दरिया से पानी पीने गया और वापिस आकर तीसरी रोटी ना पाई उसने आदमी को कहा कि किस ने रोटी ली। उसने जवाब दिया कि मैं नहीं जानता पस वो अपने हम-राही के साथ रवाना हुआ और उसने एक ग़ज़ाल को देखा जिसके दो बच्चे थे और यसूअ ने उनमें से एक को बुलाया और वो उस के पास आया और उसे ज़ब्ह कर के पकाया और उसे मिल कर ख़ालिया। तब उसने बच्चे को कहा, “ख़ुदा की मर्ज़ी से उठ” और वो उठा और चला गया और फिर मुड़ कर उस आदमी से कहा कि मैं उस के नाम से जिसने ये मोअजिज़ा तेरी आँखों के सामने दिखाया तुझसे पूछता हूँ कि वो रोटी किस ने ली? उसने जवाब दिया कि मैं नहीं जानता फिर वो एक ग़ार में गए और यसूअ ने रेत पर कंकर जमा करने शुरू किए और उनको कहा “ख़ुदा के हुक्म से रोटी बन जाओ” और वो रोटी बन गई फिर उसने उनको तीन हिस्सों में तक़्सीम कर के कहा, “तीसरा हिस्सा मेरे लिए तीसरा हिस्सा तेरे लिए और तीसरा हिस्सा उस शख़्स के लिए जिसने रोटी ली तब उस आदमी ने कहा कि “मैंने वो रोटी ली थी।” यसूअ ने जवाब दिया कि ये सब ले और मुझसे जुदा हो जा।” (जिल्द सोम, सफ़ा 188) अल-ग़ज़ाली ने ये क़िस्सा लालच और तमअ (लालच) के बाब में कहा ताकि ज़ाहिर करे कि जो शख़्स इस दुनिया को प्यार करता है वो औलिया-अल्लाह का रफ़ीक़ नहीं हो सकता।

कि यसूअ कलाम और चलन में हलीम था वो मुफ़स्सला ज़ैल दो क़िस्सों से ज़ाहिर है। यसूअ के बारे में ये बयान हुआ है कि एक दफ़ाअ एक सूअर उस के पास से गुज़रा और यसूअ ने उस से कहा "सलामती में जा।" उन्होंने उस को कहा "ऐ रूह-उल्लाह तू सूअर को ये क्यों कहता है?" उसने जवाब दिया "मैं अपनी ज़बान को बुरे अल्फ़ाज़ से आलूदा नहीं करना चाहता।" (जिल्द सोम सफ़ा 87) "ये बयान किया जाता है कि यसूअ मए अपने शागिर्दों के एक दफ़ाअ एक कुत्ते की लाश के पास से गुज़रा शागिर्दों ने कहा "इस कुत्ते से कैसी बदबू आती है।" यसूअ ने कहा "उस के सफ़ैद दाँत कैसे चमक रहे हैं।" इस से वो शागिर्दों को मलामत करना चाहता था कि कुत्ते को क्यों मलामत की और उनको ये सबक़ सिखाया कि ख़ुदा की किसी मख़्लूक़ का ज़िक्र बुराई से ना करो बल्कि उस की ख़ूबी का बयान करो। इस का ज़िक्र जलाल-उद्दीन ने नज़्म में किया जिसका तर्जुमा ये है :-

> "एक शाम को यसूअ चौक में फिर रहा था सदाक़त और फ़ज़्ल से मामूर तम्सीलें लोगों को सिखा रहा था। इतने में चबूतरे के नज़्दीक अंबोह मरदुम उठता नज़र आया नफ़रत-अंगेज़ हरकात करता और मकरूह चीख़ें मारता ठहर गया। उस्ताद और उस के हलीम शागिर्द देखने गए कि इस हंगामे और नफ़रत की वजह क्या थी और देखा कि मरा कुत्ता पास पड़ा है नफ़रत का नज़ारा जिस पर हर चेहरे से नफ़रत टपकती थी किसी ने अपना नाक बंद किया किसी ने अपनी आँख किसी ने मुँह फेर लिया और सब आपस में ब-आवाज़-ए-बुलंद कहने लगे मकरूह हैवान जिससे ज़मीन व हवा आलूदा हो गई उस की अँखें सूजी हुई और कान गंदे हैं और उस की पसलियाँ नंगी हैं।" उस के ज़ख़्मी चमड़े पर एक तस्मे की जगह बाक़ी नहीं रही लारेब (बेशक) मकरूह कुत्ता चोरी के वास्ते फांसी मिला उस के दाँतों की सफ़ेदी के आगे मोती भी मांद हैं।"

मुफ़स्सला ज़ैल इबारत अल-ग़ज़ाली के रिसाले "गौहर बे-बहा" से नक़्ल की जाती है जिसमें यसूअ के इफ़्लास (ग़रीबी) फ़िरोतनी और बे ख़ान व मांगी का ज़िक्र है :-

“यसूअ मसीह पर ग़ौर करो क्योंकि उस की निस्बत ये बयान हुआ है कि सिवाए ऊन के एक चोगे के उस के पास कुछ ना था उसी को वो बीस साल तक पहने रहा और अपने सारे सफ़रों में कुछ अपने साथ ना लिया सिवाए पानी की सुराही तस्बीह और कंघी के। एक दिन उसने एक आदमी को नदी से हाथों के साथ पानी पीते देखा इस पर उसने अपनी सुराही फेंक दी और फिर कभी उसे इस्तिमाल ना किया। उसने एक दूसरे शख़्स को उंगलीयों से अपने बालों को दुरुस्त करते देखा इस पर उसने अपनी कंघी फेंक दी और कभी उसे इस्तिमाल ना किया और यसूअ ये कहा करता था “मेरा घोड़ा मेरी टांगें हैं। मेरा घर ज़मीन की ग़ारें, मेरी ख़ुराक ज़मीन की नबातात में दरियाओं से पानी पीता हूँ और मेरा मस्कन अबना-ए-आदम में है।” एक दूसरे मौक़े पर उस ने ये लिखा ! यसूअ से किसी ने कहा “अगर तू घर लेकर वहां रहे तो तेरे लिए बेहतर होगा।” उसने जवाब दिया “जो हमसे पहले गुज़र गए उनके घर कहाँ हैं।” (अहया जिल्द सोम सफ़ा 140)

एक क़िस्सा (जिल्द चहारुम, सफ़ा 326) इस अम्र को ज़ाहिर करने के लिए बयान हुआ है कि यसूअ लोगों के दिलों का हाल जानता था और ख़ुदा से दुआ मांग कर उनके इरादे को बदल सकता था। इस क़िस्से में एक बूढ़े शख़्स का बयान है जिससे ज़मीन को झाड़ू देने का काम उसने छुडा दिया और सुला दिया ताकि उठकर फिर काम करे।

एक दूसरा क़िस्सा यूं आया है, “ये बयान हुआ है कि यसूअ अपनी सियाहतों में एक सोए हुए आदमी के पास से गुज़रा जो अपने कपड़े में लिपटा पड़ा था उसने उसे जगा कर कहा “ऐ सोने वाले उठ और ख़ुदा का ज़िक्र कर” उसने जवाब दिया “तू मुझसे क्या चाहता है? मैंने तो दुनिया को उस के अहालीयाँ (काम वाले लोग) के लिए तर्क कर दिया, यसूअ ने जवाब दिया तब सोया रह ऐ मेरे अज़ीज़” (जिल्द चहारुम, सफ़ा 140) “यसूअ की निस्बत ये बयान हुआ है कि वो किसी आदमी की दीवार के साये तले बैठा था। उस आदमी ने उसे वहां बैठे देखकर कहा कि यहां से उठ खड़ा हो और वो उठ खड़ा हुआ। इस पर यसूअ ने जवाब दिया कि तू ने मुझे उठा कर खड़ा नहीं किया बल्कि ख़ुदा ने उठा कर खड़ा किया क्योंकि ख़ुदा नहीं चाहता कि दिन के वक़्त साये में ख़ुशी मनाऊँ।” (जिल्द चहारुम, सफ़ा 163) इस ज़िंदगी की हक़ीक़त सी ख़ुशी भी ख़ुदा के औलियाओं के लिए नहीं।

यहया ने यसूअ को कहा "ख़फ़ा ना हो।" यसूअ ने जवाब दिया, "मैं ख़फ़ा होने से बिल्कुल वो (रुक) नहीं सकता क्योंकि मैं इन्सान हूँ।" तब यहया ने कहा "जायदाद की तमन्ना ना रख यसूअ ने जवाब दिया कि ये मुम्किन है।" (जिल्द सोम, सफ़ा 114)

उसने यसूअ की मुफ़स्सला ज़ैल दुआ भी की (जिल्द अव्वल सफ़ा 222) "यसूअ ख़ुदा से ये कहा करते थे, "ऐ ख़ुदा मैं नींद से उठा हूँ और जिससे मैं नफ़रत रखता हूँ उस को अपने से हटा नहीं सकता और ना उस से फ़ायदा उठाने की क़ाबिलीयत रखता हूँ जिसे मैं चाहता हूँ ये सारा मुआमला मेरे सिवा किसी दूसरे के हाथ में है मैंने अपने काम को पूरा करने का अहद किया है और मेरे जैसा कोई दूसरा ग़रीब नहीं। ऐ ख़ुदा मुझ पर मेरे दुश्मनों को ख़ुशी मनाने ना दे और ना मेरे दोस्त मुझसे बुराई करें और ना मेरे दीन के बारे में कोई मुसीबत मुझ पर आए और मैं दुनिया की फ़िक्र में मुसतग़र्क़ ना हो जाऊं और ना बेरहम आदमी मुझ पर ग़ालिब आए। ऐ अज़ली अबदी ख़ुदा।"

"यसूअ के बारे में ये बयान हुआ है कि ख़ुदा ने उस से ये कह कर कलाम किया "गो तुम आस्मान व ज़मीन के लोगों के बराबर मेरी इबादत करो और ख़ुदा की मुहब्बत तुम्हारे दिल में ना हो बल्कि उस की तरफ़ से नफ़रत हो तो इस से कुछ फ़ायदा ना होगा।" (जिल्द दोम, सफ़ा 210) "ख़ुदा तआला ने यसूअ को कहा "फ़िल-हक़ीक़त जब मैं अपने बंदे के पोशीदा ख़यालों पर निगाह डालता हूँ और उनमें इस दुनिया की ना इस दुनिया की मुहब्बत पाता हूँ तो मैं उस के दिल को अपनी मुहब्बत से भर देता हूँ और मैं उस को अपनी हिफ़ाज़त में रखता हूँ।" (जिल्द चहारुम, सफ़ा 258) "केमियाए सआदत" में जो इशारा इस मज़्मून की तरफ़ आया है इस का ज़िक्र हो चुका है।

यसूअ ने दुनिया को एक बदसूरत कुबड़ी बुढ़िया की सूरत में देखा उसने बुढ़िया से पूछा कि तू कितने ख़ावंद कर चुकी है? उसने जवाब दिया कि वो बेशुमार हैं फिर उसने पूछा कि उनमें कोई मर गया या किसी को तलाक़ दिया गया? बुढ़िया ने जवाब दिया कि ख़्वाह वो मर गए या उनको तलाक़ दिया लेकिन मैंने उन सभों को क़त्ल किया उसने कहा मुझे ताज्जुब है कि ये अहमक़ ये देखकर भी कि तू ने दूसरे खाविन्दों के साथ क्या सुलूक किया फिर भी तेरी तमन्ना रखते हैं?" यसूअ ने कहा इस दुनिया को प्यार करने वाला उस आदमी की मानिंद है जो समुंद्र का पानी पी रहा हो, जितना वो पीता है उतना ही ज़्यादा प्यासा होता है। हत्ता कि वो बग़ैर प्यास बुझे हलाक होता है।"

मगर अल-ग़ज़ाली ने मसीह की ज़िंदगी से कभी वो नतीजा नहीं निकाला जो इन्जील को ग़ौर से पढ़ने वाला निकाल सकता था यानी ये कि दुनिया का हक़ीक़ी तारिक दूसरों की ख़िदमत करने ही से बन सकता है ना आदमीयों से अलैहदगी इख़्यतार करने से मुहम्मदी तसव्वुफ़ से हमेशा दो बद-नताइज पैदा हुए जैसा कि मेजर डोरी आसबर्न साहब (Duri Osburn) ने बयान किया। उसने इन दो क़िस्म के लोगों में एक गहरी ख़लीज पैदा कर दी है जो ख़ुदा को जान सकते हैं और जो तारीकी में आवारा फिरते हैं और रित रसूम के छिलकों पर गुज़रान करते हैं। बड़ी ताकीद से ये तस्लीम किया गया है कि दुनिया को कामिल तौर से तर्क करने के ज़रीये आदमी की हस्ती का हक़ीक़ी मक़्सद हासिल हो, ना मुम्किन है। इसलिए सब शरीफ़ और रास्त ज़ातों ने ऐसे लोग जो इस्लाम की ज़वाल पज़ीर जमाअत में नई जान डाल सकते थे। अपने मामूली काम को छोड़ दिया और बियाबानों और वीरानों में घूमने लगे या अपनी ज़िंदगीयां कहालत और ग़ैर मुफ़ीद बेकारी में सर्फ करने लगे, जिस हालत का नाम उन्होंने रुहानी एतिकाफ़ या ज़िक्र रखा। लेकिन ये इस बदी का एक जुज़ है। हमा औसत का मन्तिक़ी नतीजा अख़्लाक़ी शरीअत का अदम है। अगर ख़ुदा सब में सब कुछ हो और इन्सान की ज़ाहिरा फ़र्दियत क़ुव्वत-ए-मुतख़य्यला का धोका हो तो कोई इरादा नहीं रहता जो अमल करे ना नूर क़ल्ब (दिल) रहता है कि इल्ज़ाम दे और तारीफ़ करे हज़ारों ना-आक़िबत (आख़िर, अंजाम, ख़ातिमा) अंदेश और मुस्रिफ़ (फ़ुज़ूलखर्च) अर्वाह दरवेशों के ख़ानदान में शरीक हुए, ताकि जो आज़ादी उनके ज़रीये हासिल हुई है उस का हज़ (लुत्फ़) उठाएं उनकी दीनदारी की आड़ शहवानी ख़्वाहिशात को पूरा करने की टेट्टी (शिकार खेलने की ओट या आड़ जिसे शिकारी लोग साथ रखते हैं) है। इस्लाम की रस्मियात से उनकी आज़ादगी अख़्लाक़ी अवामिर व नवाही (नाजायज़ काम) से आज़ादगी है। पस ऐसी तहरीक जिसका आग़ाज़ इस आला और अफ़्ज़ल मक़्सद से हुआ वो बिगड़ते-बिगड़ते बदी का चश्मा बन गई वो नदी जो सरसब्ज़ दरिया बन सकती थी वो एक वसीअ दलदल बन गई जिससे अमराज़ व मौत भरे बुख़ारात निकलते हैं।"

यसूअ की तालीम के बारे में किताब "अहया" में ये इबारत पाई जाती है जहां मुम्किन हुआ मैंने नए अहद नामे का हवाला भी दे दिया है। ये मुक़ामात कुछ तो मत्ती की इन्जील से लिए गए हैं ख़ासकर पहाड़ी वाज़ है उनको पहले नक़्ल किया है और बाद अज़ां एपोक्रिफल अक़्वाल को क्योंकि किसी मन्तिक़ी तर्तीब को क़ायम रखना मुश्किल है।

यसूअ ने कहा “अगर कोई शख़्स तेरे पास आए जब कि उसने रोज़ा रखा है तो वो अपने सर पर तेल मले और अपने होंटों को पूंचे ताकि आदमी ये ना कहें कि वो रोज़ादार है अगर वो अपने दाहने हाथ से ख़ैरात देता उस का बाईयां हाथ ना जाने और अगर वो दुआ मांगे तो अपने दरवाज़े पर पर्दा डाले क्योंकि सच्चा ख़ुदा उस की तक्लीफ़ से ऐसा ही वाक़िफ़ है जैसा कि वो हमारी रोज़ाना ख़ुराक का इल्म रखता हैइ” (जिल्द सोम, सफ़ा 203)

यसूअ ने कहा, “पाक चीज़ कुत्तों को ना दो और अपने मोतीयों को सूअरों के आगे ना डालो, ऐसा ना हो कि वो उनको पांव तले रौंदें और पलट कर तुमको फाड़ें।” (जिल्द अव्वल सफ़ा 43, मत्ती 6:7)

यसूअ ने कहा, “जो कोई अमल करे और सिखाए वो आस्मान की बादशाहत में बड़ा कहलाएगा।” (जिल्द अव्वल सफ़ा 6, मत्ती 19:5)

यसूअ ने कहा, तुम कब तक सिरात मुस्तक़ीम उन लोगों को बताओगे जो गुमराह हो जाते हैं और ख़ुद उनमें रहोगे जो परेशान ख़ातिर हैं।” (जिल्द अव्वल, सफ़ा, मत्ती 13:23)

यसूअ ने कहा, “बदी के मुअल्लिम उस बड़े पत्थर की मानिंद हैं जो चाह के मुँह पर पड़ा है और उस के पानी को काश्त शूदा खेतों में जाने नहीं देता।” (जिल्द अव्वल, सफ़ा 45, मत्ती 13:23)

यसूअ ने कहा, “वो आदमी अहले हिक्मत से कैसे ताल्लुक़ रख सकता है जो अपनी ज़िंदगी के शुरू से आख़िर तक इस दुनिया की चीज़ों की फ़िक्र में रहता है।” (जिल्द अव्वल, सफ़ा 46, मत्ती 33:6)

फिर उसने ज़िक्र किया कि ख़ुदा ने यसूअ से यूं ख़िताब किया, “ऐ इब्ने मरियम अपने तईं वाज़ कर क्योंकि अगर तू अपने तईं वाज़ करेगा तो तू आदमीयों को वाज़ कर सकेगा और अगर उस से ना डरे।” (जिल्द अव्वल, सफ़ा 47)

यसूअ ने कहा, मुबारक हैं वो लोग जो अपने तईं इस दुनिया में फ़रोतन बनाते हैं क्योंकि वो अदालत के रोज़ तख़्तों के मालिक होंगे। मुबारक हैं वो जो इस दुनिया में

आदमीयों के दर्मियान सुलह कराते हैं क्योंकि वो क़ियामत के दिन फ़िर्दोस के वारिस होंगे। मुबारक हैं वो जो इस दुनिया में ग़रीब हैं क्योंकि वो क़ियामत के रोज़ ख़ुदा तआला को देखेंगे।" (जिल्द सोम 237, मत्ती 5:3 ता 9)

किसी ने यसूअ से कहा "अपने सफ़रों में मुझे अपने साथ ले चल उसने जवाब दिया जो कुछ तेरे पास है उसे दे डाल और मेरे पीछे होले।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 170, लूक़ा 57:9, मत्ती 21:19)

यसूअ ने कहा "अगलों से कहा गया था दाँत के बदले दाँत और नाक के बदले नाक लेकिन मैं तुम्हें कहता हूँ बदी के एवज़ बदी ना करो बल्कि जो कोई तुम्हारे दाहने गाल पर तमांचा मारे तो बाएं गाल को भी उस की तरफ़ फेर दो और जो कोई तुझे अपने साथ एक मील ले जाना चाहे उस के साथ दो मील चला जा और जो कोई तेरा चोग़ा लेना चाहे उसे अपने अंदर का कपड़ा भी लेने दे।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 52, मत्ती 5:30 ता 41) ये आयात बहुत कुछ सही इक़तिबासात हैं, और पहाड़ी वाज़ के किसी तर्जुमे से लिए गए होंगे, और कहीं कुछ ग़लत मलत भी किया है।

शागिर्दों ने यसूअ को कहा, देख ये मस्जिद कैसी ख़ूबसूरत है "उसने जवाब दिया "ऐ मेरी क़ौम मैं तुम्हें सच्च कहता हूँ, ख़ुदा इस के पत्थर पर पत्थर ना छोड़ेगा बल्कि वो इसे उस के लोगों के गुनाहों के बाइस बर्बाद कर देगा। फ़िल-हक़ीक़त ख़ुदा को सोने रूपये की परवाह नहीं और ना इन पत्थरों की जिन पर तुम ताज्जुब करते हो लेकिन ख़ुदा सबसे ज़्यादा पाकीज़ा दिलों को प्यार करता है, उनके साथ ख़ुदा ज़मीन को बना सकता है और अगर वो नेक ना हों तो वो ज़ाए होंगे।" (अहया जिल्द सोम सफ़ा 288 मत्ती 2:24)

यसूअ ने कहा "दुनिया को अपना आक़ा ना बनाओ वर्ना वो तुमको अपना ग़ुलाम बना लेगी। अपना ख़ज़ाना उस के पास जमा करो जो उनको ना खोए क्योंकि जो कोई ज़मीन में ख़ज़ाना जमा करता है वो डरता है कि कोई उसे बर्बाद ना कर दे लेकिन जिसने ख़ुदा के पास ख़ज़ाना जमा किया उस को कोई अंदेशा नहीं कि उस के खज़ाने को कोई नुक़्सान पहुंचा सकेगा।" (मत्ती 6:9 ता 21) और यसूअ ने ये भी कहा "ऐ रसूलों के गिरोह देखो मैंने दुनिया को ज़मीन पर उंडेल दिया है इसलिए मेरे पीछे इस को फिर ना उठा लेना क्योंकि इस दुनिया की ख़राबी ये है कि आदमी इस में ख़ुदा की ना-फ़र्मानी

करते हैं और दुनिया की एक ख़राबी ये भी है कि मौजूदा दुनिया को छोड़े बग़ैर आक़िबत हासिल नहीं हो सकती इसलिए इस दुनिया में से गुज़र जाओ लेकिन इस में तामीर ना करो। जान लो कि सारे गुनाह की जड़ इस दुनिया की मुहब्बत है और शायद एक घंटे की तमन्ना जो इस की पैरवी करते हैं आक़िबत को हमेशा के लिए खो देंगे उसने ये भी कहा, मैंने दुनिया को तुम्हारे सामने फेंक दिया है और तुम उस की पुश्त पर बैठे हो इसलिए मौक़ा ना दो कि बादशाह या औरतें इस के बारे में तुमसे झगड़ा करें बादशाहों के बारे में मेरी सलाह ये है कि उनसे इस के क़ब्ज़े के बारे में कभी झगड़ा ना करो, क्योंकि वो कभी तुमको इसे वापिस ना देंगे। रहा औरतों का दुआ और रोज़े के ज़रीये उनसे अपनी हिफ़ाज़त करो।" (जिल्द सोम सफ़ा 139) यसूअ ने कहा, इस दुनिया की मुहब्बत और आक़िबत की मुहब्बत एक ही दिल में जमा नहीं हो सकती जैसे पानी और आग एक ही दिल में जमा नहीं हो सकते।" (जिल्द सोम सफ़ा 140)

यसूअ ने कहा "ऐ बदी के मोअल्लिमों तुम रोज़ा रखते दुआ मांगते और ख़ैरात देते हो इस पर ख़ुद अमल नहीं करते और तुम वो बातें सिखाते हो जिनको तुम नहीं समझते जो कुछ तुम करते हो वो कैसा बुरा है तुम मुँह से तो तौबा करते हो लेकिन तुम्हारे आमाल नाकारा हैं तुम अपने चमड़ों को बेफ़ाइदा साफ़ करते हो जब कि तुम्हारे दिल बदी से भरी हैं। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम छलनी की मानिंद ना बनो जिसमें से अच्छा आटा तो निकल जाता है और छान रह जाता है। इसी तरह तुम अपने मुँह से रास्ती को निकाल देते हो लेकिन दग़ा तुम्हारे दिलों में रह जाता है। "ऐ दुनिया के ग़ुलामो! वो आदमी आक़िबत को कैसे समझ सकता है जिसकी तमन्ना इस दुनिया पर लगी हुई है। मैं तुम्हें सच्च कहता हूँ कि तुम्हारे आमाल के बाइस तुम्हारे दिल गिर्ये व ज़ारी करेंगे तुमने दुनिया को तो अपने मुँह पर रखा है और नेक-आमाल को पांव तले रौंद डाला। मैं तुम्हें सच्च कहता हूँ तुमने अपनी मुस्तक़बिल ज़िंदगी को ख़राब कर दिया क्योंकि आने वाले जहां की नेअमतों की निस्बत तुमने इस दुनिया की नेअमतों से मुहब्बत रखी। बच्चों में से कौन तुमसे ज़्यादा नुक़्सान उठाता है काश कि तुम उसे जानते तुम पर अफ़्सोस कब तक तुम सिरात मुस्तक़ीम की तल्क़ीन उन लोगों से करोगे जो तारीकी में हैं और तुम ख़ुद शक में मुब्तला हो, गोया तुम अबना-ए-दुनिया से ये तलब करते हो कि वो उस की ऐश व इशरत को तर्क करें ताकि तुमको उनसे हज़ (मज़ा) उठाने का कुछ मौक़ा मिले तुम पर अफ़्सोस उस तारीक घर को क्या फ़ायदा अगर चिराग़ जला कर उस की छत पर रखा जाये और घर के कमरे अंधेरे रहें इसी तरह

तुमको कुछ फ़ायदा ना मिलेगा अगर इल्म का नूर तुम्हारे होंटों पर हो और तुम्हारे दिलों में तारीकी हो। ऐ दुनिया के गुलामों तुम्हारी रास्तबाज़ी या तुम्हारी आज़ादगी कहाँ है? ग़ालिबन दुनिया तुमको जड़ से उखाड़ डालेगी और मुँह के बल गिरा देगी और ख़ाक में घसीटेगी वो तुम्हारे गुनाहों को तुम्हारी पेशानियों पर अश्कारा करेगी फिर वो तुम्हें अपने आगे धकेलती जाएगी हत्ता कि तुम में से हर एक हालत उर्यानी में अदालत के फ़रिश्ते के हवाले किया जाये तब तुमको तुम्हारे बद-आमाल की सज़ा मिलेगी।" (जिल्द सोम, मत्ती 23:1 ता 27)

"कल की ख़ुराक के बारे में फ़िक्र ना करो शायद कल तुम्हारी मौत का दिन होगा।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 330, मत्ती 6:34)

"परिंदे को देखो वो ना बोता ना काटता ना ज़ख़ीरा जमा करता है और ख़ुदा तआला उसे रोज़ी पहुँचाता है।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 190, मत्ती 6:26)

यसूअ ने कहा "वो दाना नहीं जो आज़माईशों में बदन की अमराज़ में और जायदाद के ज़ाए होने में मुब्तला हो कर ख़ुश नहीं होता, क्योंकि इनके ज़रीये उस के गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो जाता है।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 205, मत्ती 5:10)

यसूअ के बारे में लिखा है कि उसने ये कहा "अगर तुम किसी नौजवान को ख़ुदा से दुआ मांगने का बहुत गरवीदा देखो तो जान लो कि वो सारी आज़माईशों से बच निकला है।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 221, मत्ती 26:41) शायद गतसमनी में मसीह के अल्फ़ाज़ की तरफ़ इशारा है।

यसूअ ने कहा "ख़ताकारों से नफ़रत रखने के ज़रीये ख़ुदा की ख़ुशनुदी के तालिब हो। उन्होंने उस को कहा, ऐ रूह-उल्लाह हम किस के साथ सोहबत रखें? उसने उन्हें जवाब दिया उनके साथ सोहबत रखो जो तुम्हें ख़ुदा की याद दिलाएँ और जो लोग तुम्हारे चाल चलन पर मलामत करें और जिन लोगों का नमूना आइन्दा जहां के लिए तुम्हें सरगर्म बनाए।" (जिल्द दोम सफ़ा 110)

यसूअ के बारे में ये बयान हुआ है कि, "उसने बनी-इस्राईल को कहा जो तुम बोते हो वो कहाँ उगता है? उन्होंने जवाब दिया अच्छी ज़मीन में और उसने कहा मैं सच-मुच

कहता हूँ हिक्मत सिर्फ उस दिल के सिवा और कहीं नहीं उगती जो अच्छी ज़मीन है।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 256, मुक़ाबला करो मत्ती 13:1 ता 9)

यसूअ ने कहा "फ़िल-हक़ीक़त फ़स्ल पहाड़ों पर नहीं उगती बल्कि मैदानों में इसी तरह हिक्मत उन लोगों के दिल में असर करती है जो फ़रोतन हैं और ना मग़रूरों के दिल में।" (जिल्द सोम सफ़ा 240, मत्ती 13:23)

यसूअ ने कहा, नफ़ीस कपड़ों से मगुरूर निगाहें पैदा होती हैं।" (जिल्द सोम सफ़ा 247)

यसूअ ने कहा "तुम्हें क्या तक्लीफ़ है कि तुम राहिबों के कपड़ों में आते हो और तुम्हारे दिल फाड़ने वाले भेड़ीयों के दिल हैं अगर तुम चाहो राहिबों के कपड़े पहनो, लेकिन ख़ौफ़-ए-ख़ुदा से तुम्हारे दिल फ़रोतन बनें।" (जिल्द सोम सफ़ा 247, मत्ती 7:5)

यसूअ ने कहा "ऐ शागिर्दों के गिरोह ख़ुदा तआला को पुकारो ताकि ये दहश्त यानी मौत की दहश्त घट जाये, क्योंकि मैं मौत से ऐसे तरीक़े से डरता हूँ कि मैं इस से ख़ौफ़-ज़दा रहता हूँ।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 324, मत्ती 26:38)

अब हम यसूअ के दीगर अक़्वाल जिनका ज़िक्र अल-ग़ज़ाली ने किया है नक़्ल करेंगे लेकिन उनकी तर्तीब कुछ ग़लत मलत है वो ना तो इक़तिबासात हैं और ना ग़लत इक़तिबासात लेकिन फ़हरिस्त की तक्मील की वजह से वो दिलचस्पी रखते हैं और इसलिए भी कि उनसे ज़ाहिर होता है कि अल-ग़ज़ाली और दीगर मुसलमानों का यसूअ नबी की तालीम के बारे में क्या ख़याल था।

यसूअ ने कहा "कितने सहीह-उल-हबसा शकील चेहरे और फ़सीह ज़बानें कल नार जहन्नम में चिल्लाऐंगी।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 383)

यसूअ ने कहा "तुम में से कौन समुंद्र की लहरों पर ठहर सकता है? दुनिया ऐसी ही है। इसलिए इस को अपना मस्कन ना बनाओ।" (जिल्द सोम सफ़ा 141)

उन्हों यसूअ से कहा "ख़ुदा की मुहब्बत का राज़ हमें सिखा, उसने जवाब दिया "दुनिया से अदावत रखो तो ख़ुदा तुम्हें प्यार करेगा।" (जिल्द सोम सफ़ा 141, याक़ूब 4:4)

यसूअ ने कहा "ऐ मेरे शागिर्दो दुनिया की कम से कम चीज़ों पर क़नाअत (जितना मिल जाए उस पर सब्र करना) करो जब तक कि तुम्हारा मज़्हब बाइत्मीनान है जैसे अहले-दुनिया दीन की कम अज़ कम बातों पर क़नाअत करते हैं और उनकी जायदाद बाइत्मीनान (महफ़ूज़) है।" (जिल्द सोम सफ़ा 142)

यसूअ ने कहा "ऐ शख़्स तू जो मह्ज़ ख़ालिस सोने के लिए दुनिया की तलाश करता है दुनिया का तर्क करना इस से क़ीमती ख़ज़ाना है।" (जिल्द सोम सफ़ा 142)

उन्होंने यसूअ से पूछा नेक-आमाल में कौन सा अमल सबसे आला है उसने जवाब दिया "ख़ुदा जो कुछ ख़ुशी से अता करे उसे क़ुबूल कर लेना और उसे प्यार करना।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 258)

यसूअ इब्ने मरियम ने कहा, इस दुनिया के चाहने वालों पर अफ़्सोस वो कितनी जल्दी मर जाऐंगे और इस दुनिया और माफ़िहा को छोड़ देंगे। दुनिया उस को फ़रेब देती है और वो इस पर भरोसा रखता है और तकिया करता है वग़ैरह।" (जिल्द सोम सफ़ा 141, लूक़ा 12 ता 21) यसूअ ने कहा "तुम अपने बदनों को कुशता करो ताकि तुम्हारी रूहें ख़ुदा का दीदार हासिल करें।" (जिल्द सोम, सफ़ा 56, रोमीयों 8:13)

यसूअ ने कहा "जो शख़्स नेक-आमाल की तालीम देता और उस पर अमल नहीं करता वो उस औरत की मानिंद है जो पोशीदगी में ज़िना की मुर्तक़िब हुई हो और उस के गुनाह का नतीजा उस की हालत से देखने वालों पर ज़ाहिर हो जाता है।" (जिल्द अव्वल सफ़ा 48)

यसूअ ने कहा "जो शख़्स किसी भीक मांगने वाले को घर से निकाल देता है फ़रिश्ते उस के घर में सात दिन तक ना जाऐंगे।" (जिल्द दोम सफ़ा 162)

आज तक बहुत मुसलमान इस क़ौल को अक्सर नक़्ल किया करते हैं। वो सब मानते हैं कि यसूअ ग़रीब व मुहताज का दोस्त था।

यसूअ ने कहा “वो शख़्स मुबारक है जिसको ख़ुदा ने अपनी किताब सिखाई वो मग़रूर ज़ालिम हो कर ना मरेगा।” (जिल्द सोम सफ़ा 235)

यसूअ ने कहा “वो आँख मुबारक है जो सोती है और ख़ता नहीं देखती और जो ख़ता नहीं उस के लिए जागती है।” (जिल्द चहारुम सफ़ा 260)

शागिर्दों ने यसूअ को कहा “आमाल हसना में कौनसा सबसे आला है?” उसने जवाब दिया “जो काम ख़ुदा के लिए किया जाये और ख़ुदा के सिवा किसी दूसरे की तारीफ़ ना की जाये।” (जिल्द चहारुम सफ़ा 273)

यसूअ इब्ने मरियम के शागिर्दों ने कहा “ऐ रूह-उल्लाह तेरी मिस्ल दुनिया पर कोई और है?” उसने जवाब दिया, “हाँ जिस किसी की कमर ख़ुदा की याद से कसी है और वोह उस की वजह से ख़ामोश है और सिर्फ ख़ुदा की इनायत ही का ख़्वाहां है वो मेरी मानिंद है।” (जिल्द चहारुम सफ़ा 305)

यसूअ ने कहा “बद-नज़री से ख़बरदार हो क्योंकि जब ये दिल में हुई तो इस से शहवत और बद-ख़्वाहिश पैदा होती है।” (जिल्द चहारुम सफ़ा 74, मत्ती 28:5)

यसूअ ने कहा “जो कोई कस्रत से झूट बोलता है उस का हुस्न उस से जाता रहता है और जो बहुत फ़िक्र करता है वो बीमार होता है और जो बद-ख़स्लत है वो अपने तईं सज़ा देता है। (जिल्द सोम सफ़ा 98)

यसूअ ने कहा “ख़ुदा के नज़्दीक सबसे बड़ा गुनाह ये है कि उस का ख़ादिम ऐसी शैय की निस्बत जिसे वो नारास्त जानता है, ये कहे ख़ुदा जानता है या ऐसी शैय के बारे में जो उसने ख़्वाब में देखी है झूट कहे।” (जिल्द सोम सफ़ा 98)

अपने शागिर्दों से यसूअ ने कहा, अगर तुम अपने किसी भाई को सोया हुआ देखो और हवा के झोंके से उस का कपड़ा उतर जाये तो ऐसी हालत में तुम क्या करोगे? उन्होंने जवाब दिया कि हम उसे ढाँप देंगे। यसूअ ने कहा “नहीं बल्कि तुम उस का राज़ फ़ाश करोगे।” उन्होंने कहा “ख़ुदा ना करे।” कौन ऐसी बात करेगा उसने जवाब दिया “जब तुमसे कोई अपने भाई के ख़िलाफ़ कुछ सुनता है तो वो इस में मुबालग़ा करता है और इस ख़बर को दूसरों में मशहूर करता है।” (जिल्द दोम सफ़ा142)

ये रिवायत है कि यसूअ ने कहा "ऐ शागिर्दों के गिरोह तुम ख़ता से मुबर्रा (पाक) हो लेकिन हम रसूलों की गिरोह कुफ़्र से मुबर्रा हैं।" (जिल्द चहारुम 124)

यसूअ ने कहा "मुश्किल से दौलतमंद फ़िर्दोस में दाख़िल होगा।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 140 मत्ती 19:23)

यसूअ ने कहा "सच-मुच मैं एक मुक़र्रर घर को पसंद नहीं करता और इस दुनिया की ख़ुशीयों से मैं नाख़ुश हूँ।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 140)

यसूअ ने कहा "इस दुनिया के लोगों की जायदाद पर निगाह ना कर क्योंकि तुम्हारे ईमान की रोशनी में वो हीच (कमतर) है।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 144)

यसूअ से कहा गया "अगर तू हमें इजाज़त दे तो हम घर बनाएंगे और इस में ख़ुदा की इबादत करेंगे" उसने जवाब दिया "ऐसी बुनियाद पर हम कैसे तामीर कर सकते हैं?" उस ने कहा "दुनिया की मुहब्बत के साथ तुम्हारी इबादत कैसे क़ायम रह सकती है।" (जिल्द चहारम सफ़हा 158)

यसूअ के बारे में ये रिवायत है कि उसने कहा "चार चीज़ें हमको बजुज़ दुशवारी हासिल नहीं होतीं। ख़ामोशी जो इबादत का अव्वल उसूल है, फ़िरोतनी, ख़ुदा की कसरत से याद और सारी बातों में इफ़्लास (ग़रीबी)" (जिल्द चहारुम सफ़ा 159)

यसूअ ने कहा "मैं सच्च तुम्हें कहता हूँ जो कोई आस्मान की तलाश करे वो जो की रोटी खाए और कुत्तों के साथ रूड़ी के ढेर पर सोए मेरे लिए ये काफ़ी है।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 164)

यसूअ ये कहा करता था "ऐ बनी-इस्राईल नदी का पानी तुम्हारे लिए काफ़ी हो और खेत की सब्ज़ी और जो की रोटी और सफ़ैद रोटी से ख़बरदार क्योंकि वो तुम्हें इबादत से बाज़ रखेगी।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 164)

यसूअ ने कहा "मेरी ख़ुराक भूक है मेरे सारे ख़यालात ख़ुदा का ख़ौफ़ हैं। मेरा लिबास सूफ (ऊन) है।"

मौसम-ए-सरमा में मेरे गर्म होने की जगह सूरज की किरनें हैं मेरी शम्मा चांद, मेरा मुरक्कब (सवारी) मेरी टांगें, मेरी ख़ुराक ज़मीन का फल है। मैं ख़ाली बिस्तर जाता हूँ और ख़ाली बिस्तर से उठता हूँ फिर भी मुझसे कोई ज़्यादा दौलतमंद नहीं।" (जिल्द चहारुम सफ़ा 146)

"यसूअ ने कहा जो कोई दुनिया का मुतलाशी है वो उस आदमी की मानिंद है जो समुंद्र का खारा पानी पीता है जितना ज़्यादा वो पीता है उतना ही ज़्यादा प्यासा होता है। ये क़ौल दूसरी दफ़ाअ आया है। लेकिन अल-ग़ज़ाली को अपनी इस किताब में अपने अक़्वाल का तकरार भी पसंद था। अनाजील में बयान हुआ है कि जो कोई उस से माफ़ी मांगता, जो उस की तारीफ़ करता है उसने शैतान को निकाल दिया है।" (जिल्द सोम सफ़ा 127)

मुफ़स्सिला (तफ़्सील किया गया) ज़ेल इक़तिबासात या हवाले जात अनाजील से उस के छोटे रिसालों में आए हैं। "कीमिया-ए-सआदत" (کیمیائے سعادت) में इन्जील का ये हवाला है, "जो कोई बोता है काटता है। जो कोई रवाना होता है पहुंचता है। जो कोई ढूंढता है पाता है।" (मत्ती 7:7) हम इस ख़त से अल्फ़ाज़ नक़्ल कर चुके हैं "ऐ बच्चे।" सच-मुच मैंने अनाजील में देखा है।" इसी ख़त में उसने दौलतमंद और लाज़र की तम्सील का हवाला दिया है। "जब अहले दोज़ख़ अहले जन्नत से कहेंगे इस में से थोड़ा पानी हमें दे जो ख़ुदा ने तुम्हें हमारी ज़बानों को ठंडा करने के लिए अता किया है।" उसने यसूअ से ये क़ौल भी मन्सूब किया "मैं तो मुर्दों को ज़िंदा करने के नाक़ाबिल ना था लेकिन मैं अहमक़ों की अहमकी का ईलाज करने के नाक़ाबिल था।" उसने सुनहरे क़ानून को कई बार नक़्ल किया और ये नहीं बताया कि किस चश्मे से उसे लिया यानी यसूअ की इन्जील को चश्मा तस्लीम नहीं किया।

ये सब और जो कुछ उसने "कीमिया-ए-सआदत" में ख़ुदा की मुहब्बत के बारे में कहा, इस से मेरे दिल में कुछ शक बाक़ी नहीं रहता कि उसने नए-अहद नामे को पढ़ा। यूहन्ना के ख़ुतूत और यूहन्ना की इन्जील का ये गोया मुसलमानी तर्जुमा है। इस बड़े सूफ़ी ने ख़ुदा की मुहब्बत के सात निशान बताए हैं। अव्वल निशान ये है कि मौत का ख़ौफ़ ना हो। दूसरा ये है कि ख़ुदा की मुहब्बत को बाक़ी सारी दुनियावी चीज़ों की मुहब्बत पर तर्जीह दे। तीसरा निशान ये है कि ख़ुदा पर ध्यान करना कभी मौक़ूफ़ नहीं

करता। हर शख़्स उसी क़द्र किसी शैय को ख़याल करता और उसे याद करता है जिस क़द्र कि वो उसे प्यार करता है। चौथा निशान ये है क़ुरआन की इज़्ज़त और मुहब्बत। पांचवां निशान पोशीदा दुआ है। छटा ख़ुदा की इबादत में ख़ुशी महसूस करना और सातवाँ निशान ख़ुदा की मुहब्बत का ये है कि आदमी ख़ुदा के ख़ालिस दोस्तों और फ़रमांबर्दार खादिमों को प्यार करे और उन सबको अपना दोस्त समझे और ख़ुदा के सारे दुश्मनों को अपना दुश्मन समझे और उनसे नफ़रत करे। और ख़ुदा अपने अबदी कलाम में ये फ़रमाता है, उस के रफ़ीक़ काफ़िरों के लिए ख़ौफ़नाक हैं और एक दूसरे के लिए हलीम। एक शेख़ से किसी ने पूछा ख़ुदा तआला और क़ुद्दूस के दोस्त कौन हैं? उसने जवाब दिया ख़ुदा के दोस्त वो हैं जो ख़ुदा के दोस्तों पर इस से ज़्यादा रहीम हैं कि बाप या माँ अपने बच्चों पर हों।" (ज़बूर 103)

अल-ग़ज़ाली बहैसीयत आलिम शराअ के सारे मसाइल में हमेशा क़ुरआन की मुताबिक़त पर मज्बूर है। लेकिन बहैसीयत सूफ़ी के जब वो क़ियास के घोड़े दौड़ा कर पर्दे को चीर कर निकल जाता है, वो बिल्कुल मुतफ़र्रिक़ है। इन साहब ने ख़ुदा की हस्ती पर जो किताब लिखी, उस के ये अल्फ़ाज़ बार-बार आते हैं "ऐ ख़ुदावंद मैं तेरे गहिराईयों की तह तक पहुंचने की जुर्रत नहीं करता क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरी अक़्ल की रसाई वहां तक नहीं, लेकिन एक हद तक मैं तेरी सदाक़त को समझना चाहता हूँ जिसको मेरा दिल मानता और प्यार करता है। मैं ईमान लाने की ख़ातिर समझना नहीं चाहता लेकिन मैं ईमान लाता हूँ ताकि मैं समझूं।"

जब कभी अल-ग़ज़ाली हमसे ख़ुदा के क़रीब होने का ज़िक्र करता है और रूह की तमन्ना का, कि इन्सानी शराकत अपने ख़ालिक़ से रखे तो वो मसीही तसव्वुर तजस्सुम के बहुत क़रीब आ जाता है लेकिन वहां तक पहुंचता नहीं मसलन "कीमिया-ए-सआदत" में उसने ख़ुदा की मुहब्बत का चौथा सबब ये बयान किया कि इन्सान और उस के ख़ालिक़ के माबैन एक मुशाबहत और निस्बत पाई जाती है और इस के लिऐ मुहम्मद के क़ौल को नक़्ल किया "फ़िल-हक़ीक़त ख़ुदा ने इन्सान को अपनी मिस्ल पैदा किया।"

लेकिन फ़ौरन इस के बाद उसने ये कहा :-

"इस मज़्मून का ज़्यादा ज़िक्र करना ख़तरनाक है क्योंकि
अवामुन्नास की समझ की रसाई से परे है बल्कि इस के बयान

करने में अस्हाब अक़्ल ने भी बहुत लग़्ज़िशें खाईं और तजस्सुम और ख़ुदा के साथ इत्तिहाद को मानने लगे।"

तो भी जो मुमासिलत इन्सान और ख़ुदा के माबैन पाई जाती है उन उलमा के एतराज़ को रद्द करती है जिनका ऊपर ज़िक्र हुआ। जिनकी राय ये है कि ख़ुदा ऐसे वजूद को प्यार नहीं कर सकता जो उस की अपनी नूअ से नहीं ख़्वाहाँ के दर्मियान कितना ही बुअद (फ़ासिला) हो आदमी ख़ुदा को प्यार कर सकता है इस मुमासिलत की वजह से जो इस क़ौल में मज़्कूर है "ख़ुदा ने इन्सान को अपनी मिस्ल पैदा किया।"

इन्जील के इस बयान को बेशक अल-ग़ज़ाली ने क़ुबूल कर लिया "ख़ुदा को किसी ने कभी नहीं देखा।" लेकिन इस बयान को हज़फ़ (अलग) किया "इकलौता बेटा जो बाप की गोद में है उसी ने ज़ाहिर कर दिया।" ख़ुदा के दीदार का ज़िक्र करते वक़्त उसने ये कहा "सारे मुसलमान इस बात के मानने का दावा करते हैं कि ख़ुदा का दीदार इन्सानी ख़ुशी का मेअराज है क्योंकि शरीअत में ऐसा बयान हुआ है लेकिन अक्सरों के नज़्दीक ये सिर्फ़ ज़बानी दावा है जिससे दिल में ज़रा जोश पैदा होता और ये अम्र तबई है क्योंकि आदमी ऐसी शैय की आरज़ू कैसे कर सकता है जिसका उसे इल्म ही नहीं? हम मुख़्तसरन ये ज़ाहिर करने की कोशिश करेंगे कि ख़ुदा का दीदार सबसे आला ख़ुशी जिसको आदमी हासिल कर सकता है, क्यों है?"

अव्वल तो आदमी के हर वक़्त का एक ख़ास अमल होता है जिसको पूरा करने से उसे ख़ुशी होती है और यह सब क़वाए (क़ुव्वत की जमा) पर सादिक़ आता है। अदना जिस्मानी ख़्वाहिश से लेकर आला इदराक तक। लेकिन अदना अक़्ली कोशिश से भी जिस्मानी ख़्वाहिशात की निस्बत ज़्यादा ख़ुशी हासिल होती है। मसलन अगर कोई शख़्स शतरंज की बाज़ी में मशग़ूल हो तो वो बार-बार के बुलाने पर भी खाना खाने ना आएगा। और इसी तरह हमारे इल्म का मौज़ू जैसा आला होगा वैसे ही हमारी ख़ुशी आला होगी। मसलन वज़ीर के राज़ों के जानने की निस्बत बादशाह के राज़ों के जानने में ज़्यादा ख़ुशी होगी। चूँकि ख़ुदा हमारे इल्म का आला मुम्किन मौज़ू है इसलिए उस के इल्म से दूसरों की निस्बत ज़्यादा ख़ुशी हासिल होगी। जो ख़ुदा का इल्म रखता है ख़्वाह वो इसी दुनिया में हो वो गोया फ़िर्दोस में सुकूनत रखता है जिसकी वुसअत आस्मान और ज़मीन की वुसअत के बराबर है वो एक फ़िर्दोस है, जिसका अस्मार तोड़ने से किसी का कीना तुम्हें

बाज़ नहीं रख सकता और ना इस की वुसअत उनकी कस्रत से तंग हो सकती है जो इस को हासिल करते हैं। (1 यूहन्ना 4:7-21)

लेकिन इल्म की ख़ुशी दीदार की ख़ुशी से कमतर है। जैसे हमारी ख़ुशी से अपने अज़ीज़ों का ख़याल करने में बनिस्बत उनके देखने की ख़ुशी से कमतर है। मिट्टी और पानी के बदनों में हमारा मुक़य्यद होना और आलम महसूसात की अश्या में मुब्तला होना ऐसा हिजाब है जो हमसे ख़ुदा के दीदार को छुपा लेता है अगरचे उस का कुछ इल्म हासिल करने में वो सद्द-ए-राह नहीं। इसी वजह से ख़ुदा ने कोह-ए-सिना पर मूसा से कहा तू मुझे ना देखेगा।"

इस किताब में वो बयान दुहराया गया कि "सिर्फ पाक-दिल" ही ख़ुदा को देख सकते हैं और मुम्किन मालूम नहीं होता कि जो तालीम अल-ग़ज़ाली ने यहां दी वो इन्जील के इल्म पर मबनी ना हो उसने बयान किया "जिसके दिल में ख़ुदा की मुहब्बत दूसरी शैय पर ग़ालिब आ गई वो उस दीदार से ज़्यादा ख़ुशी हासिल करेगा बनिस्बत उस के, जिसके दिल में उसने ऐसा ग़लबा हासिल नहीं किया। जैसे दो आदमी हों जिनकी क़ुव्वत-ए-नज़र यकसाँ हो और वो एक हसीन चेहरे को देख रहे हों। जो शख़्स इस हसीन को प्यार करता है वो उस के देखने से ज़्यादा ख़ुशी हासिल करेगा, बनिस्बत उस के जो उसे प्यार नहीं करता।" कामिल ख़ुशी के लिए महज़ इल्म काफ़ी नहीं जब तक कि उस के साथ मुहब्बत आदमी के दिल पर तसर्रुफ़ (दख़ल) हासिल नहीं कर सकती जब तक कि वो दुनिया की मुहब्बत से पाक ना हो और ये पाकीज़गी परहेज़गारी और रियाज़त से हासिल हो सकती है। ये तालीम मसीह के अल्फ़ाज़ से कैसे मुशाबेह है "मुबारक हैं वो जो पाक दिल हैं क्योंकि वो ख़ुदा को देखेंगे।" अल-ग़ज़ाली ने अपने सारे दीनी तजुर्बात में ख़ुदा के दीदार ही की तलाश की और उसे इस दुनिया और अगली दुनिया में सबसे आला नेअमत क़रार दिया। अगरचे उसने अपनी सारी कोशिश से रूह और ख़ुदा की हक़ीक़त को बयान करने की कोशिश की लेकिन उ के सामने ख़ाली दीवार ही रही। वो ख़ुदा के दीदार का आर्ज़ूमंद तो बहुत है। लेकिन वो इस्लामी तसव्वुर से अपने तईं आज़ाद ना कर सका कि ख़ुदा मालूम नहीं हो सकता और ख़ल्क़त में कोई शैय ख़ालिक़ से मुशाबेह नहीं। आज तक सेहत के साथ ये बताना मुश्किल है कि ख़ुदा की ज़ात के बारे में अल-ग़ज़ाली की क्या राय थी। उस की तस्नीफ़ात में जर्मनी के आलिम बार्जर (Borger) और सार्जर (Sorjer) की तरह सूफ़ी हमा औसत (अक़ीदा हर वजूद रखने वाली चीज़ ख़ुदा की ज़ात

में शामिल है) तालीम और तशख़ीस का अशरी मसअला एक दूसरे के मुताबिक़ थे। इसी मुताबिक़त की वजह से ये बताना मुश्किल है कि आया वो हमा औसत का क़ाइल था या लूट्ज़ (Lotze) की तरह मुशख़्ख़स (तशख़ीस किया गया) हमा औसत का। अल-ग़ज़ाली की तालीम ये थी कि रूह को इदराक हासिल है लेकिन इदराक ब-हैसियत सिफ़त माद्दा या ज़ात ही में मौजूद हो सकती है जो जिस्म की सारी सिफ़ात से मुतल्लिक़न ख़ाली हो। उस के रिसाले "अल-ज़नों" (ال ظنوں) में उसने ये तशरीह की कि "नबी ने रूह की ज़ात मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना, खुलना) करने से क्यों इन्कार किया। वो बयान करता है कि आदमी दो क़िस्म के होते हैं। मामूली इन्सान और अस्हाबे फ़िक्र। पहली क़िस्म लोग माद्दियत को हस्ती शर्त गरदानते हैं और ग़ैर-माद्दी हस्ती का तसव्वुर कर ही नहीं सकते। दूसरी क़िस्म के लोग अपने मन्तिक़ के ज़ोर पर रूह का ऐसा तसव्वुर करने लगते हैं जो ख़ुदा और फ़र्द रूह में सारे इम्तियाज़ को दूर कर देता है इसलिए अल-ग़ज़ाली ने अपनी तहक़ीक़ात के हमा ओसती सेलाब को मालूम कर लिया और इसलिए रूह की ज़ात की ग़ायत के बारे में ख़ामोशी हासिल की।

हम ये देख चुके हैं कि अल-ग़ज़ाली ने यसूअ की ज़िंदगी और सीरत के बारे में किया बयान किया और ख़ुदा का जो रिश्ता हमारे साथ है उनकी मुहब्बत के ज़रीये जो अपने सारे दिलों से ख़ुदा की तलाश करते हैं, क्या सिर्फ यही मुसलमान हैं या इस से वसीअ भी ख़ुदा की मुहब्बत है? क्या सारी रूहें उस की हिफ़ाज़त में हैं।

जो लोग अहाता इस्लाम से बाहर थे उनके बारे में अल-ग़ज़ाली की क्या राय थी इस के मुताल्लिक़ दो अजीब इबारतें आई हैं और जो एक दूसरे की नक़ीज़ (बरअक्स) हैं। ग़ालिबन वो उस की ज़िंदगी के दो मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर लिखी गईं पहली इबारत जो उस के ज़माने और उस के इस्लामी दर्जे के लिहाज़ से काबिले बयान है उस की किताब "फ़ैसल-उल-तफ़रीक़ा अल-इस्लाम व अल-ज़िन्दीक़" (فیصل التفریقہ الاسلام) में आई है, इस का तर्जुमा ये है "मैं यहां बयान करता हूँ कि हमारे ज़माने के यूनानी मसीही और तर्क ख़ुदा की रहमत में शामिल होंगे। यानी जो लोग सल्तनत की सरहदों पर रहते हैं जिनको दावत-ए-इस्लाम नहीं मिली। क्योंकि वो तीन क़िस्म के हैं। एक क़िस्म के लोगों ने तो मुहम्मद ﷺ का नाम कभी नहीं सुना और वो माज़ूर हैं। दूसरी क़िस्म के लोग वो हैं जिन्हों ने उस का नाम और लक़ब और जो मोअजज़े उसने किए उनका हाल सुना ये बतौर जवारियाँ के मुसलमानों के दर्मियान रहते हैं ये हक़ीक़ी काफ़िर और मुन्किर हैं और

तीसरी क़िस्म के लोग इन दो के माबैन हैं उन्हों के मुहम्मद ﷺ का नाम सुना लेकिन उस के लक़ब और सीरत का ज़िक्र नहीं सुना। बल्कि उन्होंने बचपन से ये सुना कि वो झूटा और फ़रेबी है जो मुहम्मद कहलाता है और जिसने नबुव्वत का दावा किया। जैसे हमारे बच्चों ने खुरासान के झूटे नबी अल-मकाफ़ा (اَل مکافہ) का नाम सुना जिसने नबुव्वत का दावा किया था और मेरी राय में ये तीसरी क़िस्म के लोग आइन्दा की उम्मीद के लिहाज़ से पहली क़िस्म से इलाक़ा रखते हैं।" ये बयान इसलिए भी क़ाबिले लिहाज़ है क्योंकि इसी बाब में उसने कहा कि ख़ुदा ने आदम को फ़रमाया (बमुताबिक़ हदीस) कि "उस की औलाद में से हर हज़ार में से 999 दोज़ख़ को जाते हैं और सिर्फ एक बहिश्त (जन्नत) को।"

मगर किताब "अहया-उल-उलूम" के आख़िरी सफ़ा पर अल-ग़ज़ाली ने ये राय ज़ाहिर की कि,

> रोज़ अदालत को हर एक मुसलमान ख़्वाह उस की सीरत कैसी ही हो आग में दाख़िल होगा।

फिर उसने एक हदीस नक़्ल की जिसमें बयान है कि हर मुसलमान के लिए जो दोज़ख़ का मुस्तूजिब होगा ख़ुदा यहूदी या मसीही को फ़िद्ये में देगा और उसने इस कफ़्फ़ारे के मसअले को ख़ुदा की रहमत की तश्फ़ी के लिए उनकी रिआयत में मंज़ूर किया जो मुहम्मद को मानते हैं और ख़ुदा के उस हुक्म को कि वो जहन्नम को बे ईमानों से भर देगा। (सूररह 50 ता 29) उस किताब के आख़िरी सफ़ा में (अफ़्सोस की बात है) तास्सुब की मुसलमानी रूह का इज़्हार है जो आज तक पाया जाता है। उस के दूसरे रिसाले में इस से ज़्यादा वसीअ और फ़राख़ राय पाई नहीं जाती। अल-ग़ज़ाली का जो सुलूक मसीहीयों से था और इन्जील से जो इक़तिबासात उसने किए उसने उस के फ़ारसी ख़याल पर-असर किया और यसूअ नासरी को माबाअ्द तसव्वुफ़ में एक मुम्ताज़ जगह दी ख़ासकर सूफ़ी शायर जलाल-उद्दीन रूमी की मसनवी में उस ने मसीह की ज़िंदगी से बड़ा सबक़ निकाला जिसकी तरफ़ अल-ग़ज़ाली ने अपने इक़तिबासात में सिर्फ इशारा किया था कि यसूअ ज़िंदगी का बख़्शने वाला है!

> "अपने तईं मुर्दा शुमार करो ताकि तू आज़ाद हो कर दुनिया की क़ैद से आस्मान को जाये ! बहार आए लेकिन संग-ए-

ख़ारा पर कोई सब्ज़ी ना उगेगी ये ख़िज़ां में भी ख़ाली है और बहार में भी और संग-ए-ख़ारा आदमी का दिल है जब तक ख़ुदा का फ़ज़्ल दख़ल ना दे और उस को कुचल कर मुद्दत से बंजर पड़े पर सब्ज़ी ना उगाए।"

जब यसूअ का ताज़ा दम दिल को छुएगा तो ये ज़िंदा होगा इस में सांस आएगा और फिर कलियाँ निकलेंगी।"

मशहद का शहर तूस के खन्डरात के मुत्तसिल (मिला हुआ, नज़दीक) था जहां अल-ग़ज़ाली पैदा हुआ और जहां उसने वफ़ात पाई वो फ़ारसियों का मक्का कहलाता है हज़ारहा हाजियों का हुजूम उस की गलीयों में हर साल नज़र आता है। अमरीकन परेस्टेरीन कलीसिया ने यहां काम शुरू किया हुआ है और बाइबल सोसाइटियों की रिपोर्ट से मालूम होता है कि बाइबल की हज़ारों कापीयां फ़रोख़्त होती हैं। "हमने ख़ुदा के कलाम से शहर मशहद में सेलाब पैदा कर दिया है।" (बक़ौल मिस्टर Esselsyn) बारहा मुझे लोगों ने आगाह किया कि बाज़ार में कोई तुझे क़त्ल कर देगा अगर तुम बाइबल बेचना और वाज़ करना बंद ना करोगे। लेकिन ये जुम्ला "देखो में हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।" मेरे कानों में गूँजता रहता है और हम अपना काम जारी रखते हैं। जो मुक़द्दस किताबें मशहद और उस के क़ुर्ब व जवार में फ़रोख़्त होती हैं वो बीज बोया जाता है और अगर हम सुस्त ना हो जाएं तो अपने वक़्त पर फ़स्ल काटेंगे।"

आजकल काली आबरू वाला अफ़्ग़ान, अज़बक तातारी, दरवेश सफ़र की गर्द से आलूद और पांव में आबले पड़े, बल्कि खुरासान का ग़रीब से ग़रीब लड़का भी यसूअ की तालीम व आमाल का हाल ख़रीद सकता है। अब कोई मुसलमान अल-ग़ज़ाली के चंद इंजीली इक़तिबासात पर हिस्र नहीं रखता फ़ारस और मशरिक़ क़रीब के लिए एक नियाज़ नामा शुरू हुआ है। अल-ग़ज़ाली के निनान्वें रिसालों की निस्बत नए अहद नामे से लोग बेहतर वाक़िफ़ हैं और हम बिला मुबालग़ा ये कह सकते हैं कि नए अहद नामे के पढ़ने वालों का हलक़ा भी बहुत वसीअ है। मुसलमान सूफ़ी ख़ुदा की सल्तनत के क़रीब हैं और उन के लिए अल-ग़ज़ाली आदमीयों को मसीह तक पहुंचाने में उस्ताद का काम दे सकता है। क्या गुलशन राज़ के मुंसिफ़ ने ये नहीं लिखा "क्या तू जानता है कि मसीहीय्यत क्या है? मैं तुझे बताऊंगा। ये तेरी अपनी ख़ुदी को दफ़न कर देता है और तुझे ख़ुदा तक

ले जाता है। तू यरूशलेम है जहां ख़ुदा-ए-अज़ली अबदी तख़्त नशीन है, रूहुल-क़ुद्दुस ये मोअजिज़ा करता है। "क्योंकि ये जान लो कि ख़ुदा का वजूद रूहुल-क़ुद्दुस में बस्ता है। जैसा कि अपने ही रूह में" ख़ुदा के ऐसे तालिब आजकल ऐसे लोगों को पाएँगे जो उनको मसीह तक पहुंचा देंगे। क्योंकि जैसे डाक्टर जे॰ रेंडन हैरिस साहब बयान किया :-

> "हम में से जितने मसीह को प्यार करते हैं वो ये महसूस करने लगे हैं कि एक हम इस कूचे में रहते हैं और उसी टेलीफ़ोन पर हैं और हम एक दूसरे के दरवाज़े के पास रहते हैं और हद-ए-फ़ासिल (दो चीज़ों को अलग करने वाली हद) को खटका सकते हैं हम गो मादूद-ए-चंद (गिनती के बहुत थोड़ी तादाद में हैं) एक ही छत तले हैं और हम सब एक हाथ के फ़ासले पर हैं और दिल की रसाई हो सकती है।"